# वैदिक वाङ्मय में

# अभिचार की रूपरेखा




डॉ. आशारानी दीक्षित

# वैदिक वाङ्मय में अभिचार की रूपरेखा

मन्त्र-संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, कल्पसूत्रादि में वर्णित
आभिचारिक तन्त्र-मन्त्र

डॉ० आशारानी दीक्षित
एम० ए०, पीएच० डी०

पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली

ISBN ; 81-85504-22-9



प्रथम संस्करण : 1996

आवरण-शिल्पी : चन्द्रप्रकाश

मूल्य : तीन सौ पचास रुपये मात्र

प्रकाशक : पेनमैन पब्लिशर्स, 7309/5, प्रेम नगर,
शक्ति नगर, दिल्ली-110007

मुद्रक : ए० आर० प्रिंटर्स, न्यू सीलमपुर, दिल्ली-110053

VAIDIC VĀNGAMAYA MEIN MANTRA-SHAKTI AUR ABHICHĀRA
by Dikshit, Asha Rani Rs. 350/-

# शुभाशंसा

अथर्ववेद में निरूपित विषयों में अभिचार कर्म (आभिचारिकाणि) भी हैं। सपत्न-बाधन, मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, स्तम्भन इत्यादि की गणना अभिचारकर्मों में होती है।

डॉ० आशारानी वाजपेयी (अब दीक्षित) के प्रस्तुत ग्रन्थ में न केवल अथर्ववेदीय अभिचारकर्मों का विश्लेषण है, अपितु सभी मन्त्र-संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं कल्पसूत्रादि में वर्णित अभिचारकर्मों की मीमांसा की गई है। साथ ही, रामायण, महाभारत, पुराण तथा लौकिक संस्कृत-साहित्य में ये कर्म विकसित होकर किस रूप में दिखाई पड़ते हैं, इसका भी निरूपण किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ के माध्यम से लेखिका ने समग्र अभिचारकर्मों को प्रकाश में लाने का श्लाघ्य कार्य किया है। इस प्रकार के मौलिक कार्य विरल हैं।

यह ग्रन्थ प्रकाशित होकर विद्वानों में चर्चित, प्रशंसित एवं समादृत होगा तथा इस क्षेत्र में आगे कार्य करने वालों को सतत प्रेरणा देता रहेगा, ऐसा हमें विश्वास है।

**डॉ० मातृदत्त त्रिवेदी**
अपरनिदेशक, अभिनवगुप्त शोध संस्थान,
संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

# प्ररोचना

वैदिक वाङ्मय का विपुलांश अभिचार एवं तन्त्रानुष्ठानों से प्रभावित है। उत्तरवैदिक साहित्य में वेद के तन्त्रीकरण की एक विशिष्ट प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। आगे चलकर तन्त्र के वैदिकीकरण की प्रक्रिया भी दिखलाई देती है। इस प्रकार दोनों में आदान-प्रदान की भावना शनैः शनैः प्रबल होती गई है। वैदिक वाङ्मय को समाज में समादर और स्वीकृति तो प्राप्त थी, किन्तु विभिन्न कारणों से धीरे-धीरे समाज में उसके अनुष्ठान अलोकप्रिय होते जा रहे थे। इसके विपरीत तांत्रिक क्रियाएँ सद्यः सिद्धिप्रद तो थीं, किन्तु अभिजात वर्ग में उन्हें मान्यता प्राप्त नहीं थी। वेद के तन्त्रीकरण में, वैदिक मन्त्रों के विनियोग पूर्वक तांत्रिक क्रियाओं के समावेश से वेद का प्रचार समाज के सामान्य वर्गों में भी हुआ। इसी के साथ ही, ताँत्रिक अनुष्ठानों के वैदिकीकरण से वे समाज के उच्च और अभिजात वर्गों में भी स्थान पा गये। दुर्गासप्तशती, जो मूलतः तांत्रिक स्वरूप की कृति है, में वैदिक साहित्य के अनुकरण पर ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग का उल्लेख तन्त्र के वैदिकीकरण की उक्त प्रवृत्ति की पुष्टि करता है।

डॉ० आशारानी वाजपेयी ने, जो अब उद्वाहानन्तर डॉ० आशारानी दीक्षित हो गई हैं, अपने इस ग्रन्थ में, वैदिक वाङ्मय में अभिचार एवं तान्त्रिक चेतना का अनुशीलन एवं उद्घाटन बहुत अध्यवसाय एवं मनोयोग-पूर्वक किया है। उन्होंने अभिचार के परवर्ती विकास का भी वैश्विक सन्दर्भ में विशद विवरण संजोया है। इस स्वल्पचर्चित विषय पर पर्याप्त विस्तार से प्रामाणिक अनुसन्धान करके उन्होंने वेद विद्या प्रेमियों की निश्चित ही सुश्लाघ्य सपर्या की है। एतदर्थ उन्हें हार्दिक वर्धापनिका देते हुए मेरी कामना है कि वे सारस्वत साधना में इसी प्रकार संलग्न रहकर सतत सुयश प्राप्त करें।

**ओमप्रकाश पाण्डेय**
(उप)आचार्य, संस्कृत विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

# प्राक्कथन

विपत्तियों से घिरे रहने के कारण मनुष्य में आदिकाल से ही अपनी तथा अपने परिवार की सुरक्षा की प्रवृत्ति पाई जाती है। मनुष्य कभी शारीरिक व्याधि से पीड़ित होता है तो कभी मानसिक व्याधि से। इन व्याधियों का कारण वह किसी दैवी प्रकोप को मानता है अथवा किसी विद्वेषी के द्वारा किये जाने वाले जादू-टोने को और इनसे बचने के लिए विविध प्रकार के प्राकृतिक एवं कृत्रिम उपायों का आश्रय भी लेता है। "अभिचार" भी मनुष्य द्वारा सम्भावित हानि से बचने के लिए किया जाने वाला एक कृत्रिम उपाय ही है जिसके लिए वह विविध प्रकार के अनुष्ठानों और कृत्यों का आश्रय लेता है। इनके सम्पादन में वह विविध प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग करता है, यथा, मनुष्य कभी तो लाल या काले वस्त्र पहनकर पूजा-पाठ करता है और कभी सरसों का हवन करता है अथवा कभी किसी ओझा या पुजारी द्वारा दी गई ताबीज माला धारण करता है या फिर कभी किसी व्यक्ति की प्रतिच्छाया अथवा आटे या मिट्टी से निर्मित्र मूर्ति का चौराहे पर विच्छेदन करता पाया जाता है। ये सभी कृत्य मनुष्य में जादू-टोने एवं दैवी प्रकोप के प्रति विश्वास की भावना को प्रबलता प्रदान करते हैं। अतः जब हम मानव में इस प्रवृत्ति या भावना के उद्गम काल अथवा स्थान को जानने के लिए सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का अध्ययन एवं निरीक्षण करते हैं, तो पाते हैं कि मनुष्य में जादू-टोने एवं ईश्वरीय शक्ति के प्रति विश्वास की भावना आदिकाल से ही जागृत रही है। हाँ यह बात अवश्य है कि यह भावना मनुष्य के अन्तर्मन में कभी धूमिल रही है तो कभी प्रबलता के साथ विकसित होकर अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची है।

वैदिक काल में जादू-टोने के प्रति विश्वास की भावना का पर्याप्त अस्तित्व परिलक्षित होता है जिसके फलस्वरूप विविध प्रकार के अभिचार यागों एवं कृत्यों का सम्पादन होने लगा था जिसमें विभिन्न अभिचारपरक मन्त्रों का प्रयोग किया जाता था और कृत्य सम्पादन के लिए उपयुक्त मन्त्र प्राप्त न होने पर अनेक नवीन मन्त्रों की रचना भी कर ली जाती थी। पहले इस प्रकार यागों एवं कृत्यों का सम्पादन किसी विशिष्ट व्यक्ति या पुरोहित द्वारा ही सम्भव माना जाता था, किन्तु शनैः शनैः ये कृत्य साधारण व्यक्ति द्वारा भी सम्पादित किये जाने लगे और गृह्यसूत्रकालीन समाज में तो प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए छोटे से लेकर बड़े-बड़े सभी प्रकार के यज्ञों और कृत्यों का सम्पादन किया जाने लगा। इस प्रकार गृह्यसूत्रकाल से ही "अभिचार" जैसे कृत्य एवं याग भी साधारण जनता की शक्ति बन गये।

और इस तरह अपनी सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए इस शक्ति का प्रयोग मनुष्य प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर करता आ रहा है।

जहाँ तक इन पंक्तियों की लेखिका की जानकारी है, वैदिक अभिचार पर स्वतन्त्र रूप से अभी तक कोई विशिष्ट शोधकार्य नहीं हुआ है। केवल प्रो० कीथ ने ही अपनी पुस्तक "वैदिक धर्म और दर्शन" में इस विषय पर संक्षेप में उल्लेख किया है जो वास्तव में वैदिक वाङ्मय में अभिचार और उसके स्वरूप को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है। प्रो० कीथ के काल की अपेक्षा सम्प्रति वैदिक कर्मकाण्ड का अधिक विस्तार से अध्ययन करना सम्भव हो गया है— इसलिए वैदिक अभिचार की विवेचना भी अधिक व्यापक पटल पर की जा सकती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मूलतः यद्यपि वैदिक वाङ्मय में अभिचार के स्वरूप, प्रकार और प्रयोजन की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है तथापि आज अन्तः शास्त्रीय विवेचना अनुसन्धान की मान्य प्रक्रिया बन गई है, इसलिए अन्य धर्मों में प्राप्य अभिचार से वैदिक अभिचार की तुलना भी की गई है।

वैदिक अभिचार को समझने में लेखिका ने धर्म विज्ञान, समाज-शास्त्र और नृतत्वशास्त्र से स्वाभाविक ही पर्याप्त रूप से सहायता ली है।

शोधग्रन्थ के प्रणयन में लेखिका को अपने श्रद्धेयगुरु एवं शोध-निर्देशक डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय जी का जो मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन मिला, तदर्थ वह उनके प्रति आजीवन आभारी रहेगी। डॉ० पाण्डेय ने लेखिका का केवल मार्गदर्शन ही नहीं किया, अपितु समय समय पर शोधकार्य के मध्य आनेवाली समस्याओं से लेखिका के मन मे जागृत अवसाद एवं निराशा के भावों को दूर करते हुए सदैव उसे प्रेरणा एवं सत्साहस भी प्रदान किया।

लेखिका अपने पूज्य पिता श्री विश्वनाथ वाजपेयी (निवृत्त संयुक्त सचिव, उ० प्र० शासन), माताश्री, पतिदेव श्री दीक्षित जी तथा परिवार के अन्य सदस्यों एवं सम्बन्धियों के उपकार को भी गहराई से अनुभव करती है, जिन्होंने शोध हेतु उचित एवं अनुकूल वातावरण तथा पूर्ण समय उपलब्ध कराते हुए श्लाघ्य योगदान किया।

पेनमैन पब्लिशर्स के मनीषी स्वत्वाधिकारी श्री जवाहरलाल गुप्त जी ने इस ग्रन्थ का अत्यन्त शीघ्रता, तत्परता एवं सुरुचिपूर्वक प्रकाशन किया, एतदर्थ वे भी हार्दिक सद्भावना एवं साधुवाद के आस्पद हैं।

**आशारानी दीक्षित**

# विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

# अभिचार की अवधारणा : स्वरूप और प्रयोजन

अदृश्य शक्तियों के प्रति आकर्षण, उनसे भय तथा उनमें असीम विश्वास की भावनाओं ने धर्म के वैचारिक एवं अनुष्ठानिक उभयविध प्रकृतियों की ओर मानव को बहुधा उन्मुख किया है। यही कारण है कि यज्ञ सदृश्य धार्मिक संस्था में उच्चस्तरीय दार्शनिक चिन्तन के साथ साथ कर्मकाण्ड में अभिचारीय कृत्यों का समावेश भी हुआ है।

सामान्य धारणा यह है कि वैदिक वाङ्मय में अभिचार कर्मों का सर्वप्रथम उल्लेख सम्भवतः अथर्ववेद में हुआ है, किन्तु अभिचार कर्मों के उद्गम के विषय में प्रो० कीथ का मत है कि—"अभिचार कर्म ऋग्वेद काल में भी उतने ही प्रचलित थे जितने उत्तर वैदिक काल में। सभी प्रकार के दैत्यों के विरुद्ध अभिचारों का स्वच्छन्द प्रयोग किया गया है, किन्तु अभिचार और धर्म के बीच तात्विक भेद की रेखा वैदिक धर्म में स्पष्ट रूप से उभरी हुई है। देवताओं के संघर्ष में अभिचार प्रयोग के स्थान पर और कभी कभी अभिचार के सहायक के रूप में देव-सहाय्य का भी उपयोग किया गया है।"[1]

किन्तु हमारे विचार से ऋग्वेद में जादू-टोनों की चर्चा कम है। उसका प्रमुख कारण यह है कि तत्कालीन मनुष्यों का विध्वंसक शक्तियों के प्रभाव की अपेक्षा रचनात्मक प्रवृत्ति वाली सात्विक दैवी शक्तियों की सामर्थ्य पर अधिक विश्वास था। ऋग्वैदिक काल में मनुष्य इतना आत्मबलशील था, इन्द्रादि सात्विक शक्तियों के सघन अवलम्बन ने उनमें इतना दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि वह सोचता था, इनके रहते हुए दुष्ट शक्तियां उसका अपकार और अकल्याण नहीं कर सकतीं। इसी कारण तत्कालीन साहित्य में आभिचारिक विषयों एवं तथ्यों का उल्लेख अल्पप्राय मिलता है। अभिचार एवं शकुन-शास्त्र आदि की बहुत सी क्रियाएं यज्ञ की कर्मकाण्डीय विधियों में परिलक्षित होती हैं।

---

1. रिलीजन एण्ड फिलॉसफी ऑव दि वेदाज् एण्ड उपनिषद्स।

यजुर्वेद में गुप्त अभिचार अर्थात् टोने-टोटके को 'वलगम' कहा गया है।[1] शतपथ ब्राह्मण में 'कृत्या' शब्द का प्रयोग अभिचारीय रूप में किया गया है, क्योंकि आभिचारिक कर्मों में परोक्ष रूप से घटने वाले टोनों में, जिनसे मनुष्य के अकल्याण की बहुत अधिक सम्भावना होती है, कृत्या प्रमुख रही है। शतपथ ब्राह्मण में ही दृष्ट अपशकुनों के प्रतिकार स्वरूप किये जाने वाले अभिचार को 'प्रतिसर' कहा गया है।[2]

अभिचार के क्षेत्र में 'कृत्या' शब्द की सार्थकता का उल्लेख मनुस्मृति में भी मिलता है[3] जहां कृत्या का विरोध किया गया है। अथर्ववेद में भी कृत्या शब्द बहुशः प्रयुक्त हुआ है।[4] व्याकरण के अनुसार करणार्थक 'कृ' धातु से कृत्या शब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतया कृत्या शब्द किसी कृत्य-कार्य (व्यापार) से सम्बद्ध है और गौण रूप से कृत्या यातु-कर्म को कहा जाता है।

'कृत्या' के लिए सर्वप्रथम विशेषण प्रयुक्त हुआ है—'क्रूरा'। कृत्या का प्रयोग शत्रु करते हैं। सम्भवतः कृत्या को स्त्री समझा जाता था क्योंकि वेदों में इसके लिए 'वधूमिव' जैसे उपमान प्रयोग किये गये हैं। वेदों में कृत्या के लिए प्रयुक्त अन्य विशेषण और नाम ये हैं– शीर्षण्वती, कर्णवती, विश्वरूपा, भयंकरी, पुरुषादिनी, पुनर्नवे, पापकृत्वना, अघ्न्यास्या, घोररूपा, वररूपा, विनाशिनि, आदि।

साधारण अर्थ में किसी शत्रु को मारने या हानि पहुँचाने के लिए की जाने वाली क्रिया या मन्त्र-पाठ को अभिचार कहते हैं। अथर्ववेद में एक अभिचार-मन्त्र का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—"पशुओं को साथ लेकर, हे ब्रह्मोदन! इन यजमानों के चारों ओर रेलपेल मचा दे। इन्हें देवताओं की ओर ले जाता हुआ उनके साथ वृद्धि को प्राप्त हो, हे यजमान! तुझे न किसी का शाप लगे, न मारने के लिए किया गया अनुष्ठान (अभिचार) हानि पहुँचाये। तू सर्वथा रोग-

---

1. "रक्षोहण वलगहन वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्टयो यममात्यो निचखान······।" यजुर्वेद 5.23
2. शत०ब्रा०, 5.2,4,20
3. अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो द्विशतोदमः।
   मूलकर्माणि चानाप्तैः कृत्यासु विविधासु च॥ मनुस्मृति 9.290
4. अथर्व०, 10.1, 5.31

रहित रहता हुआ अपने क्षेत्र में सुशोभित हो ।[1]

वस्तुत: दैत्यों, भूतों, प्रेतों, पिशाचों, राक्षसों और शत्रुओं के शमन के लिए किये जाने वाले कर्म 'अभिचार-कर्म' या 'कृत्या-परिहार' कर्म कहे जाते हैं । इन कृत्या-परिहार कर्मों के उद्देश्यों का यदि वर्गीकरण किया जाये तो सभी प्रयोजनों का समाहार निम्नाङ्कित पाँच वर्गों में हो सकता है--

1. प्रेत, दैत्य बाधा-निवारण
2. राजकर्म
3. शत्रुओं के प्रति
4. स्त्री-प्राप्ति
5. उच्चपद प्राप्ति

**अभिचार शब्द की व्युत्पत्ति :** श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति ने अभिचार शब्द की व्युत्पत्ति प्रत्यक्ष रूप से शत्रु के ऊपर प्रहार करने के अर्थ में 'अभि' उपसर्ग पूर्वक 'चर्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के योग से मानी है ।[2]

शत्रु को मारने या हानि पहुँचाने के लिए किये जाने वाले आभिचारिक यज्ञ को ही 'श्येनयाग' कहा गया है ।[3] समस्त आभिचारिक-कर्म द्वेष करने वाले व्यक्ति का दमन करते हैं ।[4] अभिचार-क्रिया तीनों प्रकार के कष्टों को दूर करती है ।[5] शत्रु की क्रूर प्रकृति ही अभिचार-क्रिया की जन्मदात्री है ।[6]

---

1. अभ्यावर्तस्व पशुभि: सहैनां प्रत्यङङ्ना देवताभि: सहैधि ।
   मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचार: स्वे क्षेत्रे अनभीवा विराज ।।
   अथर्व०, 11.1.22
2. अभि - आभिमुख्येन कृत्या जननार्थं चार:
   अभि + चर्--भावे घञ् । वाचस्पत्यम्
3. शत्रुवधोत्पादक कृत्या जनके मूलकर्मणि "श्येनेनाभिचरन यजेतेति" ।
   विहिते श्येन यागादौ । वाचस्पत्यम्, वृहत्संस्कृताभिधानम् ।
4. अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो द्विशतोदम: । तत्रैव
5. "अभिचार महीनञ्च त्रिभि कृच्छैर्व्यपोहति" इति मनु: । तत्रैव
6. "अभिचार क्रिया क्रूरैक प्रकृतय: परोधस:" काद० । तत्रैव

त्रिलिंगी अभिचार शब्द का प्रयोग जहाँ पर कल्याणकारी प्रयोजन हेतु होता है, उन कल्याणकारी कर्मों में तथा मन्त्र आदि में प्रयुक्त स्त्रीलिंगी 'अभिचार' शब्द की निष्पत्ति 'चर्' धातु में 'ङीप्' प्रत्यय से माननी चाहिए ।[1]

'शब्दकल्पद्रुम' में विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त अभिचार शब्द का उल्लेख किया गया है—'अमरकोश' में नपुंसक लिंगी अभिचार शब्द की निष्पत्ति 'अभि' उपसर्ग पूर्वक 'चर्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय से मानी गयी है और इसका प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से शत्रु को मारने के लिए किये जाने वाले हिंसा कर्म में हुआ है अर्थात् 'अमरकोश' में अभिचार कर्म को हिंसा कर्म कहा गया है ।[2]

'तन्त्रसार' में मारणादि प्रयोगों को तान्त्रिक प्रयोग कहा गया है जो छः प्रकार के होते हैं—

1. मारण, 2. मोहन, 3. स्तम्भन, विद्वेषण, 5. उच्चाटन, 6. वशीकरण आदि ।[3] तन्त्रज्ञों के अनुसार "सभी अर्थों में लोग जिसके भय से त्रस्त रहते हैं और अन्य को त्राण देते हैं" यही तन्त्र का तन्त्रत्व है ।[4] 'प्रायश्चित्त विवेक' में अभिचार को 'उपपातक' कहा गया है ।[5] टीकाकार कुल्लूकभट्ट के अनुसार श्येन आदि यागों के द्वारा शत्रु पर मरणार्थ प्रयोग ही अभिचार है ।[6] भरत के के अनुसार अथर्ववेदोक्त मन्त्र-यन्त्रादि में निष्पादित मारण, उच्चाटन आदि

---

1. अभिचाराय हितं स प्रयोजनमस्य वा ठञ,
अभिचारिकः तत्रहितकर्म्मा द्वौ तत्रत्यमन्त्रा द्वौ च त्रि० स्त्रियां ङीप् ।
तत्रैव
2. अभिमुख्येन शत्रुवधार्थं चारः कार्य्यकरणं अभि + चर् + भावे घञ्, हिंसाकर्म्म" । इत्यमरः – शब्दकल्पद्रुमः
3. मारणादिफलक तान्त्रिकप्रयोगविशेषः । स षड्विधः । मारणं, मोहनं, स्तम्भनं, विद्वेषणं, उच्चाटनं, वशीकरणं इति तन्त्रसारः । तत्रैव
4. सर्वेऽर्था येन तन्यन्ते त्रायन्ते च भयाज्जनाः ।
इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः संप्रचक्षते ।। इति विष्णुसंहिता
5. 'उपपातक विशेषः' इति प्रायश्चित्त विवेकः । शब्दकल्पद्रुमः
6. स तु श्येनादि यज्ञेनानपराधस्य मारणं इति कुल्लूकभट्टः । तत्रैव

हिंसात्मक कर्म ही अभिचार की कोटि में परिगणनीय हैं।[1]

'तन्त्रसार में' हिंसात्मक अभिचार क्रिया का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि आभिचारिक क्रिया प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम 'ॐ विरुद्धे...स्वाहा' आदि मन्त्र को पढ़कर खड्ग को अभिमन्त्रित करके खड्ग मन्त्र को पढ़कर खड्ग की पूजा करके 'छागादिकमुकोऽसि' इस प्रकार शत्रु के नाम वाले मन्त्र से अभिमन्त्रित रक्तसूत्र से तीनों ओर से मुख को बांधकर शत्रु की प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए।[3] इसके पश्चात् 'ॐ अयं...खाट्यं' इस मन्त्र को पढ़कर पुष्पार्पण-पूर्वक बलि की पूजा करके आश्विन मास की नवमी को शत्रु के नाश के लिए भगवती दुर्गा को बलि प्रदान करनी चाहिए और 'आं क्रूरं कर' इस शत्रु कीलक मन्त्र को पढ़कर रक्त से देवी दुर्गा को प्रणाम करना चाहिए। इस प्रकार रक्त देकर आठ अङ्गों के मांस से मूलमन्त्र पढ़कर होम करना चाहिए।[3]

भारतीय दर्शन में अभिचार को तन्त्र-साहित्य में ही समाहित माना गया है। तन्त्र की निरुक्ति तन् (विस्तार करना) और त्रै (रक्षा करना) इन दोनों धातुओं के योग से सिद्ध होती है जिसका तात्पर्य यह है कि तन्त्र विपुल अर्थों के विस्तार करने के साथ ही तदनुसारी आचरणशील व्यक्तियों का त्राण भी करता है। फलतः इससे सफलता की सिद्धि की भी सूचना मिलती है। तन्त्र का

---

1. अथर्ववेदोक्तमन्त्रयन्त्रादि निष्पादितमारणोच्चाटनादि हिंसात्मक कर्म इति भरतः। तत्रैव
2. हिंसौषधीनां स्त्रभ जीवोऽभिचारो मूलकर्म च इति मनौ 11 अध्यायः। अथाभिचारः "ॐ विरुद्धे रूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा" इति खड्गमभिमन्त्रा खड्गमन्त्राश्च पठित्वा खड्गं संपूज्य छागादिकममुकोऽसि इति वैरिनाम्नाभिमन्त्रा रक्तसूत्रेण त्रिधामुखं बद्धा वैरिनाम्ना प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा।
3. "ॐ अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणं विनाशय महादेवि स्फें स्फें खाट्य खाट्य" इति पठित्वा बलशिरसि पुष्पं दत्वा बलिमन्त्रं पठित्वा बलिं संपूज्य अद्याश्विनेमासि महा नवम्यां अमुकगोत्रोऽमुक देवशर्मा अमुक शत्रुनाशाय इमं छागंमहिषं वा अमुक दैवतं भगवत्यै दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रद्दे इत्युतसृज्य आँ क्रूरं कर इति क्लित्वां मूलं पठित्वा एतद्रुधिरं मूलमन्त्रेण कुर्य्यादिति तन्त्रसारः। शब्दकल्पद्रुमः

द्वितीय प्रख्यात नाम आगम है। तन्त्र अथवा आगम में व्यवहार-पक्ष का ही प्राबल्य रहता है। तन्त्र का मुख्य रूप है—'साधना का उपदेश'। क्रिया तथा अनुष्ठान पर ही यह प्रधान बल देता है। वाराही तन्त्र के अनुसार आगम के सात लक्षण होते हैं—

1. सृष्टि—विश्व का प्रपञ्च किस प्रकार उदित हुआ।
2. प्रलय—विश्व का तिरोभाव किस प्रकार होता है।
3. देवार्चन—देवताओं की सर्वाङ्गपूर्ण पूजा का विधान।
4. सर्वसाधन—सब सिद्धियों की प्राप्ति के उपाय।
5. पुनश्चरण—मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाओं को सम्पन्न करना।
6. षट्कर्म—शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथ मारण आदि का साधन।
7. ध्यानयोग—अभीष्ट देवता के स्वरूप का एकाग्र मन से चिन्तन, जिससे देवता का प्राकट्य सम्पन्न होता है।

आगम के उपर्युक्त लक्षण तन्त्रसाहित्य में अभिचार के अन्तर्निहित होने की पुष्टि करते हैं।

**प्राचीन समय में अभिचार का स्वरूप**

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन काल में अनेक ऐसे अवसरों का समागम होता है जब उसे यह अनुभव होता है कि वह अपने जीवन में समस्त परिस्थितियों का सामना करने एवं प्रत्येक समस्या का समाधान करने में सक्षम होते हुए भी कुछ अदृश्य किन्तु अतिशक्तिशाली दैवी शक्तियों के समक्ष परवश है। रोग और मृत्यु, अतिवृष्टि, शत्रु-आक्रमण आदि घटनायें मानव-जीवन की अविभाज्य अङ्ग हैं। आधुनिक जगत् में मानव विज्ञान का आश्रय लेकर ऐसी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने के प्रयत्न करता है। रोग होने पर वह चिकित्सा अथवा शल्य का सहारा लेता है। बाढ़पीड़ित क्षेत्रों में नहरें काट काट कर पानी निकाला जाता है और अकाल-ग्रस्त क्षेत्र में क्षुधा से पीड़ित व्यक्तियों के लिए अन्य स्थलों से भोजन-सामग्री के आयात की व्यवस्था की जाती है, इसके

पश्चात् भी यदि किसी क्षेत्र-विशेष में व्यक्ति के प्रयत्न सफल नहीं होते तो वह भाग्य-कर्म अथवा विधाता को दोष देकर चुप बैठ जाता है।

अनेक आदिम जातियों में जिन तक विज्ञान का प्रकाश नहीं पहुंच पाया है, ऐसी दुःखमय परिस्थितियों से विमुक्ति-हेतु मनुष्य ने कुछ अन्य ढंग व तरीके अङ्गीकार किये हैं। नियत समय पर यदि वर्षा न हो तो वह विभिन्न रीतियों एवं विधियों के माध्यम से वृष्टि के लिए प्रयास करता है, यथा, वह उच्च पर्वत शिखरों पर या ग्राम के आस-पास स्थित किसी टीले पर चढ़कर मेघगर्जन तुल्य नाद करता है अथवा शुष्क पत्रों को भूमि पर गिराकर खड़-खड़ जैसा शब्द करता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में अनावृष्टि होने पर ग्राम-बालायें एवं महिलायें पूर्णिमा की रात्रि को अर्धरात्रि काल में ग्राम के बाहर खेत में एकत्रित होती हैं और पूर्ण नग्न होकर नाचती हैं, कुछ अपने कंधों पर हल का पारा रख कर बैलों की तरह चलती हैं। उनका विश्वास है कि इन व्यावहारिक क्रियाओं के कार्यरूप में परिणत होने पर निश्चय ही उद्देश्य की पूर्ति होती है और अकाल दूर हो जाता है। इसी प्रकार अतिवृष्टि के निवारणार्थ तन्तु-वस्त्र से निर्मित गुड़िया और लौह के एक धारदार शस्त्र को भूमि में गाड़ने जैसा विश्वास भी जनसाधारण में प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप वर्षा थम जाती है और बाढ़ उतर जाती है। शत्रु के विनाश के लिए नाना प्रकार की विधियाँ ग्रामीण और जन-जातीय भारत में प्रचलित हैं, यथा—प्रतिद्वन्दी या शत्रु की मूर्ति बनाकर उसे तोड़ना या जला देना, उस पर 'मूँठ' द्वारा आक्रमण करना, आदि।

आदिम जातियों में रोगों को अप्राकृतिक माना जाता है। अन्धविश्वास के वशीभूत होकर वह उसका कारण बताते हैं—भूत, चुड़ैल या डायन का आक्रमण या किसी शत्रु अथवा प्रतिस्पर्धी से द्वेष मानना। अतः रोग निदान हेतु 'भिषक' अपने ऊपर इष्ट-देवता को बुलाता है और उसकी सहायता से दिव्य-दृष्टि प्राप्त कर रोग का कारण स्पष्ट करके रोग-चिकित्सा की विधि बताता है। चिकित्सा के मध्य यथासमय रोगी को तीव्र शारीरिक वेदना दी जाती है जिससे भूत, चुड़ैल आदि का प्रभाव दूर हो जाए। मिर्जापुर के दुधी परगने में रहने वाली जन-जातियों में कभी-कभी रोगी को लोहे की मोटी छड़ से पीटते हैं अथवा दिये की जलती हुई बत्ती को नाक में घुसेड़ते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से भूत-प्रेत भाग जाते हैं। छोटा नागपुर की जन-जातियों में यह धारणा है कि यदि रोग किसी चुड़ैल या डायन की शत्रुता के कारण हो तो डायन को नष्ट करने अथवा भ्रष्ट करने से रोग-निवारण हो जाता है। उसे भ्रष्ट करने के

लिए, उसको अशुद्ध जल या अपवित्र पशु का माँश, पाखाना, पेशाब आदि खिलाने की प्रथा है जिससे डायन के भ्रष्ट होने पर रोगी के ऊपर व्याप्त उसका प्रभाव भी नष्ट हो जाता है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

मध्य और पश्चिम यूरोप में कुछ गुफाओं और भूगर्भ स्थित खोहों की खोज हुई, जिनके विषय में भूगर्भशास्त्रियों की मान्यता है कि वे दो हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन हैं और उनको हिमयुगीन मानव उपयोग में लाता था। इनमें से अनेक गुफाओं में तत्कालीन पशुओं के अनेक सुन्दर तथा भव्य चित्र तथा मूर्तियां हस्तगत हुइं। कई विशालकाय मूर्तियां खण्डितावस्था में प्राप्त हुईं, जिनको देखकर यह प्रतीत होता है कि उन्हें तीक्ष्ण धार वाले शस्त्रों और उपकरणों से खण्डित किया गया है। अनेक स्थलों पर ऐसी प्रतिमाओं के चारों ओर मानव के पग-चिन्ह भी दृष्टिगत हुए जो चिकनी मिट्टी में जमकर पाषाणवत् कठोर हो गये हैं जो इस ओर संकेत करते हैं कि वे उछलते-कूदते नाचते-गाते व्यक्तियों के पग-चिह्न हैं। अन्य उपत्यकाओं में प्राप्त स्त्रियों की नग्न प्रतिमाओं के विषय में प्रागैतिहासिकों का मत है कि हिमयुग के इन अवशेषों से यह प्रकट होता है कि इनका उपयोग तत्कालीन मानवों ने किसी अभीष्ट की सिद्धि के लिए किया होगा। समकालीन आदिम और बंजारा जातियों के रीति-रिवाजों के अध्ययन से इस अनुमान की शत-प्रतिशत पुष्टि होती है।

इस प्रकार की रीतियों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आदिम-काल एवं दशाओं में रहने वाला मानव जीवित रहने और प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ ऐसे कार्य करता था जिन्हें हम वैज्ञानिक और तर्कसंगत नहीं मान सकते। मानव वैज्ञानिक भाषा में इन्हें जादू-टोना कहा जाता है। सांस्कृतिक मानव-विज्ञान में स्वीकृत परिभाषा के अनुसार जादू से हमारा तात्पर्य उन विश्वासों और रीतियों से है जो हमारी विचारधारा के अनुसार झूठे तर्क और कार्य-कारण के गलत सम्बन्ध पर मनुष्य अपने को समर्थ मानकर अपनी व्यक्तिगत सामर्थ्य द्वारा प्राकृतिक शक्तियों को विवशकर उनसे अपना कार्य सिद्ध कराना चाहता है। कार्य-सिद्धि के लिए वह मन्त्र-तन्त्र और विधि का निर्माण करता है। जादूगर, तान्त्रिक अथवा आभिचारिक की मुख-मुद्राओं, शब्दों और भावभंगिमाओं से उसकी सामर्थ्य का आभास मिलता है। वह रौद्र, भयानक और वीभत्स तीनों रसों का पुट देकर उचित वातावरण की सृष्टि करता है।

यह कहना दुष्कर है कि जादू कहां तक अपेक्षित कार्य को सिद्ध करने में सफल होता है। निश्चय ही जादूगर या तान्त्रिक के समस्त प्रयत्न सफल नहीं होते, पर वह साधारणतया यह तर्क प्रस्तुत करता है कि कोई सामर्थ्यशाली किन्तु अदृश्य शक्ति या अन्य जादूगर उसकी कार्यसिद्धि के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रहा है। इस प्रकार की जादुई घटनायें एवं तान्त्रिक प्रभाव आज भी जगत् में दृष्टिगत होते हैं।

जादू-टोना अर्थात् अभिचार क्या है ? इसका स्वरूप कैसा है ? व्यावहारिक जगत् में इसकी उत्पत्ति तथा प्रसार कैसे हुआ, ? इन सम्पूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध मानवशास्त्री सर जेम्स फ्रेजर ने लिखा है कि—"आदि कालीन मानव केवल अपनी सामर्थ्य पर विश्वास करता था और कार्य-सिद्धि के लिए जादुई रीतियों का आश्रय लेता था। जादू के सफल न होने पर वह विरोधी जादू को दोषी ठहराता था। परन्तु शनैः शनैः जादू पर से मानव का विश्वास उठता गया। ज्ञानवर्धन के साथ-साथ उनका यह विचार दृढ़ होता गया कि प्राकृतिक शक्तियां अजेय हैं और उनको केवल सेवा-याचना द्वारा ही सन्तुष्ट किया जा सकता है। रीतियाँ बदलीं, तन्त्र बदले, मन्त्रों के शब्द और उच्चारण विधि में भी परिवर्तन हुआ। रौद्र, भयानक और वीभत्स वातावरण के स्थान पर शान्त वातावरण की सृष्टि की जाने लगी। आज्ञा और अनुशासन का स्थान विजय और प्रार्थना ने ग्रहण कर लिया। मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों में दैवी-आस्था रखकर उनके समक्ष नतमस्तक होने लगा और फलस्वरूप देवताओं को वश में करने वाले सामर्थ्यवान जादूगरों के स्थान पर देवता के विनीत सेवक एवं पुजारी पद की प्रतिष्ठा हुई। धर्म, पूजा और प्रार्थना का उदय हुआ।

कालान्तर में विज्ञान का उदय हुआ, बढ़ती हुई जनसंख्या, आवश्यकताओं और स्थायी जीवन ने इस नवीन पौधे को पनपने में मदद दी। धर्म तथा अन्ध-विश्वास के कठोर प्रतिरोध या दमन के होते हुए भी वैज्ञानिक अनुसन्धान होते रहे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान ने नये मार्ग खोजे और सतत् प्रयोगों द्वारा वस्तुओं और घटनाओं के मध्य कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया। विज्ञान की उन्नति के फलस्वरूप ही मनुष्य स्वयं को विविध अनिश्चितताओं से परे करने में समर्थ हुआ। उसे अपने आत्मिक तथा शारीरिक बल एवं यन्त्र की सहायता पर विश्वास हुआ। यद्यपि यह निर्विवाद है कि अपने वैज्ञानिक बल का

यह आभास और वैज्ञानिक यन्त्र-तन्त्र, जादुई बल मन्त्र और तन्त्र से सर्वथा भिन्न था।

यह देखा गया है कि सम्पन्न एवं निर्धन, साक्षर एव पूर्वाक्षर, ऐतिहासिक अथवा अर्वाचीन, आदिम अथवा आधुनिक सभी समाजों में जादू और धर्म दोनों पाये जाते हैं। प्रत्येक समाज की रीतियों में कुछ ऐसी रीतियाँ हैं जिनमें प्राकृतिक शक्तियों से बलपूर्वक कार्य करवाने की भावना पाई जाती है और कुछ ऐसी, जिनमें प्राकृतिक शक्तियों को दैवी मानकर उनकी पूजा-प्रार्थना की जाती है।

उत्तर भारत की अधिकांश आदिम जातियों और ग्राम्य समाजों में कृषि पर ही जीवन निर्भर करता है। वर्षा के अभाव में फसल सूख जाती है। अत: वर्षा के लिए मनुष्य अनेक प्रकार के प्रयत्न करता है। हमारे ग्रामीण अंचलों में सूखा पड़ने पर कुछ लोग दरवाजे-दरवाजे पर जाकर पानी की भीख माँगते हैं। धूल में लोटते हैं और प्रथा के अनुसार प्रत्येक दरवाजे पर लोग उन पर पानी उड़ेलते हैं। मध्य भारत के गाँवों में ऐसे अवसरों पर बच्चे और कभी-कभी वयस्क भी तालाबों में छुपकर मेंढक की बोली बोलते हैं। कहीं-कहीं लोग टीलों पर चढ़कर धूल और पत्ते उड़ाते हैं और ऐसी आवाज करते हैं मानो मेघ गरज रहे हों। इन जादुई क्रियाओं का उद्देश्य वर्षा करवाना है। साथ ही इन्द्रपूजा और मेघपूजा भी प्रचलित है। आसाम की नागा जाति में मनुष्य का गर्म रक्त तथा मांस भूमि पर छिड़कने की प्रथा है जिनका उद्देश्य भूमि में वपित बीज को भली-भाँति उपजाना माना जाता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु ग्रामीण जातियों में हल तथा धरती की नैवेद्य आदि से पूजा करने की प्रथा है और कहीं-कहीं धरती माता के लिए पशुबलि देने की भी। इस प्रकार की धार्मिक तथा जादुई रीतियों का उद्देश्य केवल भूमि पर उपज की वृद्धि करना है। मिर्जापुर के दुधी परगने में मनुष्यों में रोग के दो कारण माने जाते हैं। पहला दैवीय अर्थात् किसी देवी-देवता की अप्रसन्नता, जिसको पूजा, बलि अथवा प्रार्थना द्वारा सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। इसका कारण दानवीय अथवा मानवीय, जिसमें अकारण ही भूत-प्रेत, चुड़ैल अथवा डायन मनुष्य को कष्ट देते हैं और उनके रोग-निवारण के लिए मन्त्र द्वारा ऐसे भूत-प्रेत को हटाने का प्रयत्न किया जाता है। एक ही व्यक्ति दोनों प्रकार के कार्य करता है। यह साधारणत: चेरो जाति का होता है। पुजारी के रूप में इसे 'बैगा' और तान्त्रिक के रूप में 'ओझा' कहते हैं। दोनों ही प्रकार की रीतियों का उद्देश्य

रोगी को रोग से मुक्त कराना है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में टायलर ने अपनी पुस्तक 'प्रीमिटिव कल्चर' में जीववाद के सिद्धान्त का वर्णन किया। टायलर का विचार है कि स्वप्नों और जाग्रत स्वप्नों, निद्रा और मृत्यु को समझने के प्रयत्न में आदि मानव ने जीव अथवा आत्मा को खोज निकाला और इस प्रकार प्रेत व जीव पूजा प्रचलित हुई। बाद में पशुओं, पक्षियों, पेड़-पौधों में भी व्यक्तिगत आत्मायें मान ली गईं। प्राचीन सभ्यताओं और अनेक अर्वाचीन वन्य जातियों से दृष्टान्त लेकर टायलर ने जीववाद की पुष्टि की। उदाहरणस्वरूप छोटा नागपुर की एक जाति में मृतक का दाह करने के कुछ दिन पश्चात् ही उसकी आत्मा को मन्त्र के द्वारा वापस बुलाकर अदिंग अथवा भोजन-गृह के एक कोने में स्थापित किया जाता है। पर्व तथा त्योहारों पर अदिंग स्थित आत्माओं को जल तथा भोजन अर्पित किया जाता है। पितृ आत्माओं के सन्तुष्ट और प्रसन्न न रहने पर धन-जन अथवा प्रतिष्ठा की हानि होती है ऐसा इनका विश्वास है। गृह में जन्म के अवसर पर जादू की प्रक्रियाओं द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किस पितर की आत्मा ने नवीन शरीर में जन्म लिया। इसके अतिरिक्त भूत-प्रेत, चुड़ैल आदि विश्वास और रीतियां हमारे देश में सर्वत्र प्रचलित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां विज्ञान की किरण अभी नहीं पहुँची है वहां आज भी रोग अथवा अकाल मृत्यु का कारण भूत-प्रेत आदि आत्माओं का क्रोध ही माना जाता है। दक्षिणी समुद्र स्थित द्वीपों में अदृश्य, अमानवी, अस्पृश्य शक्ति के लिए 'माना' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अदृश्य, अमानवी शक्ति के प्रति विश्वास आसाम की नागा जाति में भी पाया जाता है। नागा इसे 'अरेन' कहते हैं। छोटा नागपुर की सन्थाल मुण्डा, भाषा-भाषी जन-जातियों में इस अदृश्य शक्ति को 'बोंगा' कहते हैं।

प्रसिद्ध जर्मन प्राच्यविद्याविद् मैक्समूलर ने धर्म का कारण भाषा का दोष बताया है। वेदों से उदाहरण लेकर मैक्समूलर ने प्रकृतिवाद की पुष्टि की है। प्रकृति के सानिध्य में रहने वाला आदि मानव अपने चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित और भयभीत रहता है और इसी कारण वह प्रकृति की शक्तियों में विश्वास करने लगता है। उसके भाषा-दोष के कारण प्राकृतिक शक्तियां कालान्तर में देवी-देवताओं का आवरण धारण कर लेती हैं और विधिवत् उनकी पूजा-अर्चना होने लगती है। वैदिक कालीन भारत में अग्नि, जल, वायु आदि को महान् प्राकृतिक शक्तियों के रूप में स्वीकार किया जाता

था। बाद में ये शब्द प्राकृतिक देवताओं के लिए व्यक्ति वाचक संज्ञा के रूप में प्रयोग होने लगे और शक्तियों की देवी-देवताओं के रूप में मान्यता होने लगी।

**कुछ विशिष्ट जनजातियों में धर्म तथा जादू का स्वरूप**

1. **सन्थाल जाति :** सन्थालों में धर्म का महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है जिसका आश्रय लेकर सम्पूर्ण जन-जाति को एकता के सूत्र में पिरोये रखने का प्रयप्न किया जाता रहा है। जादू के द्वारा उस अज्ञात रहस्यमयी शक्ति पर नियन्त्रण तथा प्रभुत्व स्थापित किया जाता है जो कि यदा-कदा हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों या प्रकार्यों के लिए पृथक्-पृथक् व्यक्ति होते हैं जिन्हें विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है, यथा— ओझा, जंगरू, कामरू, गुरु, रेरेनिक, आतोनेक, कुदामनेक तथा देहरी। प्राकृतिक कारणों से पीड़ित व्यक्ति का उपचार करने वाला रेरेनिक कहलाता है, अथवा जड़ी-बूटी वाला चिकित्सक कहलाता है। जब यह चिकित्सक पीड़ित व्यक्ति का उपचार करने में सफल नहीं होता तब उन लोगों को रोग की चिकित्सा के लिए आमन्त्रित किया जाता है जिन्हें 'बोगा' का समर्थन प्राप्त होता है तथा जनगुरु और ओझा को भी आमन्त्रण दिया जाता है जो जड़ी-बूटी के अतिरिक्त जादुई शक्ति से बीमार व्यक्ति को स्वस्थ करने का प्रयत्न करते हैं। मृत पूर्वजों की आत्माओं पर भी इनका विश्वास होता है।

**भील जाति :** भील लोग भी हिन्दू देवताओं में विश्वास एवं उनके प्रति श्रद्धा की भावना रखते हैं; जिन्हें वे शक्तिमान मानते हैं तथा जो उनके विचारों में दयालु हैं, हानिकर नहीं। ये लोग भी मृत आत्माओं पर विश्वास करते हैं। प्राकृतिक शक्तियों एवं आत्माओं को मदिरा तथा बलि देकर प्रसन्न करते हैं। इन्द्र जाल एवं जादू विकल्प पर भी इनका अटूट विश्वास है अर्थात् एक ऐसी अन्तर्जात शक्ति जो दूसरों को हानि पहुँचा सकती है तथा विनाश का कारण बन सकती है।

**थारू जन-जाति :** हिन्दू समाज के साथ अविभाज्य सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप थारू जनजाति के लोग भी हिन्दुओं के देवी-देवताओं जैसे—महादेवी काली, सत्यनारायण आदि पर विश्वास तथा उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। जन-जातिओं में इष्टकर तथा हानिकर दोनों ही प्रकार के देवता पाये जाते हैं यथा –'पछावन' नामक देवता की गणना इष्टकर देवताओं में होती है और 'खड़गा भूत' (बुरी आत्मा) को हानिकर देवता की कोटि में रखा गया है किन्तु

दोनों को ही प्रसन्न रखने के लिए पूजा का विधान है। 'परवतिया' तथा 'पुन्यागेरी' थारू धर्म में प्राचीन समय से वन्दनीय हैं। 'वनस्पति' 'ऐरीमल' तथा 'मारमल' जंगल के देवता माने जाते हैं।

**डफला जनजाति** : ये लोग बुरी आत्माओं तथा भूतादि में अत्यधिक विश्वास रखते हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त धार्मिक देवी-देवताओं के प्रति भी इनका इतना ही विश्वास है। 'ब्रह्मदेव', 'देवली मदीकना', 'श्री देवी' इत्यादि इनके प्रमुख देवी-देवता हैं। किसी की बीमारी का कारण देवताओं के स्पष्ट होने से लगाया जाता है। इस जाति के धर्मोपासक तथा पुजारियों को भगत कहा जाता है। ये स्त्री या पुरुष दोनों ही हो सकते हैं।

**वैदिक वाङ्मय में अभिचार का स्वरूप**

वैदिक अभिचार के क्षेत्र में हमारा परिचय मानव के उत्थान एवं पतन से सम्बद्ध उत्कृष्ट एवं निकृष्ट दोनों प्रकार के कर्मों से होता है, क्योंकि यहां यदि मनुष्य को भय दिखाने वाले विविध भूतों का विचार विद्यमान है तो साथ ही ऐसी शक्तियां एवं तत्व भी कार्य करते दृष्टिगोचर होते हैं, जो व्यक्ति से असम्बद्ध हैं और पदार्थों में बसते हैं तथा जिनकी जादू के रूप में अपनी विचित्र महत्ता है। यह सम्भव है कि प्राचीनतर मत वह जो इन शक्तियों को या तो चेतनवादी दृष्टिकोण से वस्तुतः चेतनरूप में अथवा जीववादी दृष्टिकोण से सत्वों के रूप में देखता था, किन्तु वैदिक साहित्य में तो हमें वैयक्तिक और अवैयक्तिक दोनों ही दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से साथ-साथ मिलते हैं और वेद की प्रत्येक वस्तु की भांति इन दोनों में कदाचित स्पष्ट पार्थक्य का उद्भव न हो सका। उदाहरणस्वरूप ऐसी शक्तियों में से एक है 'यज्ञीयत्रुटि' जो यज्ञीय स्तम्भ के साथ इस प्रकार सन्निहित हो जाती है कि यदि इस शक्ति को कीलने के लिए सचेत न रहा जाए तो यह यजमान को त्रस्त कर सकती है। ऐसी ही एक अक्षय शक्ति स्त्री में विद्यमान रहती है जो यदि उस स्त्री को प्रसन्न न रखा जाए, तो उसे अपने पति को मारने या उसके लिए वंश न बढ़ाने अथवा उसके पशुधन की हानि एवं उनमें रोग फैला देने के लिए प्रेरित करती है। वास्तव में यह शक्ति चीते की उस शक्ति से भिन्न प्रकार की नहीं मानी जा सकती, जो उसके बालों (रोमो) एवं उसकी चमड़ी में रहती है तथा जिसके कारण ही ये वस्तुएं यज्ञ में विविध आभिचारिक अनुष्ठानों में प्रयोजनीय सिद्ध होती हैं। इन्हीं के सहयोग से मनुष्य अपने लिए शक्ति एवं सम्पूर्ण मनुष्य जाति के ऊपर प्रभुत्व-प्राप्ति खोजता है, जैसे कि मानव या जीव पर चीता किया करता है।

शीत के लिए मेंढक तथा 'अवका' पौधे का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि उनमें जलीय प्रकृति होती है। यह एक तथ्य है जो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि वैदिक विचारधारा में लक्ष्य-प्राप्ति हेतु प्रतीक रूप में किसी देवता की उपस्थिति कितनी अधिक वास्तविक थी। राज्य से निष्कासित राजा अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने की अभिलाषा से अपने घर में एक मृत-पिण्ड का प्रयोग करता है। विद्युत अपनी शक्ति को उस वृक्ष में छोड़ जाती है, जिसका वह विध्वंस करती है और जंगली शूकर उस भूमि में, जिस पर कि वह थूथड़ी मारता है। मनुष्य का नाम, प्रतिमा, केश एवं पादचिह्न तक आभिचारिक क्रियाओं से इस प्रकार सम्बद्ध माने गये हैं मानों वे अनिष्टकारी शक्तियों के विनाश के लिए पर्याप्त क्षमता रखते हों। इस प्रकार के विषयों का आलोचन-आलोडन करते ही हम ऐसे आख्यानों की तह में विचरण करने लगते हैं जहां यह उद्धृत है कि हँसने में सुख ने अपनी आभा को स्वयं से विरत कर दिया, देवताओं ने इसे पौधों में रख दिया और इससे ज्वार-बाजरा उत्पन्न हो गया अथवा एक बार वालखिल्यों ने तपस्या की; परिणामस्वरूप प्राप्त हुई शक्ति के आधे को तार्क्ष्य ने पी लिया और इससे गरुड़ पक्षी की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार का एक विचार हमें मुख से प्रभावित होने के भय में मिलता है, जो निःसन्देह वेद द्वारा उपदिष्ट उपवास के मूल में है और यही है मूल में श्वास लेने मात्र से प्रभावित होने के, इसी कारण श्वास को रोकने का विधान किया गया है। दृष्टिमात्र से प्रभावित होने के भय से नेत्र बन्द कर लेने चाहिए या यजमान को इधर-उधर नहीं देखना चाहिए। वास्तविक पदार्थ और अध्यात्म के मध्य निरन्तर चलने वाली वैदिक, परिकल्पना ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट होती है। पापमन या तक्मन (ज्वर) की परिकल्पनाएं ऐसी ही हैं। उन उपायों (साधनों) का जिन्हें हम प्रार्थना एवं यज्ञ से, अलग करके अभिचार कह सकते हैं पर्याप्त अंश तथ्य के यथार्थ निरीक्षण पर आधृत हैं परन्तु उतना ही वह गलत समझी गयी कल्पनाओं पर भी आधृत है। अभिचार वास्तव में विज्ञान का पूर्वगामी है और विज्ञान के सदृश ही यह हर तरह की भ्रान्त धारणाओं को दूर करने में धीमा या सुस्त है। किसी विशेष अवसर पर तो पदार्थों को आकृष्ट करना अभिप्रेत होता है किन्तु अन्य अवसरों पर उन्हें दूर रखना या स्वयं उनसे दूर रहना अति आवश्यक भी होता है। आभिचारिक विषयों की ही दूसरी शाखा है शकुन-विचार या दिव्य-दर्शन, जो उसी सामीप्य या सादृश्य पर आधृत है जिस पर आभिचारिक नियम। साधन विविध रहते हैं इनमें शब्द

अत्यन्त महत्वपूर्ण व प्रभावशाली होते हैं और ऐसा ही महत्व होता है उन वस्तुओं की प्रतिमाओं या चित्रों का, जिनको उन वस्तुओं के प्रतिनिधि के रूप में अथवा उनके साथ ही उपयोग में लाया जाता है, जो अभिचार के विषयी-भूत मानव या पादर्थ से सम्बद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक-अभिचार में समय भी महत्वशाली होता है। यथा—बहुत से कर्मों के लिए रात्रि का समय सर्वथा उचित बताया गया है। आभिचारिक क्रियाओं के निष्पादन के लिए स्थान का चुनाव भी विशेष प्रकार से कर्मों के अनुसार ही भिन्न-भिन्न स्थलों पर किया जाता है, यथा—चौराहा, श्मशान, जहां आन्तरिक व अदृश्य शक्तियां विद्यमान रहती हैं और जहाँ शिकारी दुष्ट पक्षी या गीदड़ बहुधा रहा करते हैं।

अभिचार समस्त विश्व में समान रूप से पाया जाता है क्योंकि यह मनुष्य के आदिम विज्ञान के एक अंश का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय अभिचार में जो विशेषताएँ विद्यमान हैं वे अल्प हैं, किन्तु इनके टोटकों के प्रकार-भेद बहुत अधिक हैं। सौभाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश भारतीयों के बुद्धिमता विषयक हमारे वैदिक मत के लिए केवल अथर्ववेद ही हम तक नहीं पहुंच पाया है वरन् कौशिक सूत्र में भी उस वेद के मन्त्रों के साथ प्रयुक्त होने वाले कृत्यों का रूप सम्पूर्ण विवरण में दिया गया है। अन्य विवरण परिशिष्ट ग्रन्थों, यथा, अथर्व परिशिष्ट, सामविधान ब्राह्मण, ऋग्विधान एवं अन्य गौण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। ये कृतियां बहुत अधिक प्राचीन नहीं हैं किन्तु इनमें प्राप्त अधिकांश कृत्यों का काल निश्चितरूपेण प्राचीन ही है। वे क्रियायें जिनके विषय में हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि वे नवीन आविष्कार हैं और जिनकी संख्या अत्यधिक है, वे हैं जिनमें पौरोहित्य सम्बन्धी कल्पना ने देवशास्त्रीय पृष्ठभूमि का उद्भावन इसलिए किया है कि उस पर अभिचार के भवन को खड़ा किया जाए। इस प्रकार कौशिक-सूत्र में कथित एक कृत्य में दुष्ट शक्तियों (अरिष्टों) को कीलने हेतु ऐसे भोजन के प्रयोग का विधान किया गया है जिसे उस वृक्ष के काष्ठ से पकाया जाता है जिस पर पक्षी घोसले बनाते हों। ऐसा इसलिए होता है कि उस कृत्य में पठित मन्त्रों में दुष्ट शक्तियों को कीलने या मारने वाले इन्द्र को वृक्ष पर पक्षी रूप में उतरने का निमन्त्रण दिया गया है।

### अभिचार का प्रयोजन या उद्देश्य

जादू-टोना या अभिचार कर्म की गणना सदैव निकृष्ट कर्मों के अन्तर्गत ही नहीं की जा सकती, क्योंकि ये कर्म सदैव अमानुषिक ही नहीं होते अपितु

प्राचीनकाल में तो इन्हीं आभिचारिक क्रियाओं का आश्रय लेकर ही मनुष्य शत्रुओं तथा रोगों के आक्रमण से अपनी तथा अपने कुटुम्ब की रक्षा किया करता था। इस आधार पर वस्तुतः आत्मसंरक्षण की भावना ही जादू-टोना तथा अभिचार जैसी क्रियाओं की पृष्ठभूमि है। हर प्राणी इस पृथ्वी तल पर अपना अस्तित्व बनाये रखने का इच्छुक होता है, उसकी सदैव यही अभिलाषा रहती है कि वह भी दीर्घकाल तक सुख-सौविध्य का उपभोग करे। उसका कुटुम्ब, परिवार तथा उसकी सन्तान भी कल्याणमय जीवन व्यतीत करे, इसे ही आत्मसंरक्षण की प्रवृत्ति कह सकते हैं। मानव सुखमय सांसारिक जीवन व्यतीत करने हेतु प्रथमतः अपनी सुरक्षा अपने ही भौतिक उद्योगों के बल पर करता है परन्तु जब असफलता उसके मार्ग में अवरोधक बनकर उसके प्रयासों को विफल बना देती है तब ऐहिक सिद्धि के लिए उसका चंचल मन स्वतः ही आधिदैविक क्रियाओं तथा प्रयासों की ओर उन्मुख एवं अग्रसर होता है। इन्हीं प्रयासों के अन्तर्गत एक प्रयास को अभिचार के नाम से अभिहित किया गया है, जिसका प्रयोग उभयविध प्रणालियों से किया जाता है—

1. शोभन प्रणाली या विधि, 2. अशोभन प्रणाली या विधि।

अभिचार की शोभन प्रणाली का प्रयोजन मुख्यतया किसी अन्य के द्वारा किये गये अभिचार से स्वरक्षार्थ हो सकता है या होता है अर्थात् इस आभिचारिक क्रिया या विधि में आत्मरक्षा की भावना प्रबल होती है।

द्वितीय विधि अर्थात् अशोभन अभिचार में शत्रु-विशेष के ऊपर मारण-मोहन तथा उच्चाटन की क्रियायें जागरूक रहती हैं।

आचार्यों ने आथर्वणिक मन्त्रों को शान्ति, पुष्टि तथा अभिचार इन तीन भागों में विभक्त किया है लेकिन इन तीनों ही प्रकार के मन्त्रों का लक्ष्य समान ही है। जब हम इन मन्त्रों का अध्ययन करते हैं तो यही आभास होता है कि अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति, विनाश से रक्षा, दुर्भाग्य का निवारण यही इस संहिता के प्रधान विषय हैं। वस्तुतः अथर्ववेद के शान्तिकर्मों में भी आभिचारिक भावना ही सन्निहित दृष्टिगोचर होती है क्योंकि मारण, मोहन, उच्चाटन आदि जो अभिचार कर्म किये जाते हैं उनका उद्देश्य आत्मोन्नति हेतु दूसरे की हानि करना ही होता है अथवा अपनी हानि के निवारणार्थ ही इन क्रियाओं को सम्पादित किया जाता है। इसलिए अभिचार कर्म का परिगणन शान्ति कर्म के अन्तर्गत

होना सर्वथा उचित है। इसी प्रकार प्रायश्चित, कृत्या आदि अशुभ कर्मों के अशुभ फल देने वाले दुःस्वप्नादि के शमन के लिए जो मन्त्र प्रयोग किये जाते हैं उनका भी मूल उद्देश्य शान्ति ही है। अभिचार कर्मों से होने वाली हानि और अशुभ की शान्ति के लिए जो आभिचारिक मन्त्र प्रयोग किये जाते हैं वे शान्ति वर्ग के अन्तर्गत परिगणनीय हैं।

रोगों से मुक्ति मिलना और औषधियों तथा भैषज्य मन्त्र-विधि से लाभ प्राप्त करना पुष्टिकर्म है। अथर्ववेद में कर्मज व्याधियों को दूर करने के लिए जो प्रयोग बताये गये हैं उनके मूल में अभिचार कर्म और कृत्या दोषों का निवारण ही है क्योंकि कर्मज व्याधियां, टोना-टोटका तथा अभिचार कर्मों-भूतों, प्रेतों एवं पिशाचों के प्रभाव तथा शाप से उत्पन्न हुआ करती हैं। ऐसी व्याधियों का निदान डॉक्टर, हकीम कर सकने में अक्षम पाये जाते हैं। इनका निदान व निवारण आथर्वण तन्त्रविद् ही सुगमता से कर पाने में समर्थ होते हैं। वैदिक कर्मकाण्ड में इस सिद्धान्त को आत्मसात् कर लिया गया है कि ऐहिक-सिद्धियों के लिए मानव को प्रतिकूल शक्तियों को प्रसन्न करते हुए स्वानुकूल बनाना आवश्यक है। इस आधार पर उनके कर्मों का उद्देश्य केवल अपनी सुरक्षा ही रहता है। सुरक्षा की रेखा से हटकर कुछ व्यक्ति अभीप्सित पदार्थों की प्राप्ति हेतु भी शक्तिशाली शक्तियों या पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं जिससे यदि शत्रु उन पर आक्रमण करता है तो वह अपनी सामर्थ्य एवं बल से उसका प्रति उत्तर दे सकें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिचार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन समय तक अभिचार क्रियाएँ अपने भिन्न-भिन्न रूपों में विद्यमान रही हैं। विविध अभिलाषाओं को मन में संजोने वाला मानव अपनी इच्छा पूर्ति के लिए इन अभिचारों का प्रयोग यथासमय इच्छानुसार करता रहा है भले ही वह अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति के लिए कर्म हो अथवा शत्रु को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से आभिचारिक कर्म, समाज में श्रेष्ठ स्थान पाने के लिए कोई कर्म हो अथवा भूत-प्रेतादि से ग्रस्त रोगी की मुक्ति के लिए कोई आभिचारिक क्रिया। परन्तु अन्त में उन सभी का लक्ष्य आत्मरक्षा एवं आत्मोन्नति ही प्रतीत होता है।

द्वितीय अध्याय

# वैदिक वाङ्मय में अभिचारपरक स्थलों का सर्वेक्षण

वैदिक साहित्य के परिचयात्मक ग्रन्थों में वैदिक वाङ्मय का वर्गीकरण इन स्तम्भों के अन्तर्गत प्राय: किया है—मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। कुछ विद्वान इन स्तम्भों को तीन वर्गों में और कुछ चार वर्गों में रखते हैं। तीन वर्गों में वैदिक साहित्य को विभक्त करने वाले विद्वान् ब्राह्मण और आरण्यकों को एक श्रेणी में रखते हैं। विन्टरनित्स ने वैदिक साहित्य का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है—

1. संहिताएं (मन्त्र संग्रह), 2. ब्राह्मण ग्रन्थ, 3. आरण्यक ग्रन्थ तथा उपनिषद्।

इसके अतिरिक्त कल्पसूत्रों (श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्बसूत्र) एवं छ: वेदाङ्गों की गणना भी वैदिक साहित्य के इतिहास में की जाती है, किन्तु इन्हें वेद का भाग नहीं माना जाता है। इनकी मान्यता वेदाङ्ग के रूप में है। विण्टरनित्स का इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट कथन है—"वेद शब्द का प्रयोग वेदों से लेकर उपनिषद् तक के साहित्य के लिए ही होता है। इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक ग्रन्थ भी हैं, जिनका वेद से अन्तरंग सम्बन्ध है, किन्तु वे वेद के भाग के रूप में स्वीकृत नहीं हैं। उन्हें सूत्र के नाम से ही अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों तथा उपनिषदों के समान ये सूत्र ग्रन्थ भी किसी न किसी वेद से सम्बद्ध हैं। इनका उद्भव किसी वेद विशेष का अध्ययन न करने वाले श्रोत्रियों में हुआ। परन्तु इन सूत्र ग्रन्थों को मानवकृत माना जाता है ईश्वरीय ज्ञान नहीं। ये वेद का भाग नहीं हैं।"

मैक्डॉनल के अनुसार वैदिक युग में स्पष्टत: प्रतीयमान तीन साहित्यिक स्तर दिखाई पड़ते हैं—

1. वैदिक संहिताओं का युग, 2. ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् युग, 3. सूत्र युग

विद्वानों द्वारा वैदिक वाङ्मय का वर्गीकरण जैसा भी हो, किन्तु सम्पूर्ण वाङ्मय में लोक जीवन के मंगलमय सत्कर्म के प्रेरक के रूप में धर्म-भावना की मूलत: अभिव्यक्त हुई है जिसमें धर्म भावना के निकृष्ट पक्ष का (अभिचार आदि निम्न कोटि के कर्मों का) भी यथास्थान वर्णन किया गया है।

वेद का शाब्दिक अर्थ है ज्ञान। वेद शब्द 'विद्' धातु से बनता है। यह पद समस्त धार्मिक ज्ञान का वाचक होकर तत्सम्बन्धी साहित्य को लक्षित करता है। किसी भी देश या समाज में दो स्तरों के मनुष्य पाये जाते हैं– एक तो हैं, निम्न स्तर के पुरुष, जिनके आचार-विचार एक विचित्र धारा में प्रवाहित होते रहते हैं, वे साधारण जनता के नाम से पुकारे जाते हैं। दूसरे हैं, उच्चस्तर के पुरुष जिनकी शिक्षा-दीक्षा होती है और अपनी शिक्षा के प्रभाव से जिनकी विचारधारा एक विशिष्ट मोड़ लेकर प्रवाहित होती है। दोनों की रुचि तथा आचार-विचार परस्पर भिन्न होते हैं।

वैदिक वाङ्मय में 'अभिचार' को निम्न स्तर वाले पुरुषों या व्यक्तियों का कर्म कहा गया है क्योंकि वेदकालीन समाज में साधारण जनता के अनेक विश्वास विचित्र तथा विलक्षण हैं। किसी भी रोग का निदान करते समय वे आधिदैविक कारणों की उपेक्षा नहीं करते। उनके जीवन पर भूत प्रेत-पिशाच, डाकिनी-शाकिनी जैसे अदृश्य अर्धदैविक प्राणियों की सत्ता उसी प्रकार प्रभाव डालती है, जिस प्रकार भूतल के दृश्य प्राणियों का अस्तित्व। उनकी दृष्टि में ये पदार्थ अदृश्य जगत् के निवासी न होकर इस ठोस धरातल पर उसी प्रकार रहते हैं जिस प्रकार मनुष्य तथा पशु। फलत: उनके विचार में इन प्राणियों का अस्तित्व उनके जीवन की घटनाओं को प्रभावित करने में सर्वथा समर्थ होता है।

वैदिक साहित्य में जब हम कर्मकाण्ड की ओर दृष्टिपात करते हैं तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान अथर्ववेद की ओर जाता है क्योंकि जहाँ अन्य वेद देवताओं की स्तुति को ही अपना प्रतिपाद्य विषय बनाते हैं, वहीं अथर्ववेद भौतिक विषयों के वर्णन में अपने को कृतकार्य मानता है। अथर्ववेद निश्चय ही ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक लोकतत्त्वों से अनुप्राणित है। जनसामान्य में प्रचलित मन्त्र-तन्त्र या जादू-टोने के प्रयोग ही अधिकतर वर्णित हैं। आदि मानव की नाना प्रकार की विचित्र क्रियाओं, आचार-विचारों और रहन-सहन की पूरी जानकारी के लिए अथर्ववेद से पुराना ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता– जैसे शत्रुओं पर विजय

पाने के लिए, क्लेशदायी दीर्घ रोगों के निवारण के लिए, सद्योजात शिशु तथा उसकी माता को सन्तप्त करने वाले भूत-प्रेतों के विनाश के लिए नाना अभिचारों का विचित्र वर्णन अथर्ववेद के सूक्तों में पाया जाता है। जादू-टोना का प्रचार आथर्वण सभ्यता की एक विशिष्ट घटना है।

आचार्यों ने अथर्ववेद के मन्त्रों को शान्ति, पुष्टि एवं अभिचार इन तीन विभागों में विभक्त किया है। जब हम सम्पूर्ण अथर्ववेद संहिता के मन्त्रों का चिन्तन करते हैं तो यही प्रतीत होता है कि अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति विनाश से रक्षा, दुर्भाग्य का निवारण यही इस संहिता के प्रधान विषय हैं। वस्तुतः अथर्ववेद के शान्ति कर्मों में अभिचार कर्म ही निहित हैं, क्योंकि मारण, मोहन, उच्चाटन आदि जो अभिचार कर्म किये जाते हैं उनका उद्देश्य अपनी उन्नति करना एवं दूसरों की अवनति अथवा अपनी हानि का निवारण ही होता है। इसलिए अभिचार कर्म की गणना शान्ति कर्म के अन्तर्गत होना यथेष्ट है। इसी प्रकार प्रायश्चित्त, कृत्या आदि अशुभ कर्मों के अशुभ परिणाम देने वाले दुःस्वप्नादि के शमन के लिए जो मन्त्र प्रयुक्त होते है उनका मूल उद्देश्य शान्ति की स्थापना ही होता है।

अथर्ववेद में अभिचार कर्म और यातुकर्म का जो वर्णन और निवारण-विधान है, उन कर्मों के प्रवर्तक अङ्गिरस ऋषि हैं भूत-प्रेतों के द्वारा अभिचार कर्म करने वाला अथवा इन्द्रजाल द्वारा अद्भुत कर्म करने वाले लोगों को अथर्ववेद में यातुधान कहा गया है। जो भी व्यक्ति अभिचार कर्म करते हैं उन मनुष्यों और राक्षसों में अथर्ववेद कोई भेद नहीं मानता। अथर्ववेद में भ्रातृव्य (शत्रु), सपत्न (शत्रु, प्रतिद्वन्दी) अशय, पिशाच और दानवों को समान अर्थ में लेते हुए एक कोटि में रखा गया है। अभिचार कर्म में जिन कृत्यों का उल्लेख मिलता है उनमें सपत्नबाधन, विनाशन, पीडन, मारण, वशीकरण, विद्वेषण, मोहन, उच्चाटन और स्तम्भन आदि प्रमुख हैं।

अथर्ववेद के प्रथमकाण्ड के विभिन्न सूक्तों का प्रयोग यातुधानों, भ्रातृव्य, सपत्न और दुष्ट शक्तियों के विनाश के लिए किया गया है।[1] द्वितीय काण्ड के चौदहवें सूक्त के मन्त्रों[2] द्वारा भूत-प्रेत, पिशाच की बाधा दूर करने के

---

1. अथर्व०, 1 7,8,16,19,28
2. तत्रैव 2,14.1-6

अतिरिक्त गृहपशु और मनुष्यों की सुरक्षा का विधान किया गया है। अन्य मन्त्र में 'घोर राक्षस' के विरुद्ध मन्त्रोच्चारण द्वारा प्रयोग विधि बताई गई है कि अरलुमणि उन क्रूर प्राणियों के लिए उसी प्रकार दूषित करने वाला हो, जैसे कुत्तों के लिए बन्दर हानिकर होता है।[1] शत्रुओं के लिए प्रयुक्त अन्य मणियों में तिलक मणि को 'रक्षासूत्र' का नाम दिया गया है।[2] इस मणि का सेवन करने से कफ, कोढ़, कृमि, वस्तीमुख तथा दाँत के रोग भी दूर होते हैं। अथर्ववेद में अभिचार-प्रयोगों के लिए औषधियों का प्रयोग सर्वोत्तम बताया गया है। कृत्या आदि के लिए सद्पुष्पा (सदाबहार) के पौधों से किये जाने वाले प्रयोग अमोघ सिद्ध हैं।[3] इस पौधे की पत्तियों का अभिमन्त्रित रस पान करने से कैंसर जैसे असाध्य रोग दूर होते हैं। भूख मारने वाले, प्यास मारने वाले, शरीर को सुखाने वाले, पागल बना देने वाले अभिचार कर्मों को अथर्ववेदीय मन्त्रों से अभिमन्त्रित अपामार्ग (लटजीरा) दूर करता है।[4] दुष्कर्मों के कारण मनुष्य को जो पाप और शाप पीड़ित करते हैं उनका निवारण अपामार्ग से हो सकता है। कच्चे मांस पर की गई कृत्या का प्रयोग करके उसे शत्रु द्वारा घर में रख दिये जाने पर अपामार्ग से उसको दूर किया जा सकता है।[5]

पतिवेदन का अर्थ है पति को प्राप्त करना। अथर्ववेद के दो सूक्तों[6] का प्रयोग विवाह के लिए योग्य अवस्था हो जाने पर भी कन्या का विवाह न होने पर, उसके लिए वर प्राप्ति हेतु किया जाता है। इस प्रयोग में कन्या को काले तिल खिलाने एवं पिता द्वारा अग्नि में हवन करने का विधान है।

विवाह के पूर्व या विवाहोत्तर पति-पत्नी अथवा प्रेमिका में परस्पर तनाव या घृणा जाग्रत होने पर उनमें परस्पर प्रेमभाव उत्पन्न करने के लिए अथर्ववेद के छठे काण्ड का एक सूक्त[7] प्रयोजनीय बताया गया है। जिसमें पुरुष में प्रेम

---

1. येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च॥ अथर्व०, 3.9.4
2. तत्रैव 2.11.2
3. तत्रैव 4.20.11
4. तत्रैव 4.17.6,7
5. तत्रैव 4.17.3,4
6. तत्रैव 2.36;6.60
7. तत्रैव 6.133

भाव उत्पन्न करने के लिए अभिमन्त्रित माष (काले उड़द) का प्रयोग किया गया है। स्त्री के वशीकरण के लिए शमी वृक्ष की छाल, धनुष के बाण का टुकड़ा, तगर, अञ्जन और कुष्ठ (कूट) के मिश्रित चूर्ण को स्त्री के शरीर पर छिड़कने का विधान है।

लौकिक जगत् में बहुधा पुरुष एक स्त्री के होते हुए भी पुनर्विवाह कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में पुरुष की प्रथम अर्धाङ्गिनी अपनी सौतों के विरुद्ध टोना-टोटका तथा कृत्याभिचार के प्रयोग कराया करती है। इसी सन्दर्भ में अथर्ववेद का एक सूक्त सौतों को वश में करने में सफल माना जाता है।[1] सपत्नी को जीतने के लिए उक्त सूक्त के मन्त्रों से अभिमन्त्रित वाणपर्णी औषधि के पत्तों का चूर्ण दही के जल में मिलाकर सौत की शैय्या पर छिड़कना चाहिए। तृतीय काण्ड का एक सूक्त[2] दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने एवं पुत्र प्राप्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। अन्य सूक्त[3] दाम्पत्य जीवन में कटुता लाने के उद्देश्य से किसी स्त्री को बाँझ बनाने में समर्थ माना गया है।

विवाह के पश्चात् गर्भ धारण करने पर किसी रोग-दोष अथवा अन्य कारणों जैसे—भूत-प्रेत आदि की बाधा स्वरूप होने वाले गर्भपातों के लिए अथर्ववेद के 8-6 सूक्त में गर्भ रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है जिसमें 26 मंत्र हैं। यदि इस सूक्त के साथ-साथ अन्य दो सूक्तों[4] के मन्त्रों का भी प्रयोग किया जाए तो रोगदोष से तथा भूत-प्रेत की बाधा से होने वाला गर्भपात निरूद्ध हो जाता है। गर्भ के अन्दर प्रविष्ट होकर गर्भ को हानि पहुँचाने वाले रोगों और कीटाणुओं से गर्भ को रक्षित करने के लिए अथर्ववेद में औषधियों के भी प्रयोग बताये गये हैं। इस प्रकार की औषधियों में एक औषधि 'बज' है।[5] आयुर्वेद में इसे काकजंघा कहते हैं। गर्भ की सुरक्षा के लिए इसे गर्भिणी स्त्री की कमर में बाँधा जाता है।

रोग के कीटाणुओं के अतिरिक्त प्रेत-पिशाचों से गर्भ रक्षित रखने के लिए

---

1. अथर्व०, 3.8
2. तत्रैव 3.23
3. तत्रैव 7.35
4. तत्रैव 2.2,20,96
5. तत्रैव 8.6.3

दो मन्त्रों[1] से अभिमन्त्रित पीली सरसों गर्भवती स्त्री की कमर में बांध देने से भूत-पिशाच जन्म बाधाएँ गर्भ को प्रभावित नहीं करती हैं।

पीली सरसों गर्भस्थ शिशु की रक्षा करती है और यदि तीन मास का गर्भ हो जाए और पीली सरसों गर्भवती स्त्री की कमर में बांध दी जाए तो गर्भस्थ भ्रूण को कन्या नहीं बनने देती है, पुत्र ही उत्पन्न होता है।

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में अन्य विविध स्थलों पर उपर्युक्त प्रकार के कर्मों के अतिरिक्त शत्रु-सेना-सम्मोहन, संग्राम में विजयार्थ पाशुपतास्त्र एवं आग्नेयास्त्र सिद्धि के लिए मन्त्रों का वर्णन है। अभिचार कर्मों के लिए ऊपर बताई गई मणियों के अतिरिक्त भी विभिन्न मणियों का उल्लेख है।

अथर्ववेद में शान्तिकर्म के अन्तर्गत निशाकर्म तन्त्र का विधान है। शान्ति, पुष्टि, अभिचार तथा अद्भुत भेद से अथर्ववेद में चार प्रकार के कर्मों का विधान है। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार की व्याधियों की शान्ति के लिए भैषज्य कर्म का विधान है। ग्रहों के दोषों के निवारणार्थ यज्ञादि कर्म विधान और अद्भुत, आश्चर्यजनक घटनाओं के दर्शन के दोष-निवारण के लिए शान्ति कर्म किये जाते हैं।

इस प्रकार अथर्ववेद में बहुलता के साथ प्राप्त होने वाले अभिचार कर्मों के आधार पर अथर्ववेद से ही अभिचार कर्मों का उद्गम मानना सर्वथा ठीक नहीं, क्योंकि अथर्ववेद से पहले ऋग्वेद में भी यह है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों को कुछ सूक्ष्म परिवर्तन के साथ अथर्ववेद में प्रस्तुत किया गया है जिसमें ऋग्वेद का 'वाष्तोष्पति' सूक्त उल्लेखनीय है। अथर्ववेद में इसे 'स्वाप्नसूक्त' के नाम से अभिहित किया गया है। अतः अथर्ववेद में वर्णित अभिचार कर्मों का आधार भी ऋग्वेद ही रहा है। सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि ऋग्वेद में भी अनेक ऐसे सूक्तों और मन्त्रों का संकलन है जो अभिचार कर्मों की दृष्टि से महत्वपूर्ण और प्रयोजनीय हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में आभिचारिक सूक्तों एवं मन्त्रों का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य मण्डलों में भी यन्त्र-मन्त्र से सम्बन्धित कुछ मन्त्रों का उल्लेख हुआ है। वास्तव में ऋग्वेद का यह भाग अथर्ववेदीय विषयवस्तु का है। ऋग्वेद के

1. अथर्व० 8.6.23, 8.6.13

दो छोटे-छोटे सूक्त शकुनशास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं।[1] जिनमें तीन-तीन मन्त्र हैं। एक अन्य सूक्त[2] विष निवारक है। दसवें मण्डल में उपदिष्ट कुछ सूक्त राजयक्ष्मा तथा अन्य भयंकर रोगों के निवारणार्थ है।[3] उदारहण स्वरूप दो मन्त्र यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणायकम्।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये॥
(ऋग्वेद 10.60.8)

[अर्थात् जिस तरह रथ जोतने के लिए सारथि जुएँ को चमड़े के पट्टे से बांध देता है, उसी तरह मैंने तुम्हारे प्राणों को बाँध दिया है ताकि तुम जीवित रहो, तुम्हारी देह का अवसान न हो और तुम सदा स्वस्थ एवं सुदृढ़ रहो]

न्यग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः॥ [ऋग्वेद 10.61.11]

[अर्थात् जिस तरह से वायु द्युलोक से नीचे की ओर बहती है, सूर्य (गगन में संचार करता हुआ भी) नीचे की ओर अपनी मयूखमाला विकीर्ण करता है और धेनु थन से नीचे दूध टपकाती है, उसी तरह तुम्हारी यह व्याधि नीचे गिरती जाए।]

इसके अतिरिक्त जादू-टोने से सम्बन्धित अन्य सूक्तों एवं मन्त्रों में—निद्रा के लिए स्वाप्नसूक्त, अपत्य प्राप्ति हेतु, प्रजा प्राप्ति हेतु, दुःस्वप्न निवारणार्थ, गर्भाशीर्वाद, दरिद्रता नाशक, शत्रु नाशक, सपत्नी-पीडन, सपत्नी नाशन, आदि सूक्तों के मन्त्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[4]

बन्ध्या के पुत्र होने, मात्र हस्त-स्पर्श से रोग-नाश हेतु जीवन की रक्षा हेतु तथा अन्धापन एवं बधिरता का भी निवारण करने में सूक्षम अनेक आश्चर्य-जनक फलों को देने वाले सूक्तों और मन्त्रों का भी वर्णन विभिन्न मण्डलों में

1. ऋग्वेद, 2.42,43
2. तत्रैव 1.191
3. तत्रैव 10.60,61,63
4. तत्रैव 7.55,10.164,10.183,10.155,10.166,10.145,10.159

हुआ है। इनका विस्तृत वर्णन 'मन्त्रसंहिताओं में अभिचार' शीर्षक के अन्तर्गत किया जाएगा।

ऋग्वेद से सम्बन्धित आभिचारिक क्रियाओं में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का स्वतन्त्र संग्रह 'ऋग्विधान' नामक ग्रन्थ में हुआ।

अथर्ववेद और ऋग्वेद के अतिरिक्त सामवेद और यजुर्वेद संहिताओं में भी कुछ आभिचारिक मन्त्रों का उल्लेख हुआ है।

कन्या के लिए वर-प्राप्ति हेतु एक मन्त्र का उल्लेख सामवेद के प्रारम्भ में ही हुआ है।[1] इसके अतिरिक्त सामवेद में वर्णित अन्य आभिचारिक कृत्यों में शत्रु उच्चाटन, वशीकरण, अभिचार-निवारण, धन-धान्यादि की समृद्धि, भाविफलसूचक स्वप्नों के दर्शनार्थ तथा संग्राम में विजय आदि विविध कामनाओं की पूर्त्यर्थ भी विविध मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। सामवेद में उल्लिखित इन आभिचारिक मन्त्रों की प्रयोगविधि इस वेद से सम्बन्धित सामविधान ब्राह्मण में बताई गई है। यज्ञादि सात्विक कार्यों के सम्पादन में विघ्न डालने वाली हिंसक प्रवृत्तियों के विनाश के लिए सामवेद के दो मन्त्र[2] प्रयोजनीय हैं। स्मरणशक्ति की वृद्धि के लिए तथा यश-प्राप्ति हेतु सामवेद में अन्य तीन मन्त्रों[3] का वर्णन प्राप्त होता है।

यजुर्वेद में व्यक्तिगत सुख-समृद्धि एवं राज्य की समृद्धि के लिए दो मन्त्रों[4] का वर्णन है, जिसमें रुद्र देवता से समृद्धि-कामना हेतु प्रार्थना की गई है। कृत्या-निवारण कर्म में भूमि में छिपाई गई कृत्या को उखाड़ कर फेंकने के लिए यजुर्वेद के पंचम अध्याय में चार मन्त्र[5] आये हैं। अरिष्ट-निवारण के लिए षष्ठ अध्याय में दो भिन्न-भिन्न मन्त्र वर्णित हैं।[6] इसके अतिरिक्त किसी प्रकार का संकट उपस्थित होने पर, युद्ध में शत्रुओं से घिर जाने पर, रोगों से पीड़ित

---

1. सामवेद, पूर्वार्चिक (मन्त्र संख्या 7)
2. सामवेद, 134, 627
3. तत्रैव, 248,576,198
4. तत्रैव 14.25, 16.20
5. यजुर्वेद, 5.22,23,24,25
6. तत्रैव 6.16,11.80

होने पर, दुःस्वप्न देखने पर यजुर्वेद में वर्णित विभिन्न मन्त्रों का प्रयोग किये जाने पर वे अभीष्ट सिद्धि में सहायक होते हैं।

यजुर्वेद में यागानुष्ठानों के अवसर पर यजुष् मन्त्रों के पाठ के अतिरिक्त यज्ञों के सम्पादन में प्रयुक्त पात्रों और अन्य सामग्रियों का भी आभिचारिक कृत्यों में महत्वपूर्ण स्थान है, यथा—स्रुवा पात्र को, यज्ञ सम्पादन में विघ्नकारी शत्रुओं को नष्ट करने के उद्देश्य से विशेष आभिचारिक मन्त्र[1] का उच्चारण करते हुए अग्नि में तपाया जाता है। अन्य आभिचारिक मन्त्र[2] से 'अररु' नामक राक्षस को यज्ञभूमि से बाहर निकाला जाता है।

आभिचारिक दृष्टि से यज्ञ में प्रयुक्त कृष्ण मृग चर्म को, भूतों के पराभव के लिए, झाड़ने हेतु भिन्न मन्त्र[3] वर्णित है। यजुर्वेदीय मैत्रायणी संहिता में किसी व्यक्ति की मृत्यु के लिए चुने हुए इक्कीस उशीर कीड़ी को कुचलकर एवं जलाकर नष्ट किये जाने का विधान है।[4]

वैदिक वाङ्मय के वर्गीकरण का द्वितीय स्तम्भ ब्राह्मण ग्रन्थों को माना गया है। यज्ञ तथा यज्ञीय विधि वैदिक धर्म का क्रियात्मक अथवा कर्मकाण्डीय स्वरूप है और ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रधान विषय यज्ञ यागों का प्रतिपादन तथा उनकी विधियों की विस्तृत व्याख्या करना है। विभिन्न संहिताओं से सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रंथों में भिन्न-भिन्न स्थलों पर आभिचारिक प्रयोग भी आये हैं क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों का विषय ही कर्मकाण्ड की व्याख्या करना है।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञीय विधियों के सम्पादन में विभिन्न स्थलों पर ऐसे कृत्य भी बतलाये गये हैं जिनकी सहायता एवं प्रभाव से मनुष्य की अभीप्सित कामनाओं की पूर्ति होती है। इस प्रकार के कृत्यों की गणना आभिचारिक कृत्यों में की जा सकती है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित तानूनत्र कृत्य और राज्याभिषेक तथा सौत्रामणी यज्ञ के अवसर पर लेप का विधान भी आभिचारिक ही है। इसी ब्राह्मण में 'निष्केवल्य शस्त्र' के वर्णन में शत्रु-सेना को

1. यजुर्वेद, 1.29
2. तत्रैव 1.26
3. तत्रैव 1.19
4. मैत्रा० सं०, 2.2.1

पराजित करने की क्रिया का भी वर्णन किया गया है। भविष्य में होने वाले लाभ एवं हानि का निर्णय यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले घोड़े के गमन की दिशा एवं वाणी से किया गया है।

अभिचार की दृष्टि से यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं शतपथ ब्राह्मण महत्वपूर्ण हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णित होमों के लिए बताये गये हवि-संस्कारों में अंगारों पर स्थाली का रखा जाना एक आभिचारिक कृत्य है। इसी ब्राह्मण में स्वराज्य-कामना के लिए वाजपेय याग का वर्णन है। अश्वमेध याग समृद्धि-प्राप्ति के इच्छुक के लिए करणीय कहा गया है। इस याग में बहुत से ग्राम्य और आरण्यक पशु याग के अंगभूत होते हैं। इसमें यजमान द्वारा अपने शत्रु का नाश करने के लिए वस्तुतः जलाशय के समीप एक श्वान (शत्रु का प्रतीक) को मूसल से मारकर अश्व के नीचे फेंका जाता है। एक ही दिन में अनुष्ठित विभिन्न 'एकाह' यागों का वर्णन भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्राप्त होता है जिनका सम्पादन विभिन्न कामनाओं की पूर्त्यर्थ किया जाता है। इनमें आभिचारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सव ये हैं—बृहस्पति सव, वैश्व सव, गो सव तथा ओदन सव।

शतपथ ब्राह्मण में 'अभिचार' को 'वलगम' के नाम से अभिहित किया गया है जहाँ कृत्य शब्द का प्रयोग अभिचारीय रूप में किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर वर्णित है कि देवों ने असुरों द्वारा किये गये अभिचार (कृत्य) को यज्ञ रूपी प्रति अभिचार से दूर किया। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार शत्रु के लिए किए जाने वाले यज्ञों में अग्नियों का आधान चित्रा नक्षत्र में करना चाहिए। उत्तरायण सूर्य में अग्न्याधान करने से यजमान दीर्घायु होता है। यज्ञ सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन करने पर यजमान को विविध प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते हैं। सोमयाग में प्रयुक्त प्रोक्षणी पात्र के जल का प्रयोग शत्रु को शाप देने अथवा उसे हानि पहुँचाने के लिए किया जा सकता है। यज्ञ में बनाए गए छिद्रों के माध्यम से ही शत्रु द्वारा भूमि में छिपाई गई कृत्या का उच्छेदन किया जाता है। त्र्यम्बक यज्ञ का सम्पादन अविवाहित स्त्रियों द्वारा पति की प्राप्ति के लिए किया जाता है। असुरों के टोनों से अन्न को विषमय होने से बचाने के लिए आग्रयणेष्टि का वर्णन किया गया है। राजसूय यज्ञ को राज्य प्राप्ति का साधन बताया गया है। यज्ञ के अवसर पर 'स्विष्टकृत' के लिए आहुति में से कुछ भी भाग न बचाए जाने पर अपशकुन सम्बन्धी विचार भी द्रष्टव्य हैं। इसके अतिरिक्त त्रिरात्र यज्ञ के कुछ कृत्यों में तथा पशुओं एवं

पक्षियों की उड़ान एवं हिलने-डुलने भी विविध आभिचारिक एवं शकुन-अपशकुन सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये गए हैं।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में ताण्डय महाब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, साम-विधान ब्राह्मण और जैमिनीय ब्राह्मण आभिचारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

ताण्ड्य ब्राह्मण के प्रारम्भिक अध्याय में ही अभिचार शब्द आया है। अष्टम अध्याय के प्रथम एवं द्वितीय खण्डों में अभिचार प्रयोगार्थ ब्रह्मसाम का विधान विहित है जो वषट्कारणिधन ही होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विविध प्रायश्चित कर्मों का भी उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण के प्रवक्ता द्वारा उल्लिखित इन प्रायश्चितों का प्रयोजन मुख्यतः यज्ञ सम्पादन में होने वाली विविध त्रुटियों से सम्भावित अनिष्ट के प्रभाव से बचना ही रहा होगा। अतः इन प्रायश्चितों की गणना स्वस्तिक अभिचार की कोटि में की जा सकती है।

षड्विंश ब्राह्मण ताण्ड्य ब्राह्मण का ही शेष भाग माना जाता है जिसमें अभिचार यागों का विस्तृत विवेचन किया गया है। ये याग हैं–श्येन, इषु संदंश और वज्र याग। षड्विंश ब्राह्मण में इन अभिचार यागों के अनुष्ठान में ऋत्विकों द्वारा सर्वत्र रक्त वस्त्र एवं रक्तक्तोष्णीष ही धारण करने का विधान है। चतुर्थ अध्याय में वर्णित इन अभिचार यागों में श्येन याग के नामकरण का आधार पक्षियों में तीव्रगामी श्येन पक्षी को बताया गया है। इषु याग का नामकरण 'इषुनाम्नी' विष्टुतियों के आधार पर हुआ है। संदंश याग का वर्णन सामान्य रूप से पकड़ में न आने वाले शत्रुओं को पकड़ने के लिए किया गया है। वज्रयाग शत्रु हिंसा की दृष्टि से वज्ररूप ही माना गया है जिसके सभी स्तोत्र द्वादश स्तोम युक्त होते हैं।

षष्ठ अध्याय में अद्भुत कर्मों, अनिष्टी तथा अपशकुनों की शान्ति का विधान है। इस अध्याय में कुल बारह खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में पलाश की समिधाओं से 1008 आहुतियों का विधान है। द्वितीय खण्ड में शत्रु-विजय के निमित्त होम विशेष का प्रतिपादन है। तृतीय खण्ड से लेकर अन्तिम खण्ड तक विभिन्न देवता विषयक अद्भुत कर्मों का अनुष्ठान विहित है।

ताण्ड्य ब्राह्मण की तरह षड्विंश ब्राह्मण में भी विभिन्न प्रायश्चित कर्मों का वर्णन हुआ है। यथा—सोमयाग में कोई त्रुटि हो जाने पर प्रायश्चित, हविष के गिर जाने पर अथवा पात्रों के टूट जाने पर प्रायश्चित विधान, ब्रह्मा

का मौन भंग होने पर प्रायश्चित, मृण्मय यज्ञ-पात्र के भग्न होने पर प्रायश्चित, ऋत्विकों द्वारा कर्म परित्याग करने पर प्रायश्चित आदि।

उपर्युक्त सभी विषयों का विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

अभिचार की दृष्टि से सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में सामविधान ब्राह्मण का तृतीय स्थान है। ताण्ड्य एवं षड्विंश ब्राह्मण शाखान्तरीय ब्राह्मणों के समान अपने को श्रौतयागों के विवेचन तक ही सीमित रखते हैं, किन्तु सामविधान ब्राह्मण नितान्त नवीन, असम्भव, कल्पित अभिचार, जादू-टोना और तान्त्रिक प्रायश्चित विषयक सामग्री का प्रस्तावक है। इसमें ब्राह्मण के लक्षण नहीं मिलते हैं। प्रतिपादित विषय अधिकांशतया धर्मशास्त्र के क्षेत्र में आ जाते हैं। तात्पर्य यह है कि सामविधान ब्राह्मण में श्रौतयागों के साथ ही प्रायश्चित प्रयोग, कृच्छ्रादि व्रत, काम्य याग तथा विभिन्न लौकिक प्रयोजनानुवर्तित अभिचार कर्मादि निरूपित हैं। इस प्रकार विषय-वस्तु की दृष्टि से इस ब्राह्मण का फलक बहुत व्यापक है।

सम्पूर्ण सामविधान ब्राह्मण तीन प्रपाठकों और 25 अनुवाकों में विभक्त हैं। प्रथम प्रपाठक में श्रौत यागों के साथ विभिन्न प्रायश्चित्त कर्मों का वर्णन है। द्वितीय प्रपाठक के प्रथम से अष्टम पर्यन्त अनुवाकों में काम्य, रोगादिजन्य भय शमनार्थ, क्षेमार्थ और वशीकरण हेतुक विभिन्न प्रयोग उल्लिखित हैं। तृतीय प्रपाठक में प्रथम से नवम पर्यन्त अनुवाकों में क्रमशः धान्यादिसमृद्धि हेतु, वास्त-शान्ति. अदृष्टदर्शनार्थक प्रयोग, राज्याभिषेक, अद्भुत एवं अभिचार शान्ति, संग्राम-जयार्थी राजाओं के निमित्त विभिन्न प्रयोग, पिशाच वशीकरणार्थक प्रयोग, भूतवशीकरण लभ्य धनार्थ प्रयोग, पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्ति हेतु रात्रि उपासना, स्वेच्छा से लोकान्तरगामी तथा मानुषादि भोगों की प्राप्ति एवं त्रैलोक्याधिपतित्वप्राप्ति के प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

जैमिनीय ब्राह्मण में भी कुछ स्थलों पर आभिचारिक कृत्यों का उल्लेख हुआ है। श्मशान में मृत व्यक्ति को भी जीवित कर देने जैसे आश्चर्यजनक कार्य जैमिनीय ब्राह्मण के ही विषय हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के प्रायश्चितों का भी वर्णन हुआ है।

वैदिक साहित्य के विभाजन का तृतीय वर्ग आरण्यक तथा उपनिषद् हैं।

इन ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि धार्मिक विधानों में चमत्कारी तत्वों का समावेश आरण्यकों तथा उपनिषदों में भी था। उसके निमित्त आहुतियाँ दी जाती थीं। इन कृत्यों के मूल में खोखला विश्वास ही नहीं था, अपितु तत्कालीन ऋषियों ने उनमें शुद्धता का समावेश, अभीष्ट की प्राप्ति तथा असंगत के परिहार जैसी महत्वपूर्ण भावनाओं को भी समाहित किया था। वशीकरण तथा जार पुरुष को दण्डित किये जाने वाले कृत्यों में इन्हीं भावनाओं का दर्शन होता है।

बृहदारण्यक उपनिषद्[1] में जारपुरुष के लिए दण्ड का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—जिस किसी की पत्नी का किसी जार पुरुष से सम्बन्ध होता था, वह पुरुष या व्यक्ति यदि जारपुरुष को दण्डित करना चाहता था तो मिट्टी के कच्चे वर्तन में अग्नि स्थापन करके प्रतिलोम क्रम से बर्हिष् बिछाकर उनकी बाणाकार सींकों को घृत से भिगोकर उनके अग्र भाग को विपरीत दिशा में रखकर चार आहुतियां प्रदान करता था। आहुति प्रदान करते समय कहा जाता था—"मम समिद्धे हौणीः प्राणापानौ तु आददे" अन्त में "असौ मम शत्रुः" कहते हुए उसके नाम का उच्चारण किया जाता था। ऐसा विश्वास था कि ऐसे श्रोत्रिय अनुष्ठाताकृत विधान से जार पुरुष इस लोक से गमन करता है।

कौषीतकि उपनिषद्[2] में वशीकरण हेतु धार्मिक विधि का उल्लेख है। सर्वप्रथम पंच संस्कारपूर्वक अग्निस्थापना होती थी, तदनन्तर, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन तथा प्रजा को घृताहुतियाँ दी जाती थीं। मन्त्रोच्चारण के साथ उस व्यक्ति का नाम भी लिया जाता था, जिसे वशीभूत करना होता था। तदनन्तर हवन तथा धूम की गन्ध सूंघकर शेष घृत से शरीर का लेपन करके मौन होकर उस व्यक्ति के पास गमन करने अथवा सम्पर्क लाभ की चेष्टा करने अथवा ऐसी जगह खड़े होकर वार्ता करने का प्रावधान था जिसमें उसके शब्द लक्षित व्यक्ति के श्रोत्रों तक वायु की सहायता से पहुँच सकें। इस विधि से वह व्यक्ति प्रिय तो हो ही जाता है, साथ ही वहाँ के अन्य व्यक्ति उसके हट जाने अथवा चले जाने पर उसका स्मरण करते थे। छान्दोग्य उपनिषद्[3] में

---

1. बृह० उप०, 6.4.12
2. कौषी० उप०, 2
3. छान्दो० उप०, 7.1, 2.4, 2.17.1

वर्णित भूत-विद्या भी वस्तुतः एक अभिचार कर्म ही है जिसमें मनुष्यों को त्रस्त करने वाले पशुओं के विज्ञान तथा उनको दूर भगाने के उपायों से तात्पर्य प्रतीत होता है। अभिचार कर्मों में परीक्षण के आधार पर शुभाशुभ कथन का महत्वपूर्ण स्थान है। छान्दोग्य उपनिषद्[1] में ही अभियुक्त (चोर) की परीक्षा के लिए आग में दमकती एक-कुल्हाड़ी लाई जाती है जो चेतन शक्ति के रूप में अग्नि को जलाकर सदोषत्व और न जलाकर निर्दोषत्व का निर्णय करती है।

संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के ही समान बृहदारण्यक उपनिषद्[2] में भी पुत्रोत्पत्ति कामना पूर्ति के लिए एक अभिचार विधि का उल्लेख किया गया है।

स्वप्नों का पढ़ना वैदिक अभिचार का एक रोचक भाग है। ऐतरेय आरण्यक[3] में दस स्वप्नों का उल्लेख आया है जो मृत्यु की सूचना देने वाले माने गए हैं, यथा—जब कोई व्यक्ति स्वप्न में काले दाँतों वाले आदमी को देखता है जो उसे मारता है अथवा एक जंगली सुअर उसे मारता है। एक जंगली बिल्ली उसके ऊपर उछलती है। कोई व्यक्ति सोने को खाता है और थूकता है। कोई शहद को और कमल की जड़ों को खाता है। जब कोई गधों या जंगली सुअरों के साथ किसी ग्राम को जाता है अथवा दक्षिण दिशा की ओर गमन करता है या काली गौ अथवा बछड़े को हाँककर ले जाता है। इन दुःस्वप्नों के निवारणार्थ व्यक्ति को अथर्ववेद (7.100) का पाठ करते हुए करवट बदल लेने का विधान बहुत सी परिस्थितियों में दृश्य शकुन-अपशकुन भी भविष्य-वाणी करते हैं। जिसमें शाकुनिक पक्षियों का विशेष महत्व वैदिक अभिचार में वर्णित है। काले रंग वाले तथा स्वरूप और आवाज से भयानक कौवा, उल्लू, गिद्ध, आदि पक्षियों को सामान्यतया प्रलय का मुख कहा गया है। ऐतरेय आरण्यक में भी इन पक्षियों की पितरों से एकरूपता प्रदर्शित है। उस समय लोक जीवन में शकुन-अपशकुन अत्यधिक प्रचलित थे। ऐतरेय आरण्यक में कहा गया है कि प्रज्ञात्मा तथा आदित्य रूप ईश्वर में भेद दिखाई

---

1. छान्दो० उप०, 6.16
2. बृहदा० उप०, 6.4
3. अथ स्वप्नाः। पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति वराह एनं हन्ति…। ऐत० आर०, 3.2.4

देने, सूर्य के चन्द्रमा के समान शीतल होने, मंजिष्ठा के समान द्युलोक के लाल प्रतीत होने इत्यादि[1] पर उस व्यक्ति की मृत्यु निकट ही समझनी चाहिए।

वैदिक अभिचार में रोग भी विशेष रूप से जादू-टोने के विषय रहे हैं। रोगी के ऊपर जल से प्रोक्षण करना तथा रोग पीड़ित अङ्ग को कमल के नवीन पत्रों से रगड़ना, रोगी को खेत अथवा दीमकों की बमी से लाई गई मिट्टी को खिलाना या नमक का जल पिलाना आदि आभिचारिक क्रिया सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में सर्वथा मान्य है। तैत्तिरीय आरण्यक[2] में भी रोगपीड़ित गायों को नमकीन जल पिलाने का विधान किया गया है जिससे रोगों से छुटकारा मिल सके।

वैदिक साहित्य में कल्पसूत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। कल्पसूत्रों का विभाजन चार भागों में किया गया है जिसमें श्रौतसूत्रों की गणना सर्वप्रथम की गई है। वैदिक अभिचार कर्मों का चरमोत्कर्ष कल्प-साहित्य में ही परिलक्षित होता है क्योंकि श्रौत सूत्रों के अन्तर्गत वर्णित विशाल श्रौत यागों में विभिन्न आभिचारिक यागों का भी वर्णन किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तार से बताए गए अभिचार यागों का श्रौत सूत्रों में संक्षिप्त किन्तु विन्दुवत् वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त विविध कामनाओं की पूर्त्यर्थ अनेक इष्टियों एवं एकाह यागों के सम्पादन की विधि भी बतलाई गई है। विभिन्न प्रकार की सिद्धियों के लिए कर्मकाण्ड में बाह्य उपायों का विधान किया गया है, यथा, शत्रु नाश के लिए किए जाने वाले यागों में ऋत्विक् द्वारा रक्त वर्ण वस्त्र तथा उष्णीष धारण करने की अनिवार्यता तथा अन्य यागों में राक्षसों को दूर करने के लिए ढोल पीटना आदि।

आश्वलायन श्रौतसूत्र में सत्रों के प्रसंग में वर्णित आभिचारिक कृत्यों में पुरोहित को लोहित उष्णीष पहनने का निर्देश है। जबकि अन्य श्रौतसूत्रों कात्यायन, आपस्तम्ब, आर्षेय कल्प आदि में पूर्ण आभिचारिक यागो में ही ऋत्विक् को लोहित उष्णीष तथा वस्त्र पहनने का निर्देश किया गया है। लाट्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार 'श्येन' नामक आभिचारिक याग में व्रातीन योद्धा ब्राह्मणों के अनूचान पुत्रों को ही ऋत्विक् बनाना चाहिए।

---

1. स यश्चायमशरीरः······ जीविष्यतीति विद्यात्। ऐत० आर० 3.2.4
2. तत्रैव 4.16

आर्षेय कल्प में षड्विंश ब्राह्मण में उल्लिखित चारों अभिचार यागों—श्येन, इषु, संदंश तथा वज्र का विवरण दिया गया है। इन यागों की गणना एकाह-यागों के अन्तर्गत की गई है। कात्यायन श्रौतसूत्र में भी आभिचारिक यागों और अनुष्ठानों का वर्णन हुआ है।

बौधायन श्रौतसूत्र में 'इष्टिकल्प' के अन्तर्गत अभिचार कर्मों का विवरण प्राप्त होता है। एकाह यागों में भी यथास्थान अभिचारों का वर्णन हुआ है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के 12वें अध्याय में तो आभिचारिक मन्त्रों के स्वरूप वर्णन के साथ उनकी विशेषता भी बताई गई है।

क्षुद्रकल्प में अभिचार कर्मों की गणना ब्रह्मसामिकों के अन्तर्गत की गई है। श्रौतसूत्रों में वर्णित अभिचार यागों के अतिरिक्त अन्य प्रमुख याग हैं—निरुढपशुबन्ध, उक्थ्य, षोडषी यज्ञ, अतिरात्र, अप्तोर्याम, वाजपेय याग, सौत्रामणी यज्ञ तथा अश्वमेध याग—जिनको काम्य-याग माना जा सकता है, क्योंकि इन यागों का अनुष्ठान किसी न किसी कामना के पूर्त्यर्थ ही किया जाता है। श्येन, संदंश, इषु और वज्र नामक आभिचारिक एकाह यागों के अतिरिक्त अन्य अभिचारपरक, एकाह यागों का भी वर्णन श्रौतसूत्रों में हुआ है, जिनमें प्रमुख हैं—बृहस्पति सव, गोसव और सर्वस्वार। विभिन्न श्रौतसूत्रों में इष्टियों का भी उल्लेख किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—आयुकामेष्टि, पुत्रकामेष्टि, स्वस्त्ययनी, लोकेस्टि संज्ञानी तथा करीरीष्टि।

कल्प साहित्य में द्वितीय स्थान गृह्यसूत्रों का है। इन में संस्कारों के साथ-साथ अनेक आभिचारिक क्रियाओं को भी स्थान मिल गया है। गृह्यसूत्रों का सर्वाधिक महत्व सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से है। प्राचीन हिन्दू जीवन का जो रूपरेखा गृह्यसुत्रों और धर्मसूत्रों में मिलती है वह अन्यत्र नहीं देखी जा सकती। गृह्यसूत्रों में वर्णित आभिचारिक क्रियाओं का सम्बन्ध व्यक्ति के घरेलू जीवन से है तथा इनका सम्पादन गृह्याग्नि में होता है।

गृह्यसूत्रों में वर्णित आभिचारिक कर्मों में सबसे महत्वपूर्ण कर्म पुंसवन संस्कार है जिसमें गर्भधारण के पश्चात् पुत्रोत्पत्ति के लिए पत्नी की नासिका के छिद्र में न्यग्रोध वृक्ष की टहनी का रस डालने का विधान किया गया है। शिशु के जन्म के बाद रोगों तथा अमानवीय शक्तियों से प्रसूति का तथा शिशु की रक्षा के सूतिकाग्नि में सरसों तथा धान के छिलकों से होम करने का निर्देश है। शिशु की बुद्धि विकास के लिए जौ और धानों के चूर्ण को शिशु की जिह्वा पर डालने का तत्पश्चात् घृतप्राशन का विधान है। कुछ गृह्यसूत्रों में

अन्नप्राशन के समय भारद्वाज, कपिञ्जल, मत्स्य, कृकषा और आटी का मांस भी खिलाने का विधान है। लोगों का विश्वास था कि ऐसा करके शिशु को शीघ्रगामी, दीर्घजीवी, और ब्रह्मवर्चस के गुणों से परिपूर्ण किया जा सकता है।

वैदिक साहित्य में 'रोग और उनका निवारण' विशेष रूप से जादू-टोने के विषय रहे हैं। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित स्त्री के अवयवों को पति या किसी संयमी व्यक्ति द्वारा कमल की नई पत्तियों से क्रमशः रगड़ने और पत्तियों को फेंकने का निर्देश है जिसमें एक आभिचारिक मन्त्र भी पढ़ा जाता है और हल को पकड़ कर रखा जाता है।

पिशाच ग्रह से पीड़ित बालक के लिए किए जाने वाले अभिचार कर्म में बालक को जाल से ढककर घण्टा-घड़ियाल बजाते हुए द्यूत-क्रीड़ा गृह में ले जाकर उस पर नमक मिश्रित दही को छिड़का जाता है।

आपस्तम्ब तथा पारस्कर गृह्यसूत्रों में क्रमशः पति-वशीकरण तथा दास-वशीकरण (उतूलपरिमेह) की विधि भी बताई गई है। पाठा नाम की औषधि के मूल को दो भागों में काटकर पत्नी रात्रि में उन टुकड़ों को हाथ में लिए हुए एक मन्त्र का पाठ करते हुए हाथ में बाँध कर रखती है और पति के शयन के समय मन्त्र पढ़कर इस प्रकार आलिङ्गन करती है कि वे टुकड़े एक दूसरे के ऊपर पड़ें। इस क्रिया से पति का मन अपनी पत्नी की ओर आकृष्ट होता था। दास वशीकरण के लिए जीवित पशु के सींग को स्वयं के मूत्र में भिगोकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक उसे भृत्य के चारों ओर घुमाने का विधान है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में ही एक स्थल पर पत्नी को पर पुरुष के सम्पर्क में न जाने के लिए तथा पत्नी की एक निष्ठता के लिए भी एक अभिचार कर्म का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त गृह्यसूत्रों में विवाह के पूर्व कन्या से विभिन्न स्थानों की मृत्तिका को उठवाकर भविष्य में वर के लिए उसके शुभ और अशुभ होने की पहचान की प्रक्रिया है। पाणि-ग्रहण के समय पत्नी द्वारा पति का अँगूठा अथवा अंगुलियाँ पकड़ने के आधार पर स्त्री या पुरुष सन्तान होने का अनुमान लगाया जाता है। शिशु का वास्तविक नाम गुप्त रखकर समस्त अभिचारों के प्रभाव से उसकी रक्षा की जाती है। पारस्कर गृह्यसूत्र में गर्भ न धारण करने वाली स्त्री के लिए श्वेत पुष्प वाली भटकटैय्या के रस को उसके दक्षिण नासिका-रन्ध्र में डालने के लिए कहा गया है। इसी प्रकार अन्य गृह्यसूत्रों में स्त्री के कष्टरहित प्रसव के लिए विविध प्रकार की विधियों एवं मन्त्रों का उल्लेख है। वैखानस गृह्यसूत्र में विशल्या औषधि के रस को स्त्री की योनि पर निचोड़ने

का निर्देश है। कौशिक सूत्र में किसी कारणवश असमय होने वाले गर्भपात के लिए उपचार विधि का भी वर्णन है।

उपर्युक्त आभिचारिक क्रियाओं के अतिरिक्त गृह्यसूत्रों में कुछ अन्य अभिचार कर्मों का भी उल्लेख है, यथा—पितरों के शाप से बचने के लिए श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना तथा उन्हें विविध वस्तुओं का दान देना, पशु के कल्याण एवं समृद्धि के लिए पुष्टिकामार्थ कर्म, विष-निवारण, विभिन्न अवसरों पर शकुन-अपशकुन के विचार से विभिन्न मन्त्रों का जप एवं आहुति प्रदान करना, आदि।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के अनुसार मुकदमें में जाते समय छाता तथा एक छड़ी को साथ ले जाना अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करता है।

गृह्याग्नि में सम्पाद्य कुछ आभिचारिक गृह्यकृत्यों का उल्लेख भी गृह्यसूत्रों में आया है जिनमें प्रमुख गृह्यकृत्य हैं—शलगव कर्म, आश्वयुजी कर्म, श्रवणा कर्म आदि। इनका विस्तृत विवरण षष्ट अध्याय में प्रस्तुत किया जायेगा।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कुछ अद्भुत घटनाओं और उनके लिए शान्ति कर्मों का विधान भी गृह्यसूत्रों में है और आभिचारिक दृष्टि से गृह्यसूत्रों में इनका उल्लेख सर्वथा उचित ही है।

गृह्यसूत्रों में कौशिक सूत्र वस्तुतः अपनी शाखा की संहिता पर ही आधारित है अतः इसे संहिता विधि ही माना गया है। इसीलिए गृह्यसूत्रों में केवल कौशिक सूत्र में ही आभिचारिक क्रियाओं के सम्पादन हेतु नियमों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

"दोनों ओर मूल और अग्रभाग कटे हुए शरों से आभिचारिक वेदि का अस्तरण करना चाहिए। आङ्गिरस कल्प के अनुसार प्रयोजनीय सामग्रियों को दक्षिण भाग में लाकर रखें। दक्षिण दिशा में मण्डप बनवा कर उसमें यथोक्त विधि से पताका, तोरणों से सुसज्जित दरवाजे बनवायें। इंगिक को आज्य करें। वायें से आरम्भ कर दक्षिण में अभिचार कर्मों की समाप्ति करें। वेदि दक्षिण की ओर ढलुआ हो। दक्षिण मुख करके कर्ता कर्म करने में प्रवृत्त हो। जितने कर्म हों, सब अग्नि के साथ हों। उसके बाद अभिचार प्रयोग के लिए काल का नियम कथित है वृतिका-नक्षत्र में अरोध कृष्णपक्ष अरोधकः अमावस्या के साथ योग होना चाहिए। इन समयों में अभिचार कार्य होना चाहिए।"

कौशिक सूत्र मे अभिचार कर्मों का व्यापक वर्णन है जिनमें कुछ ऐसे भी कर्म हैं, जिनका उल्लेख अन्य किसी गृह्यसूत्र में नही है।

इस प्रकार आभिचारिक क्रियाओं का वैदिक यज्ञ-क्रियाओं के साथ विचित्र संयोग गृह्यसूत्रों में है। यद्यपि ये क्रियायें आपाततः विश्वासों का ही परिणाम प्रतीत होती हैं, फिर भी इनकी पृष्ठभूमि में जो भावनाएँ विद्यमान हैं उनका गृह्यसूत्रों की मुख्य भावना और लक्ष्य से कोई विरोध दृष्टिगोचर नहीं होता है। गृह्यसूत्रों में वर्णित समस्त आभिचारिक क्रियाओं, गृह्यकर्मों और अनुष्ठानों का विस्तृत विवेचन 'कल्पसूत्रों में अभिचार' नामक षष्ठ अध्याय में किया जायेगा।

अभिचार कर्मों का प्रभाव कल्पसाहित्य के अन्तर्गत समाहित धर्मसूत्रों में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है यद्यपि धर्मसूत्रों में घोर आभिचारिक क्रियाओं का वर्णन कहीं भी नहीं हुआ है फिर भी लोगों के सामाजिक जीवन के संचालनार्थ उल्लिखित नियमों के साथ ही आभिचारिक कर्मों के लिए भी कुछ विशेष नियमों का उल्लेख है. जैसे गौतम धर्मसूत्र में पुरोहित को शान्तिकर्म और शत्रुओं के प्रतिकूल किये जाने वाले अभिचार कर्मों को गृह्याग्नि में ही सम्पादित करने का निर्देश दिया गया है। धर्मसूत्रों में माया, यातु, प्रेमाभिचार, मारण, उच्चाटन एवं मोहन से सम्बद्ध टोने-टोटकों को सर्वथा निकृष्ट कर्म माना गया है और इन्हें पापों की संज्ञा दी गई है तथा इनके शमन के लिए प्रायश्चित स्वरूप घोर तपस्या का विधान किया गया है। अभिचारसदृश हेय कर्मों के लिए धर्म-ग्रन्थों में एक मत से यह निर्णय लिया गया है कि जनसामान्य के लिए अथर्वन् कितना ही उपयोगी एवं महनीय क्यों न हो किन्तु अपने अनैतिक आचरण और अपवित्र अनुष्ठानों के कारण वह सर्वत्र दण्डनीय है तथा उनके कर्मों और आचरण को नियमित करना आवश्यक है।

आभिचारिक कर्मों में यज्ञ-वेदि का महत्वपूर्ण स्थान है। यज्ञों में अग्नि का आधार होने के कारण वेदि को अग्नि की भी संज्ञा दी गई है। शुल्बसूत्रों में वेदि-चयन और वेदि-निर्माण के सम्बन्ध में विस्तृत नियमों का उल्लेख किया गया है, जिसमें आभिचारिक कर्मों के सम्पादन हेतु विशेष प्रकार की वेदियों को निर्मित करने की विधियों एवं नियमों को बताया गया है, यथा—शत्रु नाश के लिए प्रउगचित् तथा रथचक्रचित् नामक वेदियों के निर्माण का निर्देश है जो क्रमशः त्रिकोणात्मक तथा मण्डलाकार ही बनाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयोजनों की सिद्धि के लिए भी विविध प्रकार की वेदियों एवं उनके निर्माण के लिए नियमों तथा प्रयोजनीय सामग्री का उल्लेख शुल्बसूत्रों में हुआ है।

वैदिक साहित्य में परिशिष्ट-ग्रन्थों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये परि-

शिष्ट ग्रन्थ वास्तव में वैदिक साहित्य के अन्तिम अध्याय कहे जा सकते हैं, जैसे, गृह्यसूत्रों के अन्तिम भाग गृह्य परिशिष्ट तथा श्रौतसूत्रों के अन्तिम अध्याय श्रौत परिशिष्टों के नाम से जाने जाते हैं। अभिचार की दृष्टि से उल्लेखनीय परिशिष्ट ग्रन्थों में अथर्व परिशिष्ट प्रमुख हैं जिनकी संख्या 79 है। श्रौतसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों में वर्णित विषयों का सम्पादन करने के कारण इनमें भी अभिचार कर्मों का वर्णन व्यापक रूप से हुआ है। परिशिष्ट 34 से 36 में तो केवल जादू-टोने से ही सम्बन्धित क्रिया-कलापों का वर्णन किया गया है। 'अनुलोम कल्प' शीर्षक से उल्लिखित परिशिष्ट (35) में अनेक प्रकार के अभिचार कर्म, यथा—शत्रु के नाश अथवा पराभव, उसे अपस्मार, नेत्र-स्फोटन प्रभृति अनेक प्रकार के कष्टदायक रोगों से आक्रान्त करने के कृत्य, काली सरसों की पिष्टी का पुतला बनाकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक खण्ड-खण्ड करके आक की अग्नि में आहुति देकर शत्रु का समूलोन्मूलन करने की विधि, सन्तानोत्पत्ति अथवा गर्भ-सुख एवं वशीकरण की विधियाँ इसमें प्रतिपादित हैं।

उच्छुष्म कल्प (36) में आसुरी कल्प असफल हो जाने पर प्रयोजनीय कृत्यों का वर्णन किया गया है जिसमें रुद्र की सहायता से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। इसमें चाण्डाल नीचआदि के विरुद्ध अनेक प्रकार के जादू-टोने करने का विधान है। धन-धान्य को चौगुना करने, ग्राम प्रधान को धनहीन बनाने, पुत्र की बुद्धि प्रखर करने, अथवा किसी को सर्वथा उन्मत्त करने, आभूषण प्राप्त करने, वृष्टि कराने, कानूनी झगड़ो में विजय प्राप्त करने, दिव्य सुन्दर स्त्रियों को प्रकट करके उनसे काम वासना तृप्त करने, अन्य राजाओं को विशेष पुरोहित की सेवा स्वीकार करने एवं शत्रुगृह को भस्मसात् करने के लिए अनेक अनुष्ठानों का विधान इस कल्प में किया गया है। जबकि इन कल्पों के पूर्व परिशिष्ट 34 में अनुलोम कल्प के अन्तर्गत प्रतिलोम सावित्री के स्वर, छन्द, ऋषि देवता का वर्णन किया गया है। विलोम तथा अनुलोम सावित्री के पाठ से सर्व कामनाओं की सिद्धि होती है। इसमें स्वाहा के स्थान पर 'फट्' शब्द का उच्चारण करने का विधान है।

इसके अतिरिक्त परिशिष्ट 1 में नक्षत्र कल्प के अन्तर्गत, परिशिष्ट 2 से 29 में राजा से सम्बद्ध क्रिया-कलापों में तथा परिशिष्ट 50 से 72 में वर्णित शकुनों के अन्तर्गत भी विभिन्न प्रकार के आभिचारिक नियमों, कर्मों एवं शकुन-अपशकुन का प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार वैदिक संहिताओं से लेकर कल्प-साहित्य पर्यन्त सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का सामान्य सर्वेक्षण करने से यह ज्ञात होता है कि अभिचार कर्मों का वर्णन वैदिक ग्रन्थों का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है जिसमें विविध प्रकार की सामग्रियों एवं औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

तृतीय अध्याय

# मन्त्र-संहिताओं में अभिचारपरक अंश

अपने मूलरूप में अविभक्त तथा मिश्रित वेदमन्त्र अनेक ऋषि-महर्षियों मुनियों द्वारा समय-समय पर संकलित एवं सम्पादित होकर वर्तमान संहिताओं के रूप में वर्गीकृत तथा व्यवस्थित हुए। संहिता शब्द का सामान्य अर्थ है—संघ, सम्मिश्रण, समूह, संयोजन, संचय, संकलन या संग्रह। प्रातिशाख्यों के अनुसार पदों की मूल प्रकृति ही संहिता है—पद प्रकृतिः संहिता। इस प्रकार मूल वेद मन्त्रों को अलग-अलग वर्गों में विभाजित कर उनका जो रूप बना उसे ही 'संहिता' कहा गया।

## ऋग्वेद संहिता में अभिचारपरक अंश

ऋग्वेद के दशम मण्डल में अनेक सूक्तों के द्वारा लौकिक एवं व्यावहारिक विषयों का रोचक वर्णन उपलब्ध होता है। यद्यपि ऐसे विषय अथर्ववेद की विशिष्ट सम्पत्ति माने जाते हैं, ऐसी साधारण मान्यता है, परन्तु ऋग्वेद के दशम मण्डल में भी ऐसी लोक-संस्कृति से सम्बद्ध विषयों की उपलब्धि इस मण्डल की विशिष्टताओं को इंगित करती है। मानसिक दुःखों की निवृत्ति हेतु रोग-चिकित्सा परक तथा मिथ्या धारणाओं से उत्पन्न अमङ्गल की शंका के निवारणार्थ अनेक आश्चर्य-जनक मन्त्रों का संकलन ऋग्वेद में उपलब्ध है।

**मानसिक दुःखों के निवारणार्थ सूक्त :** लौकिक जगत् में मनुष्य विभिन्न प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होता है जिसका प्रमुख कारण मनुष्य की अपनी स्वाभाविक प्रकृति या स्वभाव है। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य को इस भौतिक जगत् में अनेक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी मानसिक रूप से त्रस्त होते हुए देखा जा सकता है, यथा, पुरुषों में व्यक्ति अपने शत्रुओं की यातनाओं से और स्त्रियाँ प्रमुख रूप से अपनी सपत्नियों से पीड़ित रहती हैं जो उनकी

मानसिक सन्तुष्टि में प्रायः बाधक होती हैं। अतः ऐसी मानसिक व्याधियों का निवारण ऋग्वेद के सूक्तगत मन्त्रों द्वारा प्राचीनकाल से होता आ रहा है। इसीलिए आधुनिक काल में ऋग्वेद के ऐसे मन्त्रों की विशिष्ट पहचान बन गई है।

(क) **सपत्नीपीड़न सूक्त** : इस लौकिक जगत् में प्रायः दिखता है कि विवाह के पश्चात् स्त्रियों के मानसिक सुख-चैन का हरण हो जाता है और उसका हरण करने वाली उसी के समान कोई दूसरी स्त्री होती है जो उसके पति पर अपना प्रेम पाश बिछाकर उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है जिसके कारण उस पुरुष की पत्नी उस स्त्री को अपनी सौत मानकर उससे मुक्ति पाने के लिए विभिन्न प्रयास करती है। ऐसी मानसिक व्याधियों से मुक्ति के प्रयासों में ऋग्वेद के दसवें मण्डल का 145 वाँ सूक्त सहायक माना जाता है जो वस्तुतः सपत्नीपीडन सूक्त के नाम से विख्यात है। इस सूक्त में पत्नी के कष्ट का दूर कर पति को प्राप्त करने का विवरण प्राप्त होता है। इस सूक्त में तीन मन्त्र मिलते हैं जिनका प्रयोग स्त्रियाँ अपनी सौतों को पीड़ित करने के लिए कर सकती है, यथा -

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम्।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम्॥

उपर्युक्त मन्त्र से यह ज्ञात होता है कि पृथ्वी को खोद कर निकाली गई औषधि (जड़ी-बूटी) के प्रयोग करने से कोई पतिकामा सपत्नी को दूर कर देती है और अनुरूप पति के पाने में समर्थ होती है।

(ख) **सपत्नीनाशन सूक्त** : ऋग्वेद के दसवें मण्डल का 159वाँ सूक्त 'सपत्नी नाशन सूक्त' कहा जाता है। इस सूक्त में ऐसे मन्त्रों का विवरण प्राप्त होता है जिनका प्रयोग कोई भी स्त्री अपनी सौत से अत्यधिक पीड़ित होने पर उसके विनाश के लिए कर सकती है। अपनी वैनाशिक क्षमता के कारण ही इस सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली माना जाता है। इस सूक्त के विषय में यह मान्यता है कि यदि ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 145वें सूक्त के 'इमां खनाम्योषधिं' मन्त्र से मिट्टी खोद कर उस मिट्टी को 159वें सूक्त के मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर सौत के ऊपर छिड़क दिया जाये या सौत के बिस्तर के नीचे दबा दिया जाए तो इस प्रक्रिया से उसकी सौत का

सर्वनाश किया जा सकता है। इस 'सपत्नी नाशन' सूक्त में तीन मन्त्र प्रयोजनीय हैं।[1]

**(ग) दरिद्रतानाशक सूक्त** : ऋग्वेद के दसवें मण्डल के ही 155वें सूक्त के विषय में यह मान्यता है कि कोई व्यक्ति यदि धन-लक्ष्मी से हीन होकर जीवन-यापन कर रहा हो तो वह इस सूक्त के समस्त पाँचों मन्त्रों से नित्य प्रातःकाल स्नान करने के पश्चात् 101 बार जप करे। ऐसा करने से वह व्यक्ति शीघ्र ही धन-लक्ष्मी से युक्त होकर सुखपूर्वक जीवनयापन करता है।

**(घ) शत्रुनाशक सूक्त** : ऋग्वेद में एक ऐसा भी सूक्त प्राप्त होता है जो साधारणतया 'सपत्नघ' सूक्त के नाम से जाना जाता है।[2] इस सूक्त में पाँच मन्त्र हैं जिनका प्रयोग करके कोई भी व्यक्ति अपने किसी शत्रु के विनाश के लिए प्रयास कर सकता है। इन मन्त्रों का प्रयोग करने पर वे उसी प्रकार फलीभूत होते हैं जिस प्रकार इन्द्र ने अपने वज्र की सहायता से वृत्र का नाश किया था, ऐसी साधारण मान्यता है क्योंकि इन मन्त्रों में भी वज्रधारी इन्द्र से ही शत्रु के विनाश की प्रार्थना की गई है, यथा, एक मन्त्र मे[3] शत्रुओं को परास्त करने की भावना को व्यक्त किया गया है।

**रोग चिकित्सापरक सूक्त** : विभिन्न रोगों के निवारणार्थ भी अनेक मन्त्रों का उल्लेख ऋग्वेद के दसवें मण्डल में मिलता है, जिनमें राजयक्ष्मा नाशक सूक्त, गर्भरक्षण सूक्त, गर्भाशीर्वाद सूक्त, सर्वाङ्ग रोगनाशक सूक्त आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

---

1. येनेन्द्रो हविषा कृत्व्य भवद् द्युम्न्युत्तमः।
   इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम्॥ ऋग्वेद, 10.159.4
   असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभि भूवरी।
   आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव॥ तत्रैव, 10.159.5
   समजैषमिमा अहं सपत्नीरभि भूवरी।
   यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च॥ तत्रैव, 10.159.6
2. तत्रैव, 10.166 के समस्त मन्त्र
3. ऋषभं मां समानानां सपत्नानां विषासहिम्।
   हन्तारं शत्रुणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्॥ तत्रैव, 10.166 का एक मन्त्र

(क) **यक्ष्मा या राजयक्ष्मानाशक सूक्त** : ऋग्वेद के 10वें मण्डल के दो सूक्त[1] यक्ष्मा और राजयक्ष्मा जैसे रोगों से मुक्ति दिलाने वाले मन्त्र हैं। उपर्युक्त दोनों सूक्तों के मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल को रोगी के ऊपर मन्त्रोच्चार पूर्वक छिड़कने से रोगी शीघ्र रोग-मुक्त हो जाता है। 161वें सूक्त में 'राजयक्ष्मा' शब्द का ही प्रयोग नहीं है प्रत्युत् इससे पीड़ित व्यक्ति को मृत्यु के पास से आहरण करने का भी स्पष्ट वर्णन है। 163वें सूक्त में यक्ष्मा के नाशन के उपाय का तथा शरीर के नाना अवयवों का भी वैज्ञानिक विवरण मिलता है।

(ख) **गर्भरक्षण सूक्त** : ऋग्वेद के 10वें मण्डल का 162वां सूक्त[2] जन-साधारण के मध्य में 'रक्षोहा सूक्त' के नाम से चिर-परिचित माना जाता है। इस सूक्त के मन्त्रों में बाधक राक्षसों के विघ्नों से रक्षा का प्रबन्ध बतलाया गया है। विशेषतया यह सूक्त उन स्त्रियों के गर्भ रक्षण के लिए प्रयोग किए जाने पर फलीभूत होता है जिनका गर्भ किसी राक्षस आदि के द्वारा उत्पन्न रोग से ग्रसित होकर नष्ट हो जाता है अथवा किसी जार उपपति के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

(ग) **गर्भाशीर्वाद सूक्त** : ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 183वें सूक्त के विषय में यह मान्यता है कि इस सूक्त के समस्त मन्त्र गर्भधारण कराने में अत्यन्त प्रभावशाली हैं। यदि विवाह के कई वर्षों पश्चात् भी किसी स्त्री ने गर्भ न धारण किया हो तो इस गर्भाशीर्वाद सूक्त के मन्त्रों से अभिमन्त्रित सरसों को स्त्री की कमर में बांध देने से यह अवश्य ही गर्भ धारण करती है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त 116 में एक ऐसे मन्त्र[3] का भी उल्लेख मिलता है जिसके प्रयोग से नपुंसक पति के कारण गर्भ न धारण करने वाली स्त्री भी गर्भवती हो सकती है।

---

1. ऋग्वेद, 10.161 तथा 163 के समस्त मन्त्र
2. ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
   अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥
   यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
   प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ तत्रैव, 10.162, 1-5
3. अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंधिः।
   श्रुतं तच्छा सुरि व वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥
   तत्रैव, 1.116.13

(घ) **सर्वाङ्ग रोगनाशक सूक्त :** 10वें मण्डल में ही एक ऐसा भी सूक्त प्राप्त होता है जिसे मनुष्य के सिर से लेकर पैर तक होने वाले किसी भी प्रकार के रोग का विनाशक बताया गया है। इस सूक्त में छः मन्त्र हैं जो विभिन्न रोगों से मुक्ति दिलाने में सक्षम माने गए हैं क्योंकि इन मन्त्रों में रोग निवारक शक्ति विद्यमान रहती है।[1]

(ङ) **प्रस्वापन सूक्त :** ऋग्वेद के सातवें मण्डल के 55वें सूक्त को सर्वानुक्रम में 'प्रस्वापिन्यः उपनिषद्' की संज्ञा दी गई है और मूल रूप में 'सुलाने वाले सूक्त के रूप में ही इसकी रचना हुई है।

प्राचीन परम्परा के अनुसार इस सूक्त में वरुण का घर वर्णित हुआ है और इनमें भूख से व्याकुल होकर अन्न प्राप्ति के लिए वरुण पुत्र वशिष्ठ के प्रवेश करने तथा अपने इस कार्य को गुप्त रखने के लिए घर के सभी लोगों को मोह-निद्रा के आतङ्क में पहुँचाने की बात यहाँ कही गई है। इसके विपरीत पाश्चात्य अनुसन्धान कर्ताओं के मत में अपनी प्रिया को भगाकर ले जाने के उद्देश्य से किसी प्रियतम के उसके घर में प्रवेश करने तथा घर के सभी व्यक्तियों को अपने मन्त्र की सामर्थ्य से सुलाने की कथा वर्णित है।

ऋग्वेद के इस सूक्त में आठ मन्त्र हैं जिनकी सहायता से घर प्रहरी कुत्ते, नौकर तथा घर के सभी सदस्यों को निद्रा में लीन करने का वर्णन है।[2]

ऋग्वेद के इस सूक्त के अन्तिम चारों मन्त्रों का प्रयोग अथर्ववेद में भी हुआ है[3] और वहाँ पर इन मन्त्रों के प्रयोग का उद्देश्य स्पष्ट रूप से किसी स्त्री को स्वजनों से अलग करने के लिए उन पर निद्रा की मोहिनी का प्रयोग करना

---

1. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥
अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥
ऋग्वेद, 10.163.1-6

2. अमीवहा वहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्या विशन् ।
सखा सुशेव एधि नः ॥
प्रोष्ठेशया वाह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ तत्रैव, 7.55.1-7.8

3. अथर्व०, 4.5

ही है और इसी सन्दर्भ में उद्धृत ऋचाओं के मूलतः विरोधी शब्दों को हटाकर अनुकूल शब्दों को प्रयुक्त किया गया है।

**कुष्ठ रोग, बधिरता तथा अंधापन दूर करने के मन्त्र :** ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक ऐसा सूक्त भी आया है जिसके मन्त्र क्रमशः कुष्ठ रोग तथा बधिरता और अंधापन दूर करने में सक्षम माने गये है।[1] इन मन्त्रों की प्रयोग विधि के अनुसार ही प्रथम मन्त्र से अभिमन्त्रित औषधि का लेप करने से कुष्ठ रोग से पीड़ित रोगी रोग-मुक्त हो जाता है। द्वितीय मन्त्र के विषय में मन्त्र से अभिमन्त्रित जलावषेचन का विधान है जिससे दृष्टिहीन तथा बधिर व्यक्ति देखने की शक्ति एवं श्रवण शक्ति से पूर्ण हो जाता है।

**विषहर सूक्त :** ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में मधुविद्या[2] के नाम से प्रसिद्ध सूक्त 19वें के मन्त्रों का प्रयोग सर्प अथवा किसी कीड़े के द्वारा काटे जाने पर शरीर में व्याप्त विष अथवा जहर को उतारने के लिए किया जाता है। इस सूक्त के मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल को मन्त्रोच्चारपूर्वक रोगी के ऊपर छिड़कने से धीरे-धीरे रोगी के शरीर में फैला हुआ विष उतर जाता है और रोगी सामान्य अवस्था में आ जाता है। विष को उतारने अथवा झाड़ने की इस पद्धति का प्रयोग वर्तमान समय में भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है।

**जीवनरक्षण सूक्त :** ऋग्वेद के दसवें मण्डल के दो सूक्तों 58 तथा 60 के पांच मन्त्रों[3] के विषय में यह मान्यता है कि इन पाँच मन्त्रों की सहायता से अग्नि में आहुति देते हुए किसी रोगी व्यक्ति के जीवन की कामना करने पर मृत्यु की शैय्या पर स्थित रोगी व्यक्ति भी शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करता हुआ दीर्घजीवी होता है।

**हस्त-स्पर्श से रोग नाश :** ऋग्वेद में विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने

---

1. युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
   घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनादत्तम् ॥
   ऋग्वेद, 1.117.7-7

   युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय।
   प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ तत्रैव, 1.117-8
2. तत्रैव, 1.191 के समस्त मन्त्र
3. तत्रैव, 10.58; 60.7-12

वाले चिकित्सक को 'भिषक' कहा गया है।[1] जो मन्त्रों का प्रयोग करते हुए बहुविध के रोगों को शान्त रखने की सामर्थ्य से युक्त होता है। इन्हीं रोग निरोधक मन्त्रों के अन्तर्गत ऋग्वेद के दसवें मण्डल में दो ऐसे आश्चर्यजनक मन्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है[2] जिनका प्रयोग करते हुए मनुष्य द्वारा हाथ की दसों अंगुलियों से शरीर के किसी भी रोग-ग्रस्त अंग को स्पर्श करने मात्र से ही वह रोग-ग्रस्त अंग रोग-रहित हो जाता है। जबकि इन्हीं मन्त्रों का प्रयोग करते हुए वही 'भिषक' किसी अन्य निरोगी व्यक्ति को रोगी बनाने में भी समर्थ होता है। बहुधा निरोगी को रोगी बनाने का उद्देश्य किसी शत्रु आदि को पीड़ित करना अथवा अभिचार की दृष्टि से रोगी व्यक्ति को ठीक करने के लिए उसके रोग को किसी अन्य व्यक्ति पर स्थानान्तरित करना ही रहता होगा।

**ऋग्वेद में मिथ्या धारणाएँ**

(क) **पशु-पक्षीकृत अमङ्गलजनक शब्दों के दोष निवारण हेतु मन्त्र :** ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के तीन-तीन मन्त्रों वाले दो छोटे छोटे सूक्त शकुनशास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। इन मन्त्रों में काक तथा उलूक जैसे अपशकुन के पक्षियों द्वारा बोले जाने पर उनके द्वारा संकेतित अमङ्गल की आशंका को दूर करने के लिए शुभ शकुन के पक्षियों द्वारा मङ्गल स्वर निनादित करने के लिए प्रार्थना की गई है।[3]

(ख) **दुःस्वप्न से उत्पन्न अमङ्गल निवारण हेतु मन्त्र :** ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 164 सूक्त के विषय में ऐसी मान्यता है कि प्रातःकाल किसी बुरे या अशुभ स्वप्न के दिखाई देने पर उससे होने वाले अमङ्गल या अशुभ के निवारण के लिए इस सूक्त के मन्त्रों से प्रार्थना करने पर वह अमङ्गल सर्वथा

---

1. त्वादत्तेभी रुद्र शतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
   व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातय स्वा विषूचीः ॥ ऋग्वेद, 2.33.2
2. अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
   अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ तत्रैव, 10.60.12
   हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
   अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥ तत्रैव, 10.137.7
3. तत्रैव, 2.42-43 (1.2,3)

टल जाता है और व्यक्ति का चतुर्विक कल्याण होता है।[1]

ऋग्वेद में भी अथर्ववेद की ही भांति 'यातु' को आसुरी माना गया है। ऋग्वेद के दो मन्त्रों में इसका संकेत मिलता है।[2] ऋषि कहता है कि "यदि मैं आभिचारिक होऊँ तो आज ही मर जाऊँ; और अपने शत्रु की, जो उसे उसके पवित्र होने पर भी आभिचारिक कहता है, भर्त्सना करता है और अपने आप को पवित्र समझने वाले यथार्थ आभिचारिक पर भी क्रोधित होता है।

अथर्ववेदीय अभिचार मन्त्रों के आधार पर जादू-टोनों या अभिचार कर्म के प्रादुर्भाव की अपेक्षाकृत अर्वाचीन प्रवृत्ति का सूचक समझना उचित नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण ऋग्वेद पर दृष्टिपात करने से यह दृष्टिगोचर होता है कि ऋग्वेद में भी ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जो विशुद्ध धार्मिक भावना से भिन्न जादुई या अभिचार भावना को व्यक्त करते हैं, जिनमें इन्द्र प्रभृति दैवी शक्तियों से लोगों अथवा शत्रुओं से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना ही नहीं की जाती है अपितु मन्त्र बल से उन्हें समन्वित क्रिया-कलाप के द्वारा बाध्य करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यह क्रिया-कलाप अवश्य ही श्रौत सूत्रों में वर्णित सोमयाग सम्बन्धी कर्मकाण्ड से बहुत भिन्न हैं।

ऋग्वेद पर आधृत ऋग्विधान इसी प्रकार की क्रियाओं में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का संग्रह है। श्लोकबद्ध यह रचना उन लोगों के लिए सर्वोपयोगी है, जो धर्माभिचार मिश्रित कर्मकाण्ड के द्वारा धन-सम्पत्ति, लौकिक लाभ, सन्तान या विजय, स्वर्गीय सुख – यहां तक कि मुक्ति भी प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं। इसमें प्रतिपादित क्रिया-कलाप की सहायता से अनेक प्रकार

---

1. ऋग्वेद, 10.164 समस्त मन्त्र
2. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पुरुषस्य।
   अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह॥
   
   तत्रैव, 7.104.15

   यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह
   इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥
   
   तत्रैव, 7.104.16

के दूषणों, राक्षस-पिशाचों, भय तथा रोगों, अकाल मृत्यु, व्यक्तियों तथा अपशकुनों के दुष्परिणामों से छुटकारा पाया जा सकता है। शत्रु तथा प्रेयसी को वश में करने तथा अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्यों को सफल बनाने के उपाय इसमें वर्णित हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार के फलों को प्राप्त करने के लिए विधेय कर्मों तथा विनियोज्य मन्त्रों की तालिका के रूप में ऋग्विधान जैसी लघु रचना का प्रतिपाद्य अत्यन्त विशाल है। ऋग्वेद से संगृहीत इन मन्त्रों का क्रम भी संहितानुसार ही है किन्तु न तो विशेष निमित्तों के लिए चुने गए सूक्त ही सम्पूर्ण रूप में किसी विनियोग में विहित हैं और न ही सभी सूक्तों अथवा मन्त्रों को विनियोज्य मानकर उपयोग में लाया गया है।

ऋग्विधान में ऋग्वेद के 1.65 से 63 तक के सूक्तों की सहायता से शत्रुओं को नष्ट करने तथा वशीभूत करने की बात कही गई है किन्तु इन सूक्तों में ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती है जिससे इनके ऐसे विनियोग को संगत सिद्ध किया जा सके।[1]

इसी प्रकार पुत्रों, पशुओं, सम्पत्ति, दीर्घायु तथा स्वर्ग प्राप्ति के लिए सौपर्ण सूक्तों के जप का विधान है, जो सम्भवतः सुपर्णाध्याय पर आधृत है। ऋग्वेद 1.101 के जप द्वारा वन्ध्या स्त्री के भी पुत्र हो सकने की बात कही गई है।[2]

जिसकी वाक्शक्ति, स्मरणशक्ति अथवा अर्जित ज्ञान नष्ट हो गया हो, उसके लिए दो मास तक ऋग्वेद के 3.53.15-16 मन्त्रों का जप करने का विधान वर्णित है।[3] ऋग्वेद 10 34.1 के जादुई प्रभाव से जुए में किसी को भी जीतने की बात कही गई है।[4] इसी सूक्त के अन्तिम मन्त्र द्वारा पाँसों से आत्म रक्षार्थ प्रार्थना तथा शत्रु को फाँसने की प्रार्थना की गई है। इस मन्त्र में सम्भवतः पांसों के प्रभाव से सदा के लिए छुटकारा पाने की इच्छा व्यक्त होती है।

ऋग्विधान में एक स्थल पर ऐसे अभिचार कर्म का विधान किया गया है

---

1. ऋग्विधान, 2.23.3; 2.25.11
2. तत्रैव, 1.23.3
3. तत्रैव, 2.3.1-2
4. तत्रैव, 3.10.1-3

जिससे नगर, यहाँ तक कि समस्त देश को वश में किया जा सकता है। इसके लिए ताँबे की मूर्ति को विभीतक की अग्नि में तपाकर आधी रात को इस पर तिल तथा सरसों का तेल तथा नमक डालकर सरकण्डे के पलंग पर बैठकर, भयानक आकृति बनाकर बालों को बिखेर कर आभिचारिक कृत्य सम्पन्न कराया जाता है जिसमें आत्म रक्त का भी प्रयोग किया जाता है।[1]

## सामवेद संहिता में अभिचारपरक स्थल

वेदों में सामवेद का अपना विशिष्ट स्थान है। वैदिक साहित्य के इतिहास में ऋग्वेद के पश्चात् सामवेद की ही गणना होती है। सामवेद में भी अनेक ऐसे मन्त्रों का संकलन प्राप्त होता है जिनका गान जनसाधारण की इच्छाओं और भावनाओं को स्पर्श करता है। सामवेद की संहिता में मात्र मन्त्रों का संकलन है जबकि इन मन्त्रों का प्रायोगिक स्थल और प्रयोग विधि ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित है। संहिता में संकलित उन मन्त्रों को अभिचार की कोटि में रखा जाता है जिनकी सहायता से मनुष्य अपनी विभिन्न कामनाओं की पूर्ति करता है। ऐसे कुछ प्रसंग ये हैं—

**कन्या के लिए वर प्राप्ति हेतु मन्त्र :** सामवेद के प्रारम्भ में ही एक ऐसा मन्त्र दृष्टिगोचर होता है जिसका प्रयोग सामान्यतया, कन्या की योग्य अवस्था हो जाने पर भी वर के न मिलने पर, वर प्राप्ति के लिए किया जाता है।[2] कन्या का पिता कन्या का विवाह करने के लिए स्वयं एक रात्रि का उपवास करके, अमावस्या की रात्रि में सामवेद के सातवें मन्त्र से चौराहे पर, उस कन्या पर जलावषेचन करे। इस प्रकार तीन रात्रियों तक तीन-तीन बार जलावषेचन करने से कन्या के अनुकूल वर की प्राप्ति होती है।

**शत्रु उच्चाटनार्थक मन्त्र :** शत्रु के मानसिक उच्चाटन के लिए सामवेद के तीन मन्त्र आये हैं जिनके विषय में यह मान्यता है कि इन मन्त्रों का विधिपूर्वक प्रयोग करने पर अवश्य ही साधक की मनोकामना पूर्ण होती है। शत्रु-उच्चाटन की इच्छा रखने वाला व्यक्ति त्रिरात्र उपवास करके कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को रात्रि में चौराहे पर अग्नि में मत्स्य और कृकर पक्षी की आहुतियां

---

1. ऋग्विधान, 3.18.1-4
2. एह्यषु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्द्धसि इन्दुभिः॥ सामवेद, पूर्वार्चिक मन्त्र 7

सामवेद के 23 और 4 मन्त्रों[1] से दे और उससे निष्पन्न भस्म को सामवेद के 107 वें[2] मन्त्र का गान करते हुए शत्रु के घर अथवा सम्भव हो तो शैय्या के चारों ओर बिखेरने से साधक की मनोकामना पूर्ण होती है।

**वशीकरणात्मक मन्त्र** : सामवेद में विभिन्न व्यक्तियों के वशीकरण हेतु अनेक साम मन्त्र हैं जिनका विधिपूर्वक गान करने पर वे फलीभूत होते हैं। यथा— सामवेद का 26वाँ मन्त्र[3] संन्यासिनियों और वेश्याओं को वश में करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस साम के प्रयोग के लिए विकसित कमल की कलिका में प्रियंगु के बीज डालकर, कमल के संकुचित होने पर, उसे उखाड़ लिया जाता है, पश्चात् उसे दो ओर से फाड़कर उसकी कर्णिका से उपर्युक्त साम द्वारा अनुलेपन करने का विधान है।

इसी प्रकार किसी स्त्री अथवा पुरुष के वशीकरण हेतु अन्य मन्त्रों का विधान है। सामवेद का 159वाँ मन्त्र[4] ब्राह्मण जाति के पुरुष को वश में करने के लिए, 65वां मन्त्र[5] क्षत्रिय के वशीकरण हेतु, 556वाँ साम[6] वैश्य के वशीकरण हेतु तथा 366वाँ मन्त्र[7] शूद्र जाति के पुरुष अथवा स्त्री को अपने अधीन

---

1. अग्ने मृड महा᳐ अस्यय्न्आ देव युञ्जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ सामवेद, 23
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ तत्रैव, 4
2. प्रम᳐ हिष्ठाय गायत ऋतान्वे बृहते शुक्र शोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ तत्रैव, 107
3. नित्वा नक्ष्य विशपते द्युमन्तं धीमहे वयम् ।
सुवीरमग्न आहुत ॥ तत्रैव, 26
4. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ तत्रैव, 159
5. इदन्त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशनस्तन्वे३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ तत्रैव, 65
6. एष प्र कोशं मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
अभ्यृ३तस्य सदुघा धृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ तत्रैव, 556
7. विभोष्ट इन्द्रराधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्व चर्षणे द्युम्नँ सुदत्रमँ ह्य ॥ तत्रैव, 366

करने के लिए है। उपर्युक्त में जिस जाति के पुरुष अथवा स्त्री को वशीभूत करना हो उसकी आटे अथवा मिट्टी की प्रतिमा बनाकर तथा साध्य व्यक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करके अर्धरात्रि में उस पर पैर रखकर सामवेद में निर्दिष्ट साममन्त्र का जाप करने से वह व्यक्ति शीघ्र ही वश में हो जाता है। इसके अतिरिक्त 380 मन्त्र[1] भी वशीकरण हेतु ही प्रयोग में लाया जाता है। इस साम को प्रयोग में लाने के लिए साध्य व्यक्ति की, काले तिलों को पीसकर उससे प्रतिमा बनाने के पश्चात्, उसके अंगों को काट-काट कर उपर्युक्त साम से आहुतियाँ देने पर वह व्यक्ति वश में हो जाता है ऐसा सामविधान ब्राह्मण में वर्णित है।

इसी में 269 साममन्त्र[2] कमनीय व्यक्ति के वशीकरण हेतु प्रयोजनीय हैं। कमनीय व्यक्ति के वशीकरण हेतु प्रियङ्गुक नामक लता के बीजों को सुखा कर उपर्युक्त साममन्त्र से अग्नि में आहुति देकर उससे निष्पन्न चूर्ण (राख) को उस व्यक्ति के ऊपर छिड़कने से वह साधक के वशीभूत हो जाता है। सामवेद में मनुष्यों के वशीकरण के अतिरिक्त भूत-प्रेत और पिशाचों के वशीकरण के लिए भी कुछ मन्त्र मिलते हैं। यथा सामवेद का 570 मन्त्र पिशाच वशीकरण का मन्त्र है।[3] पिशाचों को वश में करने के लिए व्यक्ति को एक वर्ष तक एक समय भोजन करके कपाल में भिक्षा मांगनी पड़ती है और साथ में पिशाच वशीकरण के लिए विहित साम की आवृत्ति करनी होती है। 72वाँ मन्त्र भूतों के वशीकरण हेतु है।[4] सप्तमी से चतुर्दशी तक आठ दिन उपवास करके अमावस्या के दिन मुख में आज्य रखकर साम विशेष का मानस जाप करने से भूतों को वश में किया जा सकता है। इसी साममन्त्र के द्वारा जम्भक नाम के भूत विशेष को भी वश में किया जा सकता है।

---

1. प्रमन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
   अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥ सामवेद, 390
2. आ नो विश्वासुहव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत।
   उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥ तत्रैव, 269
3. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्। तत्रैव, 570
   विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥
4. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्यूतं जनयतप्रशस्तम्। तत्रैव, 72
   दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥

**अद्‌भुत एवं अभिचार निवारक मन्त्र**

साम संहिता की 51वीं ऋचा अभिचार की शान्ति के लिए है। किसी शत्रु के द्वारा आभिचारिक कृत्य किए जाने पर उपर्युक्त साम से अग्नि में काले तिलों की आहुति देने से आभिचारिक कृत्य का प्रभाव उल्टा अभिचार कर्ता के ऊपर ही पड़ता है।[1]

जगत् में कभी अद्‌भुत कार्यों, यथा—तारे का टूटना अथवा सूर्यमण्डल में छिद्र दिखाई देना आदि के दृष्टिगोचर होने पर उससे होने वाले विनाश से बचने के लिए सामवेद की 184 ऋचा से अग्नि में आहुति देने से अवश्य ही अद्‌भुत विषयोत्पन्न संकट का निवारण होता है।[2]

**वास्तु-शान्त्यर्थ मन्त्र** : वास्तु-शान्ति का अभिप्राय है—नवीन गृह की आधारशिला रखते समय भूमिगत राक्षसादि का निवारण। इस कार्य के निमित्त सामवेद का 210वाँ मन्त्र प्रयोजनीय है।[3] सामवि० ब्राह्मण में कथित कार्य से सम्बन्धित पूजनविधि एवं उपर्युक्त साम मन्त्र से अग्नि में आहुति एवं बलि समर्पण का निर्देश दिया गया है।

**धन धान्यादि समृद्धि हेतु मन्त्र** : सामवेद का 531वाँ मन्त्र किसी भी व्यक्ति के द्वारा स्वयं को धन-धान्यादि से समृद्ध करने हेतु प्रयोग में लाया जाता है।[4] इस निमित्त अन्य विभिन्न सामों का भी विधान है। इन सामों का सत्य संभाषणादि पूर्वक नित्य गान करने से मनुष्य निश्चित रूप से धन-धान्यादि की समृद्धि की ओर अग्रसर होता है।

**यश, ब्रह्मवर्चस् तथा स्मरण शक्ति की वृद्धि निमित्त मन्त्र** : उपर्युक्त

---

1. प्र दैवो दासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि॥ सामवेद, 51

2- वात आ वातु भेषजँ शम्भु मयोभुनो हृदे।
प्र न आयूँषि तारिषत्॥ तत्रैव, 784

3. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्त मुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥ तत्रैव, 210

4. एषस्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्॥ तत्रैव, 531

मनोकामनाओं के निमित्त चार सामप्रयोजनीय हैं। सामवेद के दो मन्त्र 248 तथा 576 का नित्य विधिपूर्वक गान करने से मनुष्य यशस्वी होता है।[1] 280 मन्त्र ब्रह्मवर्च्चस की वृद्धि हेतु तथा 198 मन्त्र स्मरण शक्ति की वृद्धि हेतु है।[2] इन सामों का प्रयोग विभिन्न संस्कारों के अवसर पर होता है। यथा—अन्नप्राशन संस्कार से पूर्व भारद्वाज पक्षी की जिह्वा को उखाड़कर, पीसकर घृत और मधु के साथ, स्मरणशक्ति के उपयुक्त मन्त्र का सामगान करते हुए, चटाने से शिशु की स्मरण शक्ति दृढ़ होती है।

**भाविफलसूचक-स्वप्नों के दर्शनार्थ मन्त्र** : सामवेद में अनेक ऐसे मन्त्र उल्लिखित हैं जिनके विषय में यह मान्यता है कि उनका प्रयोग करने पर मन्त्र के प्रयोगकर्ता को भविष्य में प्राप्त होने वाले परिणामों का पूर्व में ही स्वप्न के द्वारा दर्शन हो जाता है। यथा—'संकर वासिनी' नाम्नी देवी का आह्वान करके सूप में पुष्प-धूपादि, अक्षतादि को रखकर, उस सूप को रात्रि में सोने के पूर्व सिरहाने रखकर सामवेद के 190 मन्त्र का गान करने के पश्चात् सोने पर रात्रि में भाविफल सूचक स्वप्न दिखाई देता है।[3] अथवा सूप के स्थान पर विषगुलिका को सम्पुट में रखकर अक्षतादि से उसकी अर्चना करके सिरहाने रखकर सोने से भी इच्छित वस्तु अथवा विषय का दर्शन होता है।[4]

इसके विपरीत स्वप्नविषयक प्रयोग के अतिरिक्त जाग्रतावस्था में भी

---

1. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः।
त्वं वृत्राणि ह्ँस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणी धृतिः॥ सामवेद, 248
पवते हर्यतो हरिरत ह्वराँसि रँह्या।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः॥ तत्रैव, 576
2. कस्तमिन्द्रं त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजँ सिषासति॥ तत्रैव, 280
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत॥ तत्रैव, 198
3. क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रँ सोमस्य तर्पयात्।
स नो वसून्या भरात्॥ तत्रैव, 190
4. आ याहि सुषुमा हि, त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम॥ तत्रैव, 191

इच्छित विषय की जानकारी हेतु कुछ साममन्त्रों का विचित्र ढंग में प्रयोग किया जाता है। यथा—किसी कन्या और दर्पण को 60वें साममन्त्र से अभिमन्त्रित कर रात्रि में अपने पास रख कर, दूसरे दिन प्रातःकाल उसी साम ऋचा की शतावृत्ति करके कन्या से दर्पण में देखने के लिए कहने पर वह कन्या वही बताती है जो कुछ उससे पूछा जाता है।[1]

**युद्ध में विजय प्राप्ति हेतु मन्त्र[2]** : युद्धक्षेत्र में संग्राम के मध्य शत्रु सेना के द्वारा अपनी सेना को स्तम्भित कर उन्हें पथभ्रष्ट किये जाने पर और सम्मोहन के माया जाल में फँसाने पर 625 साम मन्त्र से अभिमन्त्रित सरसों को शत्रु सेना पर फेंकने से शत्रु सेना ही स्तम्भित होकर युद्ध करने में असहाय सी हो जाती है और उस पर सरलतापूर्वक विजय प्राप्त की जा सकती है।

**सात्विक कार्यों में बाधक और हिंसक राक्षसी प्रवृत्तियों के विनाशक मन्त्र** : सामवेद के दो मन्त्र 134 तथा 627 इस निमित्त प्रयोग किए जाते हैं।[3] किसी भी इच्छित कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व इन दो मन्त्रों का ग्यारह-ग्यारह बार गान करने पर उस कार्य या उद्देश्य की सफलता में विघ्न डालने वाली हिंसक प्रवृत्तियों का नाश होता है।

## यजुर्वेद संहिता में आभिचारिक मन्त्र

यजुर्वेद मुख्यतया दो भागों में विभक्त है—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। वर्तमान समय में शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता और कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा की तैत्तिरीय संहिता ही अधिक प्रचलित है। यद्यपि

---

1. अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य।
   राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्र हथानाम्॥ सामवेद, 60
2. सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन्।
   क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः॥
   तत्रैव, 625
3. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
   वसु स्पार्हं तदा भर॥ तत्रैव, 134
   अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
   आ रे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ तत्रैव, 627

प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण यजुर्वेद कर्मकाण्डपरक माना जाता है। शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद दोनों की ही संहिताओं के प्रतिपाद्य विषयों का आधार वाजसनेयि संहिता ही है। वाजसनेयि संहिता का प्रतिपाद्य विषय विभिन्न इष्टियों का वर्णन, विभिन्न यज्ञ-यागादि का विवेचन, वेदि निर्माण, अग्नि चयन आदि का विस्तृत वर्णन करना है। इन्ही यज्ञ-यागादि में निहित विभिन्न अनुष्ठानों में प्रयुक्त विभिन्न मन्त्रों का अभिचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। ये आभिचारिक मन्त्र निम्न प्रकार से दृष्टव्य हैं—

**कृत्या-निवारणार्थ मन्त्र** : शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता के पञ्चम अध्याय में सोमयाग के विस्तृत वर्णन के अन्तर्गत कृत्या निवारणार्थ मन्त्र उल्लिखित है। कृत्या का अर्थ है– अपने विरोधी को नष्ट करने के लिए अस्थि, केश, नखादि पदार्थों को अभिमन्त्रित करके भूमि में गाड़ देना। यजुर्वेद में इसे 'वलग' कहा गया है। तान्त्रिक लोग इसे करते हैं और जिसका अनिष्ट करने के लिए यह क्रिया की जाती है। यदि वह इसका शास्त्रीय प्रतिकार न करे तो वह नष्ट हो जाता है। विशेतया राजकुलों में जहाँ राज्याधिकार और सम्पत्ति के झगड़े चलते हैं, इस प्रकार के प्रयोग प्रायः करवाये जाते हैं। यह प्रयोग केवल शत्रु द्वारा ही नहीं करवाये जाते अपितु पुत्र, भ्राता, अमात्य आदि अत्यन्त प्रिय और निकटस्थ व्यक्ति भी ऐसे षड्यन्त्र करते हैं। अतः ऐसे षड्यन्त्रों से बचने के लिए सोमयाग से सम्बद्ध अग्निष्टोम याग में यज्ञ भूमि में चार गड्ढे विभिन्न उपदिशाओं में बनाने का विधान है जो उन गर्तों के प्रतीक होते हैं जिनमें किसी अपने या पराये ने यज्ञ कर्ता का बधादि करने के लिए अस्थि, नख, केशादि के रूप में 'कृत्या' या 'वलग' गाड़ा हो। यज्ञकर्ता इन चारों गर्तों से मृत्तिकादि को यजुर्वेद के 5.23 मन्त्र[1] की सहायता से उठाकर फेंकता है। इस प्रकार की क्रिया वह शत्रुकृत 'वलग' को नष्ट करने के लिए करता है। इस प्रकार कृत्या निवारण के लिए यजुर्वेद के पंचम अध्याय के 22, 24 तथा 25वें मन्त्र भी

---

1. रक्षोहणं व लगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि।

यजुर्वेद, 5.23

प्रयोग किए जाते हैं।[1] जिनके माध्यम से मृत्तिका को उखाड़ने अर्थात् गड्ढे को खोदने तथा शत्रुकृत कृत्या के विनाश के लिए पूजा अर्चना का कार्य सम्पन्न किया जाता है।

**भूत-प्रेत तथा अरिष्ट निवारणार्थ मन्त्र :** शुक्ल यजुर्वेद के षष्ठम अध्याय का 16वां मन्त्र अरिष्ट निवारण के लिए प्रयोग में लाया जाता है। यज्ञ के कार्य में विभिन्न प्रकार की तामसी प्रवृत्तियां विघ्न डालती हैं। अतः यज्ञ कर्ता यज्ञ के निर्विघ्न सम्पादन के लिए इस मन्त्र से यज्ञ में होम करता हुआ राक्षसी भावना को पतन की ओर अग्रसर करता है। लोक व्यवहार के पक्ष में इस मन्त्र की सहायता से यजमान अपनी उन्नति के मार्ग में अवरोधक अपने शत्रुओं को पतन की ओर अग्रसर करता है।[2]

**विद्वेषी के विनाशार्थ मन्त्र :** शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयि संहिता का 11.80 मन्त्र[3] यजमान से द्वेष अथवा घृणा करने के कारण विभिन्न प्रकार से यजमान को हानि पहुंचाने की चेष्टा करने वाले व्यक्ति के विनाश के लिए

---

1. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यांपूष्णो हस्ताभ्याम् आद्दे नार्यसीदमहँ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि। बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद। यजुर्वेद, 5.22
   स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्य मित्रहा। तत्रैव, 5.24
   रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान रक्षोहणौ वां वलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवाः स्थ। तत्रैव 5.25
2. रक्षसां भागोऽसि निरस्तँ रक्ष इदमहँ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहँ रक्षोव बाध इदमहँ रक्षोऽधमं तमो नयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेस्तोकानामग्नि राजस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्। तत्रैव, 6.16
3. यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः। तत्रैव, 11.80
   निन्दाद्यो अस्मान धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु।
   तुलना शत० ब्रा०, 6.6.3-10

है क्योंकि इस मन्त्र में अग्नि देवता से विद्वेषी के विनाश के लिए प्रार्थना की गई है । यज्ञ में इस मन्त्र का केवल विधिपूर्वक उच्च स्वर से उच्चारण करने पर ही यह फलदायी सिद्ध होता है।

**सर्वाङ्ग रोग नाशक मन्त्र :** यजुर्वेद का 14.17 मन्त्र सिर से लेकर पैर तक होने वाले सभी शारीरिक रोगों के निवारणार्थ प्रयोजनीय है।[1] शरीर के किसी अंग के रोग-ग्रस्त होने पर उपर्युक्त यजुष का मानस जाप करने से वह अंग रोगमुक्त हो जाता है और रोग नीरोग रहते हुए दीर्घकाल तक जीवित रहता है।

**सुख समृद्धि हेतु मन्त्र :** शुक्ल यजुर्वेद का 16वां अध्याय रुद्राध्याय कहा जाता है। इसके पूर्व के अध्यायों में भी रुद्र देवता का वर्णन हुआ है जिनमें विभिन्न मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए रुद्र देवता का स्मरण किया गया है। इसी सुख-समृद्धि रूपी मनोकामना की पूर्ति हेतु 14वें अध्याय के 25वें मन्त्र में[2] रूद्र देवता से प्रार्थना की गई है कि भिन्न-भिन्न देवताओं के अधीन सभी प्रकार की सुख-समृद्धि से उसे मुक्त करें।

**राज्य की समृद्धि हेतु मन्त्र :** किसी भी शासक का प्रथम कर्तव्य होता है अपने देश एवं राज्य की प्रगति करना। किन्तु राज्य की प्रगतिशीलता में अनेक ऐसे अवसर भी आते हैं जब वाह्य शक्तियां तथा आन्तरिक शक्तियां उसकी प्रगति में अवरोध उत्पन्न करती है और राज्य समृद्धि की ओर अग्रसर होने के बजाय क्षीणता की ओर अग्रसर होता है। ऐसे अवसर पर राज्य का स्वामी अपने राज्य की समृद्धि एवं प्रगति के लिए विभिन्न प्रयास करता है। इन्हीं प्रयासों में अन्तर्निहित अनेक अनुष्ठान भी राज्य की समृद्धि में सहायक

---

1. आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ।
यजुर्वेद, 14.17

2. वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विंश: स्तोम:।
आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा: स्पृता: पञ्चविंश: स्तोम:।
अदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधित्यमोज: स्पृतं त्रिणव: स्तोमो देवस्य।
सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यँ समीचीर्दिश: स्पृताश्चतुष्टोम: स्तोम:।
तत्रैव, 14.25

सिद्ध होते हैं। यजुर्वेद का 16वाँ अध्याय रुद्राध्याय के नाम से लोक विदित है जिसमें रुद्र ही मुख्य आह्वनीय देवता हैं। इस अध्याय के 20वें एवं 22वें मन्त्र[1] में राजा के द्वारा अपने राज्य की समृद्धि हेतु रुद्र देवता का आह्वान किया गया है और उनसे राज्य-समृद्धि में अवरोधक विभिन्न अनिष्टकारी शक्तियों के विनाश की प्रार्थना की गई है क्योंकि यजुर्वेद में रुद्र देवता वस्तुतः विघ्न-विनाशक देवता माने गए हैं।

**शत्रु नाशक एवं संग्रामविजयार्थ मन्त्र** : यजुर्वेद में वर्णित विभिन्न यागानुष्ठानों में अनेक ऐसे यजुष् मन्त्रों का प्रयोग हुआ है जो सर्वथा रणक्षेत्र में शत्रु विनाशक और संग्राम विजयार्थी प्रतीत होते हैं। यजुर्वेद के 11 से 18 अध्यायों में अग्नि चयन से लेकर वेदि निर्माण तक के विषय वर्णित हैं इन्हीं के मध्य में 13वें अध्याय में अग्नि देवता से सम्बन्धित 6 ऐसे मन्त्रों का उल्लेख है[2] जिनका प्रयोग रणक्षेत्र में शत्रुओं से घिर जाने अथवा पराजित होने की

---

1 नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमोः नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः। शुक्ल यजुर्वेद, 16.20
नमः उष्णीषिणे गिरि चराय कुलुञ्चानां पतये नमोनम इषुमद्भयोधन्नायिभ्यश्च वो नमोवाम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमोनम आयच्छद्भयोऽस्यद्भयश्च वो नमः। यजुर्वेद, 16.22

2. (क) कृणुष्व पाणः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँऽइभेन।
तृष्णीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥
तत्रैव, 13.9

(ख) तव भ्रमास आयुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः।
तपूँष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान सन्दितो विसृज विष्वगुल्काः॥
तत्रैव, 13.10

(ग) प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः।
यो नो दूरे अघशँसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्याधिरादधर्षीत्॥
तत्रैव, 13.11

(घ) उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँऽओषतात्तिग्महेते।
यो नो अरातिन समिधात चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं नशुष्कम्॥
तत्रैव, 13.12

दशा में किया जाता है। इन मन्त्रों में अग्नि देवता से सेना को अद्भुत बल एवं पराक्रम देने, शस्त्रों को आश्चर्यजनक शक्ति प्रदान कर उनकी सहायता से शत्रु सेना को सन्तप्त करने की और उन्हें पथ भ्रष्ट तथा कर्तव्यविहीन कर पराजित करने की प्रार्थना की गई है। क्योंकि अग्नि में शत्रुओं को दग्ध करने की अद्भुत क्षमता रखने वाली सर्वत्र व्यापनशील ज्वालाएँ उठती हैं जिनकी सहायता से कोई भी राजा रणक्षेत्र में सरलतापूर्वक विजय प्राप्त कर सकता है। 11वें अध्याय का 80वें मन्त्र[1] का प्रयोग ऐसे लोगों के विरुद्ध किया जाता है जो द्वेषवश किसी को हानि पहुँचाने की चेष्टा करते हैं।

**दुःस्वप्न निवारण** : यजुर्वेद के 35वें अध्याय का 11वाँ मन्त्र[2] सामान्यतया उन व्यक्तियों के लिए प्रयोजनीय है जिन्हें रात्रि में सोते समय भयानक स्वप्न आते हों। इसके अतिरिक्त इस मन्त्र का प्रयोग आभिचारिक प्रयोगों को दूर करने एवं मानसिक सन्ताप से मुक्ति पाने के लिए भी किया जा सकता है। दुःस्वप्न निवारणार्थ—जिस व्यक्ति को स्वप्न आते हों वह अपामार्ग की टहनी सिरहाने रखकर इस मन्त्र का 11 बार पाठ करके सो जाए। ऐसा करने से दुःस्वप्न आने समाप्त हो जाते हैं और गाढ़ निद्रा का आनन्द प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त किसी प्रकार का संकट उपस्थित होने पर, शत्रुओं, डाकुओं से घिर जाने पर हिंसक जीवों की आक्रामक स्थिति पर तत्काल रक्षा करने में समर्थ यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ करने मात्र से ही भय से त्राण मिलता है और पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होती है। ऐसी मान्यता इन मन्त्रों के सन्दर्भ में है।

---

(ङ) उर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदा विष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामि भजामि प्रमृणीहि शत्रून्।
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि॥ यजुर्वेद, 13.13

(च) अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्।
अपाँ रेताँसि जिन्वति इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि॥
तत्रैव, 13.14

1. यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु॥ तत्रैव, 11.80

2. अपाघमप किल्बिषमय कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यँ सुव॥ तत्रैव, 35.11

वेदों में विविध यागानुष्ठानों के अवसर पर यजमान के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मन्त्र पाठ का विधान तो है ही, साथ ही यज्ञ क्रिया के सम्पादन में सहायक और प्रयुक्त विविध प्रकार की सामग्री तथा पात्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान है, यथा—खदिर काष्ठ से निर्मित स्फय नामक दण्ड, जो तलवार की आकृति का होता है तथा जिसकी सहायता से यज्ञ में उपख (छिद्र) की मृत्तिका को खोदकर यज्ञशाला से बाहर फेंका जाता है। यज्ञ में इसकी परिकल्पना इन्द्र के वज्र सदृश की गई है। यजुर्वेद में अध्वर्यु इसी की सहायता से वैरी को मारता अथवा हानि पहुँचाता है। यजुर्वेद 1.26 के[1] अध्ययन से काष्ठ निर्मित स्फय (तलवार) के प्रयोग के विषय में कथित बात और अधिक स्पष्ट एवं दृढ़ होती है।

यज्ञ में दण्ड के प्रयोग के सम्बन्ध में ही कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में मैत्रावरुण पुरोहित हाथ में दण्ड धारण करके आग की ओर थोड़ा झुककर दैत्यों को पीटने के लिए तैयार खड़ा होता है।[2]

आभिचारिक दृष्टि से द्वितीय उल्लेखनीय पात्र स्रुवा पात्र है। यज्ञ में इसका प्रयोग होम के समय घृत डालने के लिए किया जाता है, परन्तु पात्र के सन्दर्भ में एक अवलोकनीय बात यह है कि यज्ञ में इसका प्रयोग करने के पूर्व इसे अग्नि में तपाया जाता है। सम्भवतः स्रुवा को अग्नि में तपाने का उद्देश्य यज्ञ सम्पादन में विघ्नकारी तत्वों का विनाश करना ही रहा होगा। यजुर्वेद 1.29 में[3] इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि—"इस स्रुवे को तपाने

1. अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याँ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्त- मतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं० मौक्॥
यजुर्वेद, 1.26

2. क्रीते सोमे मैत्रावरुणाय दण्डं प्रयच्छति मैत्रावरुणो हि पुरस्तादृत्विग्भ्यो वाचं विभजति तामृत्विजो यजमाने प्रतिष्ठापयन्ति स्वाहा यज्ञं मनसेत्याह मनसाहि पुरुषो यज्ञमभिगच्छति स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यामित्याह द्यावा- पृथिव्योर्हि यज्ञः स्वाहोरन्तरिक्षादित्याहान्तरिक्षे हि यज्ञः स्वाहा यज्ञं वातादारभ इत्याहायं॥ तैत्तिरीय संहिता, 6.1.4.2

3. प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः अनि- शितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि। प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः अनिशिताऽसि सपत्न- क्षिद्वाजिनी त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि॥ यजुर्वेद, 1.29

से विघ्नकारी तत्व दग्ध हो गए। शत्रुगण भी दग्ध हुए, राक्षस निःशेषेण जल गए और शत्रु भी जल गए। हे स्रुक। तुम घृतादि स्पर्श से सुचिक्कण हो और शत्रु विनाशक हो। अन्नादि युक्त राष्ट्र को और भी अन्नसम्पन्न बनाने के लिए तुझे धोता हूँ।"

यज्ञ में प्रयुक्त कृष्ण मृग-चर्म का भी विशिष्ट प्रयोजन होता है। यज्ञ-स्थान में कृष्गाजिन को बिछाने के पूर्व झटका जाता है। यह क्रिया सम्भवत: बुराइयों तथा दुष्ट प्रकृति के राक्षसों को दूर भगाने के निमित की जाती है क्योंकि वेदों में कृष्णाजिन को सर्व रोग विघातक तत्व तथा शत्रु और विरोधियों को परा भूत करने वाला माना गया है।[1]

## अथर्ववेद संहिता में अभिचारपरक अंश

अभिचार की दृष्टि से अथर्ववेद के सूक्तों का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

### राक्षसों, आभिचारिकों एवं शत्रुओं के प्रतिकूल अभिचार

अथर्ववेद में अभिचार सूक्तों का वह वर्ग जिसमें दानवीय कोटि की घातक शक्ति विद्यमान है, चातनगण के नाम से प्रचलित है। चातन नाम के एक ऋषि थे। उन्होंने भूत-प्रेत, पिशाच, दैत्य दानव, राक्षस और घोर शत्रुओं द्वारा दी जाने वाली पीड़ाओं से बचने के लिए तथा क्रूरकर्मा शत्रुओं एवं राक्षसों के विनाशार्थ अथर्ववेद के जिन मन्त्रों से रक्षोहन प्रयोग किए थे उन सभी ऋचाओं और अनुवाकों को एक समूह में संगृहीत कर उसका नाम चातनगण रख दिया गया। अब हम क्रमश: 'चातन गण' वर्ग में परिगणित सूक्तों और उनके प्रयोजन पर दृष्टिपात करेंगे।

सर्वप्रथम चातनगण में परिगणित अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के 7वें और 8वें सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग जनपीड़क राक्षसों अर्थात् यातुधानों के विनाश के लिए किया गया है। इन मन्त्रों के प्रयोग से दूसरों को पीड़ित करने वाला राक्षस

---

1. शर्मास्तिवधूतँ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिव: स्कम्भनीरसिधिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु। शुक्ल यजुर्वेद, 1.19

त्रस्त होकर स्वयं ही सामने प्रकट हो जाता है। 8वें सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग क्रमशः जादू-टोना करके दूसरे को पीड़ित करने वाले स्त्री-पुरुष के लिए किया गया है। इसी काण्ड के 16 और 19 सूक्त सपत्न और असपत्न दोनों ही कोटि के शत्रुओं के विनाशक बताए गए हैं। 19वें सूक्त के अन्तिम मन्त्र में मन्त्र बल को आन्तरिक कवच के रूप में स्वीकार किया गया है जिससे शत्रुकृत शाप-निग्रहादि मन्त्रबल से पराभूत होकर अभिचारित व्यक्ति हर कोई प्रतिकूल प्रभाव न डाल सकें।[1]

जनपीड़क दुष्ट शक्तियों और राक्षसियों के विनाश के लिए ही प्रथम काण्ड के 28वें सूक्त के तीन मन्त्र[2] सफल बताए गए हैं। अथर्ववेद में स्त्री दानवों अर्थात् राक्षसियों की एक बड़ी संख्या को, जिनके व्यक्तिगत नाम संदिग्धार्थक हैं और जो मनुष्यों, पशुओं एवं गृहों की विद्वेषिणी हैं उन्हें द्वितीय काण्ड के तीन सूक्तों 14, 18 और 25 की सहायता से कीलने का विधान है।[3] इसी काण्ड का 24वाँ सूक्त तथा चतुर्थ काण्ड के दो सूक्त 36 और 37 क्रमशः भूत-प्रेत बाधा रक्षार्थक तथा भूत-प्रेतादिकृत उपद्रवों की शान्ति हेतु

---

1. यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम्॥ अथर्व०, 1 19.4
2. प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्य: ॥ तत्रैव, 28.2
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा॥ तत्रैव, 1.28.3
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो३विघ्नता यातुधान्योइ वितृह्यन्तामशय्य।॥
तत्रैव, 1.28.4
3. निः सालां धृष्णुं धिषणमेक वाद्यां जिघत्स्वम्। तत्रैव, 2.14.1
भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्य चातनं मे दाः स्वाहा। तत्रैव, 2.18.1
सपत्नक्षयणमसि सपत्न चातनं मे दाः स्वाहा। तत्रैव, 2.18.2
अरायक्षयणमस्यराय चातनं मे दाः स्वाहा। तत्रैव, 2.18.3
पिशाचक्षयणमसि पिशाच चातनं मे दाः स्वाहा। तत्रैव, 2.18.4
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वा चातनं मे दाः स्वाहा। तत्रैव, 2.18.5
शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः। तत्रैव, 2.25.1
उग्रा हि कण्व जम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम॥ (द्रष्टव्य 2-25.1-5)

प्रयोजनीय हैं।[1]

अथर्ववेद में शत्रुकृत अभिचार-निवारण के लिए औषधियों का भी प्रयोग किया गया है। आभिचारिकों या शत्रुओं द्वारा किसी पर कृत्या आदि अभिचार कर्म किए जाने पर संदपुष्पा के पौधों से किए जाने वाले प्रयोग अमोघ सिद्ध हैं।[2]

चतुर्थ काण्ड के 40वें सूक्त के शत्रु द्वारा अभिचारार्थ यज्ञ में दी गई आहुतियों के प्रतीकार्थ अनुष्ठानिक मन्त्रों का संकलन है जिनकी सहायता से शत्रुकृत अभिचार उल्टे अभिचारकर्ता के ऊपर ही प्रतिफलित होता है।[3] इसके अतिरिक्त षष्ठम काण्ड के 32 और 34 सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग भी यातुधानों, पिशाचों और अनिष्टकारक शक्तियों से रक्षार्थ किया जाता है।[4]

उपर्युक्त चातनगण के सूक्तों को प्रयोग में लाने के लिए उनके मन्त्रों को विनियोग पूर्वक पढ़ते हुए तीन दिन तक पीड़ित व्यक्ति को गरुण पंख अथवा मोर पंख से झाड़ते रहना चाहिए अथवा कुश—अपामार्ग से जलाभिषेचन करना चाहिए। तत्पश्चात् राल, गुग्गल, लोहबान, अपामार्ग, पिप्पली, पृश्निपर्णी सहदेवी, अजाश्रंगी, मयूरपखी, शिव लिङ्गी के बीजों की हवन सामग्री एकत्रित कर, गूलर, पीपल अथवा वट में से किसी एक वृक्ष की लकड़ियों की समिधा से हवन करने के बाद सदाबहार के फूलों को अथर्ववेद के अष्टम काण्ड के चौथे सूक्त से अभिमन्त्रित कर दाहिनी भुजा में ताबीज में भरकर पहनना चाहिए। चातन गण कर्म विधि के अन्तर्गत तृतीय काण्ड का 1 और 2 तथा काण्ड 8 का तृतीय सूक्त भी पठनीय है।

**कृत्या प्रतिहरणार्थ प्रयोग :** कृत्याएँ कई प्रकार की होती हैं—देवी, आसुरी, मानुषी, राजसी, कापालिकी आदि। कृत्या एक प्रकार का अभिचार कर्म है। स्त्रियों, नीचपुरुषों, राजाओं, ब्राह्मणों, कापालिकों, शाकिनी डाकिनी आदि द्वारा किए जाने वाले घातक मारण प्रयोगों को कृत्या कहा जाता है।

---

1. अथर्व०, 2.24 तथा 4.36,37 के समस्त मन्त्र
2. तत्रैव, 4.20
3. तत्रैव, 4.40
4. तत्रैव, 6.32.1-3; 6.34.1-5

मारण प्रयोगों का कृत्या नाम इसलिए पड़ा कि जिस पर यह प्रयोग किया जाता है उसकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर अथवा कागज या कपड़े पर आकृति बनाकर घातक मारण मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है अथवा खाद्य पदार्थों एवं वस्तुओं में मारण मन्त्र से अभिमन्त्रित कोई चीज मिलाकर खिला दी जाती है। कृत्या को देशी भाषा में 'मूंठ' मारना कहा जाता है। यह प्रयोग व्यक्ति विशेष पर किया जाता है अथवा सम्पूर्ण परिवार, घर, खेत आदि पर तथा उद्योग व्यवसाय, रोजगार पर किया जाता है। कृत्या प्रयोग की कई विधियाँ हैं, यथा—जिसे पीड़ित करना हो उसके वस्त्रों पर अथवा बालों पर, उसके खान-पान की चीजों पर यह विनाशकारी कृत्या प्रयोग किया जाता है। ग्राम के बाहर चौहट्ट (चौराहे) या घर के दरवाजे पर हड्डी, मांस गाड़कर या सात प्रकार के अनाज रखकर अथवा सिन्दूर, काजल से सज्जित आटे की बनी हुई मनुष्य की प्रतिकृति को चौराहे या दरवाजे पर रख दिया जाता है। अथर्ववेद में इन घातक कृत्या प्रयोगों से रक्षार्थ तथा कृत्या दोष को दूर करने के लिए अत्यन्त सफल विधान कहे गए हैं।

अथर्ववेद के नौ सूक्त कृत्या परिहरण के लिए प्रयोजनीय बताए गए हैं।[1] जिनमें क्रमश: प्रथम सूक्त में तिलक मणि को वज्ररूप और मारणादि प्रयोगों को उल्टा लौटाने वाला अभिमन्त्रित रक्षा सूत्र कहा गया है।[2] द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ सूक्त भूख मारने वाले, प्यास मारने वाले, शरीर को सुखाने वाले तथा पागल बना देने वाले जैसे कृत्याभिचार कर्मों के निवारणार्थ प्रयोजनीय हैं। पंचम और षष्ठम सूक्त कृत्या के प्रतिकार अर्थात् शत्रु प्रतिमारणार्थ प्रयोजनीय हैं। सप्तम और नवम सूक्त अन्य कृत्याओं के प्रत्यभिचरणार्थ हैं। अष्टम सूक्त का प्रयोग जलावषेचन के लिए किया जाता है क्योंकि अथर्ववेद में कृत्या दोष को दूर करने का सबसे सरल उपाय जलावषेचन और हवन बताया गया है।

उपर्युक्त अथर्ववेदीय नौ सूक्तों के मन्त्रों से कृत्यापीड़ित की शिर पर तीन दिन तक विनियोग पूर्वक जलावषेचन करने, पश्चात् इन्हीं सूक्तों से तीन दिन

---

1. अथर्व०, 2.11, 4.17, 4.18, 4.19, 5.14, 5.31, 7.65, 8.5, 10.1
2. स्रक्त्यो∫ऽसि प्रतिसरो∫ऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।

   आप्नुहि श्रेयां समति समं क्राम॥ तत्रैव, 2.11.2

तक विनियोग सहित हवन करने से भयंकर से भयंकर कृत्या दोष शान्त हो जाता है।

अथर्ववेद के अष्टम काण्ड के पंचम सूक्त से जलावषेचन एवं हवन करने के बाद रुद्राक्ष को किसी महीने की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी से लेकर पूर्णमासी तक तीन दिन तक उक्त सूक्त के मन्त्रों से गंगाजल और कुश से अभिमन्त्रित कर इन्हीं मन्त्रों से हवन करके हवनाग्नि में मणि (रुद्राक्ष) को धूपित करने के तत्पश्चात् ही निम्नाङ्कित अघोर मन्त्र[1] और महा संजीवन[2] मन्त्रों से 108 बार हवन कर, स्वर्ण तार अथवा लाल रेशमी डोरे में पिरोकर गले में या दाहिनी भुजा में धारण करने का विधान अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।

कृत्या दूषण परिहरण के उपर्युक्त नौ सूक्तों से यह ज्ञात होता है कि कृत्या एक प्रकार का यातु कर्म है। कृत्या का प्रयोग किसी को विक्षिप्त दीन-हीन या बेरोजगार बनाने, रोग-ग्रस्त होकर घुट-घुट कर मारने, शीघ्रातिशीघ्र मारने, समूल नष्ट होने आदि विविध[3] उद्देश्यों के लिए विविध विधियों से किया जाता है। अथर्ववेद 10.1-33 से यह स्पष्ट है कि कृत्या के प्रयोग स्त्री-पुरुष, राजा, ब्राह्मण और शूद्रजनों द्वारा किए जाते हैं। किसी के द्वारा किसी अन्य पर की गई कृत्या के निवारण के लिए जो उपाय किए जाते हैं उन्हें अथर्ववेद में प्रत्यभिचरण, प्रतिहरण, प्रतिसर, प्रत्यक् और प्रतीची कहा गया है।

अथर्ववेद (10.1.1)[4] में कृत्या के स्वरूप का जो वर्णन मिलता है उसमें 'कृत्या' शब्द के अर्थ से हाथों द्वारा बनाई जाने वाली 'कृति' का बोध होता है। इसी सूक्त की द्वितीय ऋचा[5] से यह ज्ञात होता है कि कृत्या शिर, नाक और कान

---

1. ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः शर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ अघोर मन्त्र
2. ॐ हौं जूं सः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात ॥ महासंजीवनी मन्त्र
3. शूद्रकृताराजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्धवृच्छतु ॥ अथर्व०, 10.1.3
4. यां कल्हयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
सारादेवत्वप नुदाम एनाम् ॥ तत्रैव, 10.1.1
5. शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सारादेवत्वप नुदाम एनाम् ॥ तत्रैव, 10.1.2

वाली एक आहुति प्रतिकृति होती है जिसे कुश (दर्भ) में रखकर खेत में, श्मशान भूमि में और घर की आग में फेंका जाता है। ऐसी कृत्या को इसी सूक्त के 18वें मन्त्र[1] द्वारा निवारण किया जाता है।

काण्ड पांच सूक्त 31 से विदित होता है कि कृत्या का निक्षेप, उसकी स्थापना मिट्टी की कच्ची हांडी में, सात प्रकार के अनाज में, कच्चे मांस में, आदमी की आकृति में (मिट्टी, कपड़ा अथवा कागज की बनी हुई) चलने वाले पदार्थों में, वाहनों में, सभा मण्डप में, जुएँ के पाँसों में, कौड़ी में, सेना, बाण में, दुन्दुभि में, कुएँ में, मनुष्य की हड्डी में और चिता भस्म में किया जाता है। कृत्या दोष निवारण के लिए जलावषेचन, होम के अतिरिक्त दशम काण्ड के प्रथम सूक्त के 32 मन्त्रों से पीली सरसों अभिमन्त्रित कर व्यक्ति के ऊपर या घर में, जहाँ भी कृत्या दोष हो, छिड़कने से कृत्या दोष दूर हो जाता है।

**वशीकरण प्रयोग** : अथर्ववेद में स्त्री कर्माणि के अन्तर्गत स्त्री-वशीकरण प्रयोग तथा सौमनस्य प्रकरण के अन्तर्गत उल्लिखित मन्त्रों द्वारा किसी भी मनुष्य के मन, चित्त और हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने के प्रयोग बताए गए हैं। आथर्वण तन्त्र के अनुसार स्त्रीवशीकरण के प्रयोग दो प्रकार के हैं—एक तो विवाह से लेकर गर्भधारण और प्रसव से सम्बद्ध, दूसरा सपत्नियों (सौतों) को वशीभूत करने अथवा नष्ट करने से सम्बन्धित। इस गण में स्त्रीवशीकरण सम्बन्धी ऐसे भी प्रयोग हैं जिनसे पुरुषों को नपुंसक और स्त्रियों को दुर्भगा बनाया जाता है।

जब पति-पत्नी में अथवा प्रेमी-प्रेमिका में परस्पर मन-मुटाव पैदा हो जाए अथवा किसी कारणवश स्त्री या पुरुष परस्पर घृणा करने लगें, तब परस्पर प्रेम भाव उत्पन्न करने वाले अभिचार कर्म में अथर्ववेद के षष्ठ काण्ड के 133वें सूक्त[2] से प्रयोग करना चाहिए। प्रयोग विधि के अनुसार उक्त सूक्त के मन्त्रों से अभिमन्त्रित माष (काले उड़द) को स्त्री उस पुरुष के आवागमन के मार्ग में बिखेर दें तो पुरुष का क्रोध, घृणा एवं ईर्ष्या भाव समाप्त हो जाता है और वह पत्नी या उस स्त्री के प्रति आकर्षित होकर उसे प्यार करने लगता है। ऐसी

---

1. यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः।
   अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम्॥
   अथर्व०, 10.1.18

2. तत्रैव, 6.133 समस्त मन्त्र

मान्यता इस रस सूक्त के विषय में है। इसी प्रकार की धारणा अथर्ववेद के उन छः सूक्तों[1] के विषय में भी है जिनका प्रयोग पुरुष अपनी पत्नी या प्रेमिका को अपने वश में करने के लिए किया करते हैं। पुरुष उपर्युक्त छह सूक्तों के मन्त्रों को पढ़ते हुए शमी वृक्ष की छाल, धनुष के बाण का टुकड़ा, तगर, अंजन और कुष्ठ (कूट) इन औषधियों को पीसकर स्त्री के शरीर पर छिड़क दे या किसी अंग में लगा दे तो वह स्त्री उस पुरुष पर पूर्ण आसक्त हो जाती है अथवा मात्र अथर्ववेद के 3.25 सूक्त के मन्त्रों से स्त्री के नाम और रूप के स्मरण पूर्वक पुरुष रात्रि 11 बजे के बाद उपर्युक्त सूक्त के मन्त्रों को पढ़ते हुए उस स्त्री के पुतले के हृदय में बाण चुभाए। बाण चुभाते समय निम्नाङ्कित मन्त्र[2] का उच्चारण करे। इस वशीकरण प्रयोग से स्त्री व्याकुल होकर प्रयोग कर्त्ता पुरुष से मिलने के लिए छटपटाने लगती है। इस प्रयोग में बाण काम का प्रतीक माना गया है और यह लाक्षणिक प्रयोग है। इस लाक्षणिक क्रिया से उस स्त्री के हृदय में उसका प्रेमी पुरुष प्रविष्ट हो जाता है। प्रयोग के पूर्व पुरुष को स्त्री के पुतले अथवा छाया चित्र में 'एतु प्राण:' 'एतु मन:' मन्त्रों द्वारा स्त्री के प्राणों और इन्द्रियों की प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिए।

अथर्ववेद में इसे 'यातुकर्म' कहा गया है। इस यातु कर्म के प्रयोग के बाद प्रयोगकर्ता पुरुष मित्र और वरुण देवताओं से[3] यह प्रार्थना करे कि "मेरी प्रेयसी के हृदय में मेरे प्रति जो घृणा एवं आक्रोश व्याप्त है, उसे घटाकर प्रेम और विनम्रता का भाव जगाएँ जिससे वह मेरी ओर आकृष्ट हो।"

चतुर्थ काण्ड का सूक्त 5 'स्वाप्न सूक्त' के नाम से जाना जाता है।[4] यह सूक्त भी यातुकर्म के लिए प्रयुक्त होता है। यदि दो व्यक्ति एक दूसरे को हृदय से चाहते हो, किन्तु प्रेमी प्रेमिका के निकट पहुँचने में सर्वथा असमर्थ हो, तो इस यातु क्रिया द्वारा वह सात परदों के भी भीतर रहने वाली अपनी प्रेमिका के पास बेखटके सरलता से पहुँच सकता है।

---

1. अथर्व०, 6.89, 102, 3.25, 6.39, 1.34, 2.30
2. उत्तदस्त्वोत् तुदतु मा धृथा: शयने स्वे।
   इषु: कामस्य या भीमा तथा विध्यामि त्वा हृदि ॥ तत्रैव, 3.25 के मन्त्र
3. तत्रैव, 3.4 के मन्त्रों से
4. तत्रैव, 4.5 के समस्त मन्त्र

'स्वापन सूक्त' के मन्त्रों के प्रयोग के लिए इस सूक्त के तीसरे मन्त्र से[1] जल को अभिमन्त्रित कर मन्त्र पढ़ते हुए उसको प्रेमिका के निवास पर छिड़कके से घर के अन्दर रहने वाले सभी प्राणी गहरी निद्रा में सो जाते हैं और सूक्त के छठे मन्त्र[2] से अभिमन्त्रित जल को गृह के मुख्य द्वार पर छिड़कने से घर हो बाहर रहने वाले पहरेदार, चौकीदार कुत्ते सभी गहरी नींद में लीनने जाते हैं।

इस यातु कर्म की सामान्य विधि के अनुसार प्रयोगकर्त्ता अर्धरात्रि में संकल्प करे कि प्रेयसी के घर के अन्दर और बाहर जो भी गतिशीलता चहल-पहल है, उसे मैं स्तम्भित करता हूं। जो कोई भी उस घर में गतिशील है, खड़ा है, बोल रहा है, उन सबको मैं निद्रा के द्वारा अचेतन अवस्था में करता हूँ ऐसा संकल्प कर के बाद में 'स्वाप्न सूक्त' का जप करे। तदनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्र[3] से निद्रा देवी से प्रार्थना करे कि—"हे निद्रा देवि ! तुम इन सबको तब तक अपने अधीन रखो जब तक सूर्योदय न हो जाए।"

विवाह के पश्चात् दाम्पत्य जीवन को सफल बनाने हेतु पुत्र प्राप्ति के लिए अथर्ववेद का 3.23 सूक्त, स्त्री को बाँझ बनाने हेतु 7.35 सूक्त, गर्भवती स्त्री के गर्भ को सुदृढ़ बनाने के लिए 6.16 सूक्त और सुख पूर्वक प्रसव के लिए 1.11 सूक्त अमोघ माने जाते हैं।

गर्भधारण करने के बाद कभी-कभी किसी रोग-दोष या अन्य कारणों से गर्भवती स्त्री का गर्भपात हो जाया करता है। अतः इस समस्या के निदान हेतु अथर्ववेद के 8.6 सूक्त में गर्भ रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है और औषधि सेवन का विधान बताया गया है। इस सूक्त में 26 मन्त्र हैं, किन्तु इस सूक्त के साथ 2.2 तथा 20.96 सूक्तों के मन्त्रों से भी प्रयोग करने पर रोग-दोष

---

1. प्रोष्ठे शयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ —अथर्व०, 4.5.3
2. स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः॥ तत्रैव, 4.5.6
3. स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं निष्वापया जनम्।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः॥
तत्रैव, 4.5.7

से होने वाला गर्भपात, भूत-प्रेत की बाधा से होने वाला गर्भपात निरुद्ध हो जाता है।

इसके अतिरिक्त सन्तानहीनता, वन्ध्यापन को भी दूर करने के लिए अभिमन्त्रित सरसों का प्रयोग किया जाता है। धर्म शास्त्रों में इसी प्रयोग को सीमन्तोन्नयन संस्कार कहा गया है। अथर्ववेद के भाष्यकार सायण ने अथर्ववेद के भाष्य 8.6.18 में[1] इस सूक्त की भूमिका में कौशिक सूत्र 35.20 के वचन उद्धृत करते हुए लिखा है कि गर्भिणी के हाथ में पीली और सफेद सरसों बाँधने से गर्भपात नहीं होता है, गर्भ पुष्ट होता है और पुत्र ही उत्पन्न होता है।

**उच्चाटन एवं दुर्भगाकरण के प्रयोग** : अथर्ववेद में स्त्री कर्माणि तथा सौमनस्य गण के अन्तर्गत ही उच्चाटन एवं दुर्भगाकरण के प्रयोग द्रष्टव्य हैं। अथर्ववेद के पाँच सूक्त[2] सपत्नियों के मानसिक उच्छेदन के लिए एवं सौभाग्य-शालिनी स्त्री को दुर्भाग्यशाली बनाने के लिए प्रयोजनीय हैं।

इनमें से सौतों को वशवर्ती बनाने के लिए तृतीय काण्ड का 18वाँ सूक्त प्रयोग किया जाता है। सौत के प्रति आकृष्ट पति को भी अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए इसी सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इस सूक्त में कुल छः मन्त्र हैं।[3] इनमें से प्रथम मन्त्र को पढ़ते हुए वनिता औषधि को उखाड़कर उसे पवित्र स्थान में इसी सूक्त के समस्त छः मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके, सौत या पति जिसे वशीभूत करना हो, उसकी शैय्या पर बिस्तर के नीचे रखते हुए इसी काण्ड के 18वें सूक्त के पंचम मन्त्र का उच्चारण करने से साधिका स्त्री की मनोकामना पूर्ण होती है।

---

1. यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते।
   पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम्॥ अथर्व०, 8.6.18
2. तत्रैव, 1.14, 3.18, 6.13, 7.90, 113 समस्त मन्त्र
3. इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम्।
   उत्तानपर्णे सुभगे देवश्रुते सहस्वति।
   नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ।
   उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः।
   अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः।
   अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम्। तत्रैव, 3.18.1-3.18.6

कौशिक सूत्र में इस वशीकरण की एक दूसरी प्रक्रिया भी बताई गई है जिसका समर्थन आचार्य सायण ने अथर्ववेद के भाष्य में किया है। कौशिक सूत्र के अनुसार जो स्त्री अपनी सौतों पर विजय प्राप्त करना चाहे और उसे तथा पति को वश में करना चाहे तो वह बाणपर्णी के पत्रों के चूर्ण को रक्त-वर्ण वाली बकरी के दूध से बने दधि के तोर (पानी) में मिलाकर अथर्ववेद के 3.18 सूक्त के द्वितीय एवं तृतीय मन्त्र से अभिमन्त्रित कर सौत के बिस्तर में छिड़क दे और जिस पात्र में चूर्ण और दधि तोर रखा था उस पर 'अभितेऽधां सहमानाम' पढ़कर फूंक दे और उस पात्र को सौत की चारपाई के नीचे रख दे। तत्पश्चात् 'उपतेऽधां सहीयसीम्' पढ़कर चारपाई के ऊपर बचा हुआ चूर्ण पात्र से लेकर छिड़क दे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयोग में सौत का पुतला, मिट्टी अथवा कपड़े का बनाकर उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते हुए उस पुतले के शिर पर लोहे की सलाई के बने बाण से छेदन किया जाता है।

इसी प्रकार प्रथम काण्ड के 14वें सूक्त के मन्त्रों के विषय में यह धारणा है कि इन मन्त्रों की सहायता से किसी भी सौभाग्यशाली स्त्री को दुर्भगा बनाया जा सकता है।[1] इस सूक्त में एक स्त्री को उसकी प्रतिस्पर्द्धिनी स्त्री अविवाहित रहने का शाप देती है जिसके फलस्वरूप वह स्त्री अपने जीवन में कभी भी पति का सत्संग नहीं प्राप्त करती है और आजीवन अपने पीहर में ही निवास करती है।

**पतिवेदनार्थ सूक्त** अथर्ववेद : के दो सूक्तों 2.26 तथा 6.60 का प्रयोग पतिवेदनार्थ किया जाता है।[2] 'पतिवेदन' का अर्थ है 'पति को प्राप्त करना'। जब किसी कन्या की योग्य अवस्था हो जाने पर भी विवाह नहीं होता तो उसे पति प्राप्त कराने के लिए अथर्ववेद के दो सूक्तों में यह मान्यता प्रकट की गई है कि उनका प्रयोग किए जाने पर उस कन्या को अवश्यमेव वर की प्राप्ति होती है। पतिवेदन सूक्तों का प्रयोग किए जाने के पूर्व कन्या को धान और काले तिल खिलाने के पश्चात् पति वेदन मन्त्रों से हवन कराना चाहिए। इसके अतिरिक्त

---

1. भगमस्या वर्च आधिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
   एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम।
   एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि।
   असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च। अथर्व०, 1.14.1-1.14.4
2. तत्रैव, 2.36, 6.60 समस्त मन्त्र

6.60 सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग करने पर प्रातःकाल कन्या के जागने से पूर्व कन्या का पिता अथवा आथर्वण व्यक्ति पतिवेदन मन्त्रों से घी द्वारा अग्नि में हवन करे और घर के चारों ओर दही और काले उड़द की काक बलि रख दे। इससे साधक का मनोरथ सिद्ध होता है।

**शत्रु-सेना सम्मोहन**—शत्रु-पक्ष में विद्वेषण उत्पन्न करने के लिए तथा शत्रु-बल को क्षीण एवं स्तम्भित करने के लिए और शत्रु के अस्त्र-शस्त्र को स्तम्भित कर शत्रु दल को सम्मोहित करने के लिए सम्मोहन प्रयोग किए जाते हैं।

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के दो सूक्त 31 तथा 3.2[1] शत्रु-सेना सम्मोहन के लिए अमोघ सिद्ध हैं। प्रतिद्वन्द्वी, प्रतिपक्षी, प्रतिद्वेषी शत्रु तथा न्यायालय में प्रतिवादी या वादी, उसके वकील तथा न्यायाधीश को सम्मोहित कर अपने अनुकूल बनाने के लिए पीली सरसों में देशी खाँड़ मिलाकर तृतीय काण्ड के प्रथम सूक्त से उच्चाटन कीलन, विद्वेषण, सम्मोहन, वशीकरण आदि में से अभीष्ट प्रयोजन का विनियोग करते हुए सरसों को अभिमन्त्रित कर अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रयोग करने से पूर्व रात्रि में 21 बार चारों दिशाओं में छोड़े, फिर चौराहे पर सरसों रख दिए जाएँ।

---

1. अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमित्रसेनां मघवन्नस्मान् छत्रूयतीमभि।
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्रते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्।
इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा। अथर्व०, 3.1.1-1.3.6
अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि।
इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर।
व्या|कूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत।
अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तत्रैव, 3.2.1-3.2 6

न्यायालयी मामले में मुकदमें की सुनवाई की तारीख से एक दिन पूर्व रात्रि में उपर्युक्त प्रयोग करके, दूसरे दिन न्यायालय में जाकर सरसों को न्यायालय परिसर में बिखेर कर, दाहिने पैर का अँगूठा जमीन पर गड़ाकर दृढ़तापूर्वक खड़े रहने पर विजय होती है। कौशिक सूत्रकार ने इन सूक्तों का विनियोग केवल शत्रु-सेना के सम्मोहन में किया है। कौशिक सूत्रानुसार इन सूक्तों से चरु होम करके वहाँ अभिमन्त्रित 21 शर्करायें (पत्थर की छोटी-छोटी कंकरे) एक छाज में लेकर उन्हें शत्रु-सेना की ओर मुख करके पछोड़ डालें। इस क्रिया के मान्त्रिक प्रभाव से शत्रु-सेना लक्ष्य भ्रष्ट होकर एवं किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर शक्ति हीन एवं पराजित होती है।

**संग्राम में विजयार्थ अनुष्ठान**—रणक्षेत्र में निश्चित विजय हेतु तथा विरोधी शत्रु की बलशाली सेना से स्वसेना में व्याप्त भय से मुक्ति हेतु अथर्ववेद में विभिन्न सूक्तों का वर्णन हुआ है। इनमें तृतीय काण्ड के 19वें सूक्त तथा पंचम काण्ड के 20वें सूक्त का प्रयोग संग्राम में विजयार्थ किया गया है। कौशिश सूत्र में लिखा है कि तृतीय काण्ड के 19वें सूक्त के मन्त्रों से[1] आज्य होम आदि करके उसकी राख से अभिमन्त्रित धनुष से युद्ध करने पर शत्रु की सेना परास्त होती है और विजयाभिलाषी राजा की मनोकामना पूर्ण होती है। पंचम काण्ड के 20वें सूक्त के प्रयोग के लिए विनियोगपूर्वक सूक्त के मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए दोनों हाथ ऊपर तानकर सूर्य की ओर देखते हुए तीन दिन तक नित्य उपस्थान करने से शत्रुओं का दमन होता है। इसी सूक्त के मन्त्रों से अभिमन्त्रित पीली सरसों को पास में रखने से हर प्रकार के संकटों, दुर्घटनाओं, आपत्तियों-विपत्तियों से रक्षा होती है। शत्रुओं, डाकुओं,

---

1. संशितं म इन्द्रं ब्रह्म संशितं वीर्यं १ बलम्।
   समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजोवीर्यं १ बलम्।
   नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्।
   तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
   एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।
   उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः।
   प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
   अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। अथर्व०, 3.19.1-3.19.8

हिंसक जीवों से घिर जाने पर अभिमन्त्रित सरसों उन पर फेंकने से आत्मरक्षा होती है और संग्राम में विजय होती है।

तृतीय काण्ड का 26वाँ सूक्त संग्राम में शत्रु सेना द्वारा उत्पन्न भय एवं सर्पादि के भय को दूर करने में सक्षम है। उपर्युक्त सूक्त से अभिमन्त्रित अपामार्ग का प्रयोग करने से विभिन्न प्रकार के भय से मुक्ति मिलती है।[1]

**रोगनाशक मन्त्र**- अथर्ववेद में अनेक ऐसे मन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं जो विभिन्न प्रकार के रोगों के विनाशक हैं। इन मन्त्रों के द्वारा सभी प्रकार के साध्य एवं असाध्य रोगों की चिकित्सा सम्भव मानी जाती थी। यद्यपि आज के युग में कोई भी रोग असाध्य नहीं है, फिर भी वैदिक युग में इस प्रकार के मन्त्रों की उपलब्धि इस बात की ओर संकेत करती है कि उस समय विज्ञान ने आज की भाँति उन्नति नहीं की होगी। असाध्य रोगों के अन्तर्गत उस समय कुष्ट रोग, वृण, अतिसार, छूत के रोग, क्षय रोग और अपस्मार आदि की गणना की जाती थी। लेकिन वैदिक मन्त्रों द्वारा इन सभी रोगों की चिकित्सा संभव मानी जाती थी। यथा—अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के दो सूक्तों[2] से कुष्ट जैसे असाध्य रोग का उपचार सम्भाव्य माना गया है। कौशिक सूत्र 26.22 में इसकी चिकित्सा विधि इस प्रकार बताई गई है—"श्वेत-कुष्ट, फूलबहरी आदि की चिकित्सा के लिए उपर्युक्त दोनों सूक्तों के मन्त्रों से भंगरा, हरिद्रा, इन्द्र वारुणी और नीलिका को पीसकर लेप बनावे और सूखे गोबर से खून दिखाई देने तक त्वचा को घिसे, पश्चात् औषधि लेप करके आज्य होम करने से इस रोग से मुक्ति मिल सकती है।

---

1. नक्तं जातास्योषधे रामेकृष्णे असिक्नि च।
   किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
   असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
   अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य चयत् त्वचि। अथर्व०, 1.23.1-1.23.4

2. सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ।
   आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलास भेषजमिदं किलासनाशनम्।
   सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता।
   श्यामा सरूपङ्करणी पृथिव्या अध्युद् भृता। तत्रैव, 1.24.1-1.24.4

द्वितीय काण्ड का तृतीय सूक्त अतिसार तथा व्रणादि (कैंसर) जैसे असाध्य रोगों की निष्क्रियता के लिए प्रयोजनीय बताया गया है। जबड़े के रोग, मृगी आदि रोग, शारीरिक टूटन, कृत्या जन्य उपद्रव तथा शारीरिक जलन जैसे रोगों को दूर करने के लिए जंगिड मणि का प्रयोग भी उल्लेखनीय है।[1] इसी प्रकार 2.7 में दूर्वादि औषधि से निर्मित दर्भमणि का प्रयोग भी हिंसक शत्रु के द्वारा किए हुए अभिचार जन्य रोगों को शान्त करने में सक्षम माना गया है। द्वितीय काण्ड में ही 8वें सूक्त के मन्त्र क्षेत्रीय तथा क्षय आदि, कुष्टादि रोगों का निवारण करने के लिए प्रयोजनीय बताए गए हैं। क्षेत्रीय रोग से तात्पर्य उन रोगों से है—जो वंश परम्परा के कारण हो जाते हैं अथवा छूत का रोग अर्थात् एक दूसरे के शरीर या त्वचा स्पर्श से होने वाला रोग, किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित रोग, क्षय, कुष्ट, अपस्मारी आदि। क्षेत्रीय रोगी की चिकित्सा के लिए सर्वप्रथम रोगी को 'उदगातां'[2] तक्मन् नाशन गण के मन्त्र से घर के बाहर लाकर उषाकाल में उसे स्नान् कराने के पश्चात् 'बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य' इस तीसरी ऋचा[3] से अर्जुन काठ, जौ की भूसी, तिल पिञ्जिका, आकृति लोष्ट, वल्मीकि इन सबको भली-भाँति चूर्ण करके जीवित पशु के चर्माङ्क स्थलिका में डालकर सुई से उसे सिलकर रोगी के बाँधने का विधान कौशिक सूत्र में बताया गया है। प्रकारान्तर से क्षेत्रीय रोगी को हलयुक्त बैलों द्वारा शिर पर 'नमस्ते लाङ्गलेभ्य'[4] मन्त्र से जलपात्र से अवषेचन करके तथा शून्य घर में पुराने गर्त में घर के छप्पर की ओलनी के खरों (फूस) को डालकर उत्तर सम्पातों को 'नमः सनिस्रसा'[5] मन्त्र से लाकर रोगी को उस पुराने गर्त में खड़ा करके सम्पातोदक

---

1. जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात्।
मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः॥ अथर्व०, 2.4.2
2. उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम्॥ तत्रैव, 2.8.1
3. बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिल पिञ्जया।
वीरुत क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु॥ तत्रैव, 2 8.3
4. नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषा युगेभ्यः।
वीरुत् क्षेत्रिय नाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु॥ तत्रैव, 2.8.4
5. नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्ये[भ्य]ः।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रिय मुच्छतु॥ तत्रैव, 2.8.5

से आचमन कराके स्नान कराने से उसे विभिन्न क्षेत्रीय रोगों से निश्चय ही मुक्ति मिलती है, ऐसी मान्यता प्रकट की गई है। इसी काण्ड के नवम सूक्त के विषय में यह अवधारणा है कि इस तक्म नाशन गण 'दशवृक्ष:'[1] सूक्त से गूलर आदि दश शान्त वृक्षों के शकलों को लेकर लाख एवं स्वर्ण से वेष्टित मणि बनाकर दश मित्रों द्वारा मिलकर इस सूक्त का जप करने और पिशाच-गृहीत को अभिमर्शन करने से ब्रह्मराक्षस और पिशाची द्वारा गृहीत रोगी व्यक्ति को उनसे मुक्त कराया जा सकता है। कुष्ट, अपस्मार, मृगी आदि क्षेत्रीय व्याधियों की चिकित्सा के लिए मृगचर्म एवं मृग श्रंग का प्रयोग भी अथर्ववेद में बताया गया है। अथर्ववेद के तृतीय काण्ड का 7वाँ[2] सूक्त तक्म नाशन सूक्त है। इस सूक्त से हरिण के सींगमणि को बाँधने और प्रातःकाल मृगश्रंग विमिश्रित जल का पान करने से और रोगी पर अवषेचन करने से रोग शान्त हो जाते हैं, ऐसी लोक मान्यता है। द्वितीय काण्ड के 25वें सूक्त[3] में पृश्नि पर्णी औषधि को रक्षोग्रह का शमनार्थक बताया गया है। इस सूक्त से पृश्निपर्णी औषधि को पीसकर अभिमन्त्रित करके जापपूर्वक रोगी के शरीर पर लेप करने से रोगी को रक्षोग्रह से मुक्ति मिलती है। 33वाँ सूक्त शरीर के किसी भी अङ्ग में होने वाले यक्ष्मा रोग के निवारणार्थ प्रयोजनीय है। इस सूक्त 'अक्षीभ्यां ते०'[4] से जल पात्र को धोकर रोगी को गाँठों में बाँधकर पुनः इस सूक्त से जापपूर्वक रोगी को अवषेचन करने से यक्ष्मा रोग दूर होता है। अथर्ववेद के इस सूक्त के अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद से ग्रहण किये गए हैं। 'विष्कन्ध' या 'काबव' कहलाने वाले दानवों या रोगों को 39 सूक्त के मन्त्रों

---

1. दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
   अथो एवं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥ अथर्व०, 2.9.1

2. हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम ।
   स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥
   तत्रैव, 3.7.1 से सम्पूर्ण मन्त्र

3. शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
   उग्रा हि कण्व जम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥ तत्रैव, 2.25.1

4. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
   यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥
   तत्रैव, 2.33.1-2.33.7

में[1] विशिष्ट रक्षायन्त्रों द्वारा, जिन्हें कौशिक सूत्र में 'अरत्नुपोधे' का बना हुआ बताया गया है तथा जिन्हें भूरे रंग के धागे से बाँधा जाता है, कीला गया है।

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद का 4-6 सूक्त सर्प के काटने से शरीर में व्याप्त विषादि की मान्त्रिक एवं भैषज्य चिकित्सा के लिए प्रयोग करने पर अमोघ सिद्ध बताया गया है। इसी काण्ड के 38वें सूक्त के अन्तिम तीन मन्त्रों का विनियोग गो-पुष्टिकारक कर्म में किया गया है। पशुओं में व्याप्त रोगादि को दूर कर उन्हें हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए इन मन्त्रों से पशुओं को झाड़ना चाहिए—ऐसी मान्यता है। इससे पशु निरोग रहते हैं।[2] अथर्ववेद के अष्टम काण्ड में गर्भ सम्बन्धी रोगों की मान्त्रिक चिकित्सा हेतु औषधियों के प्रयोग बताए गए हैं। ऐसी औषधियों में एक औषधि 'बज' है।[3] आयुर्वेद में इसे काकजंघा कहते हैं। रविवार के दिन इस औषधि की लकड़ी लाकर गर्भवती की कमर में बांध देने से गर्भ को सताने वाले रोग एवं कीटाणु गर्भ पर प्रभावशाली नहीं हो पाते हैं। अतः ऐसा करने से गर्भपात नहीं होता है।

अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर विभिन्न व्याधियों के लिए अनेक देवताओं का आह्वान भी किया गया है, यथा, जीर्ण ज्वर, काले ज्वर को दूर करने के लिए अग्नि, सोम, आदित्य और वरुण देवताओं को बुलाया गया है।

---

1. कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः।। अथर्व०, 3.9.1 से अन्तिम मन्त्र तक

2. सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरिन्त।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्तसद्यः सर्वान् लोकान् पर्यति रक्षन्।।
स न ऐतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान्।।
तत्रैव, 4.38.5

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु।।
तत्रैव, 4.38.6

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः।
यथानाम व ईश्महे स्वाहा।। तत्रैव, 4.38.7

3. तत्रैव, 8.6.3

## अथर्ववेद में विभिन्न अभिचारों एवं रोगों के निवारणार्थ आग्नेयास्त्र तथा पाशुपतास्त्र सिद्धि

अथर्ववेद में रक्षोहण अनुवाक के अन्तर्गत पठित सूक्त 3.1, 3.2 और 3.8 चातनगण कर्म विधि के अतिरिक्त आग्नेयास्त्र और सम्मोहनास्त्र सिद्धि कर शत्रुओं को परास्त करने में तथा पिशाचों और पिशाचजन्य संकटों, पागलपन, हिस्टीरिया जैसे रोगों, विष दोषों के निवारणार्थ भी प्रयोग में लाये जाते हैं। आग्नेयास्त्र से मार्जन और हवन करके इसी से अभिमन्त्रित पीली सरसों को शत्रुओं, चोर, डाकुओं पर फेंकने से वे निरुपाय हो जाते हैं। सम्मोहन या वशीकरण के उद्देश्य से फेंके जाने पर वह व्यक्ति वशीभूत हो जाता है जिसके ऊपर सर्षप फेंके जाते हैं। किसी रोगी पर फेंकने से रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार पाशुपतास्त्र सिद्धि के लिए सर्वप्रथम विनियोग किया जाए, तत्पश्चात् कुश को कुश पर रखकर उस पर पाशुपतास्त्र का अनुमन्त्रण आह्वान कर प्राण-प्रतिष्ठा की जाए। तदनन्तर पाशुपतास्त्र को निम्नाङ्कित सूक्तों के मन्त्रों से[1] अभिमन्त्रित किया जाए। यही अभिमन्त्रित कुश पाशुपतास्त्र बन जाता है। फिर इसी से रोग-दोष, पाप-शाप, भय, बाधा निवारण के लिए गंगाजल से रोगी या दुःखी, पीड़ित व्यक्ति पर जलाभिषेचन की प्राथमिक क्रिया से ही अभीष्ट सिद्ध होता है।

यदि रोगी या पीड़ित व्यक्ति दूर हो अथवा किसी कारणवश प्रयोगकर्त्ता के निकट पहुँचने में असमर्थ हो, तो पाशुपत अस्त्र को जिन मन्त्रों से अभिमन्त्रित किया जाता है, उन्हीं मन्त्रों से पीली सरसों विनियोग पूर्वक अभिमन्त्रित कर दे दी जाए अथवा रोगी या पीड़ित व्यक्ति पर प्रक्षिप्त किए जाएं तो सभी रोग-दोष दूर होते हैं। इसी प्रकार प्रबल शत्रु पर विनियोग पूर्वक अभिमन्त्रित सरसों छोड़ देने से शत्रु स्वयं परास्त हो जाता है अथवा पीड़ित होता है।

**अभिचार के क्षेत्र में मणि-बन्धन प्रयोग :** अथर्ववेद में सभी प्रकार के रोग-दोष, भय, बाधा, आधि-व्याधि, संकट, संघर्ष, आपत्ति-विपत्ति, दुःख-दैन्य, अरिष्ट-अनिष्ट निवारण के लिए मणि-बन्धन के प्रयोग भी बताए गए हैं जो अभिचार एवं जीवन-रक्षा की दृष्टि से नितान्त उपयोगी एवं अमोघ हैं।

---

1. अथर्व०, 10.72, 73; 20.30.3.4; 20.31.1; 20.36.9; 6.134.3

अथर्ववेद में उल्लिखित मणियों के नाम इस प्रकार हैं—औदुम्बर मणि, जङ्गिड मणि, दर्भमणि, प्रतिसर मणि, तलाश मणि, फाल मणि, शतवार मणि, सपत्नक्षयण वरण मणि, अञ्जन मणि, हरिणमणि, अस्तृतमणि, अभीवर्तमणि, यवमणि, त्रिसन्ध्या मणि, अर्कमणि, आयमगनपर्ण मणि, शंखमणि, हिरण्यमणि, गोदामणि, वरण मणि, प्रतिसर-स्राक्त्यमणि।

उपर्युक्त सभी मणियों में प्रत्येक मणि को धारण करने का प्रयोजन तो अलग-अलग हो सकता है, किन्तु मणि धारण करने की विधि सामान्य है। कोई भी मणि हो, उसके सूक्त-मंत्रों से विनियोग, अभिमन्त्रण और हवन तीन दिन तक करने के बाद मणि धारण करनी चाहिए।

**वरण मणि :** अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 3 में वरण मणि का उल्लेख है जिसमें वरण मणि का परिचय देते हुए इस मणि के धारण करने से होने वाले लाभ विस्तार से वर्णित हैं।

विनियोग करके वरण मणि को ताम्रपात्र पर रखकर कुश-अपामार्ग से उस पर गंगा जल छिड़कते हुए 'सपत्नोक्षयणों मणि:' सूक्त के 25 मन्त्रों से अभिमन्त्रण कर इसी सूक्त के सम्पूर्ण मन्त्रों से हवन करने के बाद वरण वृक्ष के शाख-खण्ड (वरण मणि) को सोने, चांदी या तांबे की ताबीज में भरकर धारण करना चाहिए।

वरण मणि निम्नाङ्कित प्रयोजनों की सिद्धि के लिए धारण की जाती है—शत्रु बाधा, अभिचार, प्रयोग नाश के लिए, दु:ख-दारिद्रय, दैन्य, संकट, संघर्ष दूर करने के लिए दौर्भाग्य जनितारिष्ट निवारण के लिए, निर्ऋति (दुर्गति) नाश के लिए, वरुण पाश से मुक्ति हेतु तथा विभिन्न रोगों से मुक्ति के लिए। इसके अतिरिक्त पाप-शाप की निवृत्ति के लिए, विजय प्राप्ति के लिए भी इसको धारण किया जाता है।

**आञ्जन मणि :** आञ्जन एक औषधि है जो हिमालय तथा तराई क्षेत्र में उत्पन्न होती है और जन-साधारण में इसी नाम से पहचानी जाती है। इस औषधि से निर्मित मणि का उल्लेख अथर्ववेद काण्ड 4 सूक्त 9, काण्ड 7 सूक्त 11, काण्ड 12 सूक्त 1 के मन्त्र 30वें, काण्ड 19 सूक्त 44 तथा 45 में आया है जिसमें आञ्जन औषधि को दिव्य औषधि देव वन्दित औषधि

कहकर इसकी महिमा का विशद गुणगान किया गया है।

आञ्जन औषधि की मणि दुर्भाग्य, दुर्गति, संकट, संघर्ष के दूरीकरण के लिए, शत्रु-पराजय के लिए, रोग-निवारण के लिए, पाप-शाप, अरिष्ट तथा अनिष्ट निवारण के निमित्त प्रयोग में लाई जाती है।

**हरिण-मणि** : अथर्ववेद के 3.7 सूक्त में हरिण मणि का उल्लेख है। हरिण श्रृङ्ग से निर्मित मणि का प्रयोग गलसूये, गण्डमाला, क्षेत्रीय रोग, राज-यक्ष्मा तथा कुष्ट रोग आदि विभिन्न व्याधियों से मुक्ति पाने हेतु किया जाता है। यह मणि मृतवत्सा रोग, दोष, वन्ध्यात्व आदि का भी निवारण करती है। हरिणश्रृङ्ग की उपयोगिता ऋग्वेद में भी बताई गई है।[1] हरिणश्रृङ्ग मणि के प्रयोग दो प्रकार से किए जाते हैं—एक तो हरिणश्रृङ्ग को विनियोगपूर्वक अभिमन्त्रित कर हवन करके रख दिया जाता है और उसको जल में घिसकर रोग पीड़ित स्थान पर लेप किया जाता है। दूसरा यह कि हरिण श्रृङ्ग का छोटा टुकड़ा अभिमन्त्रित करके ताँबे की ताबीज में बन्द करके भुजा में बांधा जाता है जिससे विभिन्न रोगों से मुक्ति तथा मृतवत्सा दोष, बन्ध्यात्व दोष, गर्भ स्राव आदि दूर होते हैं।

**जङ्गिडमणि** : अथर्ववेद (2.4; 19.34-35) में जङ्गिडमणि का परिचय पहचान, गुण धर्म और महत्व बताया गया है। 'जङ्गिड' नाम अर्जुन वृक्ष का है।

जङ्गिडमणि बाँधने से हर प्रकार के कृत्यादोष, हर प्रकार के अभिचार कर्म-जन्य दोष, रोग, भय: बाधाएं दूर होती हैं। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय तथा कीटाणु जन्य रोगदोष तथा दैवी आसुरी एवं मानवीय कोप, सन्ताप, संत्रास का भी निवारण होता है। मणि बांधने से शत्रु पर विजय प्राप्त होती है।

इस मणि को सन (सनई), पटसन-जूट के धागे में पिरोकर रोग-दोष निवारण के लिए गले में पहनना चाहिए। संग्राम, संघर्ष, मुकदमे के मामले में शत्रु पर विजयार्थ दाहिनी भुजा में बाँधना चाहिए।

**औदुम्बर मणि** : अथर्ववेद (19-31) में इस मणि का वर्णन है। महाराष्ट्र

---

1. ऋग्वेद, 1.23.20

में औदुम्बर (गूलर) वृक्ष को 'दत्तात्रेय' तथा कहीं-कहीं 'ऊमर' कहा जाता है। गूलर वृक्ष की जड़ से निर्मित मणि को बांधने से समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का शमन, सन्तानहीनता दोष निवारण, संकटों से रक्षा तथा बन्ध्यात्व दोष एवं मृतापत्य दोषों का निवारण होता है।

**शतवार मणि** : अथर्ववेद 19.36 में शतवार मणि का परिचय दिया गया है। आयुर्वेदिक औषधि शतावर को अथर्ववेद में शतवार: कहा गया है। अथर्ववेद के अनुसार अतावर के अग्रभाग से भूत-प्रेत राक्षस आदि की बाधाएँ दूर होती हैं। इसकी जड़ से जादू टोना-टोटका और अभिचार कर्म जन्य बाधाएँ दूर होती हैं तथा जड़ के मध्य भाग से पूर्व जन्म कृत पापों और राजयक्ष्मा जैसी कर्मज व्याधियों का शमन होता है।

**दर्भ मणि** : अथर्ववेद के काण्ड 19 सूक्त 28, 29, 30, 32, 33 में दर्भ मणि का उल्लेख है। दर्भ कुश को कहते हैं। दर्भ मणि धारण करने से नैर्ऋति दोष, यम दोष, कृत्या दोष, अभिचार कर्म जन्य दोष तिरोहित होते हैं। इस मणि को गले में या भुजा में धारण करना चाहिए।

**प्रतिसर मणि** : अथर्ववेद 8.5 में प्रतिसर मणि के गुणधर्म की व्याख्या की गई है। इसे स्राक्त्यमणि के नाम से भी उक्त सूक्त में सम्बोधित किया गया है। यह मणि शारीरिक, मानसिक रोगों से मुक्ति हेतु, शत्रु पर विजय प्राप्ति हेतु, धन-धान्य-सन्तान सुख हेतु, भय से मुक्ति हेतु, शारीरिक एवं मानसिक बल की प्राप्ति हेतु प्रयोजनीय है।

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद 1.29 में राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए अभीवर्त मणि, 2.11 में अभिचार-निवारण हेतु तिलक मणि, 3.9 में अरलु मणि, 4.10 में शंख मणि, 10 6 में फाल मणि, 19.46 में अस्तृत मणियों का उल्लेख मिलता है।

**शकुन-अपशकुन, अद्भुत घटनाओं का विज्ञान** : अथर्ववेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णित शकुन-अपशकुन तथा अद्भुत घटनाओं का वर्गीकरण किया जाए तो यज्ञीय घटनाओं से सम्बन्धित शकुन, पक्षियों, पशुओं, दुःस्वप्नों, दुर्लक्षणों और अद्भुत घटनाओं से सम्बन्धित अपशकुन तथा भूमिगत अद्भुत घटनाएँ और आकाशगत अद्भुत घटनाएँ और उनके स्वरूप, भेद, फलाफल एवं प्रायश्चित विधान मिलते हैं।

अथर्ववेद में यज्ञशेष (यज्ञ से शेष बचा हुआ हविष्यान्न) तथा प्रणीता, प्रोक्षिणी, स्रुव आदि यज्ञीय उपकरणों में देव सम्पर्क माना गया है। अतः यज्ञीय उपकरणों का टूटना या क्षतिग्रस्त हो जाना अपशकुन माना गया है।

यान, आसन, छत्र, गृहध्वज, पताका तथा गृह के एक भाग का अकस्मात् टूटना, भंग होना, अद्‌भुत घटना के अन्तर्गत मान्य है, जिनके अशुभ फल निवारण के लिए प्रायश्चित्त विधान बताए गए हैं।

अथर्वपरिशिष्ट में दर्वी (करछुल) की डांडी का टूट जाना, घरेलू बरतनों, जल कलश, शैय्या आदि का अचानक टूट जाना अपशकुन माना गया है। हीरा, मोती तथा स्वर्ण का खो जाना, मूसल का अपने आप उछलना, पानी में आग लग जाना, अचल वस्तु का चलना आदि अस्वाभाविक घटनाओं को अथर्ववेद में अशुभ अपशकुन माना गया है जबकि पुरुष के द्वारा स्वर्ण निर्मित कुण्डल, अंगूठी अथवा मणि का धारण करना शुभ माना गया है परन्तु स्वप्न में स्वर्णाहार बनते देखना अपशकुन है। अग्नि के प्रवाहित रज ही रजत (चांदी) माने गए हैं, अतः उपहार में रजत देना अशुभ माना गया है।

अथर्ववेद (19.9.8) में भूमिगत अद्‌भुत घटनाओं का वर्णन है। भूमि का दग्ध होना किन्तु तृण काष्ठ एवं जल का न जलना मृत्युसूचक अपशकुन हैं। भूकम्प और ज्वालामुखी को अन्योन्याश्रित मानकर इन्हें अद्‌भुत कहा गया है। जल का स्थल और स्थल का जल बन जाना जैसी अद्‌भुत घटना भी अपशकुन सूचक है।

असम्भव घटनाएँ घटित होना, राजकुल में विवाद उत्पन्न होना, महामारी फैलना आदि राष्ट्र के लिए अपशकुन सूचक हैं। परिवार के आपसी कलह, घर में मांस गिरना, ये निर्ऋति दोष से उत्पन्न अपशकुन हैं।

काक-मैथुन दिखाई देना, दिन में सियारिन का रोना, गर्दभ, उष्ट्र, वन्य मृग, काक, उलूक, कपोत, श्येन का चिल्लाना ये सब अपशकुन कारक हैं। गाय के थन से दूध के स्थान पर रक्त निकलना, बैल से बैल की अथवा गाय से गाय की संभोग चेष्टा, खेतों में चूहों व टिड्डियों के आक्रमण, गौओं से महिषी अथवा मनुष्य उत्पन्न होना, देव प्रतिमाओं का हँसना, उनकी आँखों से आँसू निकलना देवमन्दिर का काँपना आदि घटनाएं अमंगलसूचक हैं। आकाश का रंग मजीठ की तरह लाल हो जाना, दिशाएँ जलती हुई सी दिखाई देना,

निरभ्र आकाश से जल की बूँदें गिरना, सूर्य-चन्द्र ग्रहण, पुच्छल तारा का उदय, सूर्य के चारों ओर लाल रंग का घेरा, मेघरहित आकाश में बिजली चमकना, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, तुषारपात, व्रात्या चक्र, बादलों में इन्द्रधनुष दिखाई पड़ना आदि अपशकुनसूचक हैं।

अथर्ववेद 1.4.1 में कहा गया है कि बादल घिरे होने पर, आँधी चलने पर वृक्षों के नीचे नहीं रहना चाहिए। झंझावात अशुभसूचक होता है।

अथर्ववेद 6.68.1 में उल्कापात को एक दुर्निमित्त माना गया है। तीव्र प्रकाशमान उल्कापात से राष्ट्र-राज्य नष्ट होते हैं। अथर्व परिशिष्ट में जन्म नक्षत्र में उल्का का निर्घात अपशकुन माना गया है। दिन में उल्कापात होना अनावृष्टि का सूचक है। धूमकेतुओं द्वारा सप्तर्षिमण्डल का प्रकाश छिपा लेना और सप्तर्षि नक्षत्र मण्डल को तपाना अपशकुन है।

विश्व धर्म, संस्कृति और साहित्य में शकुन किसी भी उदात्त और उन्नत दैवी-धर्म में अनिवार्य रूप से मिलते हैं। इसीलिए शकुन-अपशकुन सम्बन्धी परम्पराओं का प्रादुर्भाव दैवी भावना का अनिवार्य अंश बन गया है। अदृश्य दैवी शक्तियों तथा मानव के बीच ताल-मेल बैठाने का कार्य शकुनों की सांकेतिक प्रणाली से होता रहा है। इससे स्पष्ट है कि उन्नत और उदात्त धर्मों में शाकुनिक-परम्पराओं का महत्वपूर्ण स्थान प्रारम्भ से रहा है।

चतुर्थ अध्याय

# ब्राह्मण-ग्रंथों में अभिचारपरक अंश

ब्राह्मण-ग्रंथों का प्रधान विषय यज्ञ-यागों का प्रतिपादन तथा उनकी विधियों की उहा एवं व्याख्या करना है क्योंकि वैदिक धर्म का स्वरूप मूलतः यज्ञ तथा यज्ञीय विधि में ही निहित है। वैदिक साहित्यान्तर्गत ब्राह्मण-ग्रन्थों पर गहराई से दृष्टिपात करने पर यह विदित होता है कि विभिन्न संहिताओं से सम्बन्धित ब्राह्मण-ग्रन्थों में विविध यज्ञ और यज्ञीय विधियों एवं उनके उद्देश्यों का वर्णन हुआ है जिनके मध्य में स्थलों पर सामान्य जन-जीवन को प्रभावित करने वाले तथ्यों का उल्लेख भी प्राप्त होता है जिनके वशीभूत होकर मानव को अनेक अनुष्ठानों को करने के लिए बाध्य भी होना पड़ता है क्योंकि ब्राह्मण-ग्रन्थों का प्रधान विषय ही कर्मकाण्ड की व्याख्या करना है। इन ब्राह्मण-ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर आभिचारिक प्रयोग भी आये हैं जिन पर अब हम क्रमशः दृष्टि डालेंगे।

(1) **ऐतरेय ब्राह्मण में आभिचारिक : अंश** क्योंकि ऋग्वेद की ऋचाओं में देवस्तुतियों की प्रधानता है अतः इससे सम्बन्धित ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण-ग्रन्थों में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए किस प्रकार का कौन सा यज्ञ सम्पादित करना चाहिए इसी विषय पर विचार किया गया है। इन ग्रन्थों में कुछ स्थलों पर ऐसे कृत्य भी बतलाए गए हैं जिनकी सहायता से मनुष्य की अभीप्सित कामनाओं की पूर्ति भी होती है अतः ऐसे कृत्यों को हम साधारण आभिचारिक-क्रिया की संज्ञा भी दे सकते हैं। एक विशेष प्रकार का पेय जिसमें गौ के अवयव मिले रहते हैं, समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करता है। राजा तथा पुरोहित का, वर एवं वधू का सामान्य भोजन यह प्रकट करता है कि इससे तात्विक ऐक्य पैदा हो जाता है। यह अनुमान किया जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित तानूनप्त्र कृत्य मूलतः इसी प्रकार का था।[1] यद्यपि इसमें अब सामान्य का भोजन लुप्त हो चुका है फिर

---

1. ऐत० ब्रा०, 1.4

भी इसके पृष्ठ में यह विचार कार्य करता रहा होगा कि जो सामान्य भोजन द्वारा अपने से मिले हुए को हानि पहुँचाता है, स्वयं अपने आपको भी हानि पहुँचाता है। सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए लेप का प्रयोग आमतौर से बताया गया है। इसलिए राजा तथा यजमान पर क्रमश: राज्याभिषेक एवं सौत्रामणी के अवसर पर औपचारिक रूप से लेप का विधान है। राज्याभिषेक के अवसर पर ही राजा के लिए अरिष्टों पर विजय पाने का जो विधान है वह सम्भवत: आभिचारिक ही प्रतीत होता है क्योंकि इस आभिचारिक अनुष्ठान के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने शत्रुओं से मुक्ति पा सकता है।

कुछ विशेष परिस्थितियों में उस प्रभाव को, जिसे किसी आभिचारिक साधन द्वारा उत्पन्न करना अभीष्ट होता है, प्रकृति की किसी चीज में अनुकरण द्वारा उत्पन्न करके पैदा किया जा सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित निष्केवल्य शस्त्र[1] के अन्तर्गत इसी प्रकार के आभिचारिक साधन द्वारा सेना को विजयी बनाने का वर्णन प्राप्त होता है—"यदि कोई चाहे कि उसकी सेना विजयी हो तो एक तृण (अस्त्र) ले और शत्रु की ओर फेंक कर कहे—"प्रासहेकस्त्वा पश्यति" तुझे सेनापति देखता है तो वह सेना छिन्न-भिन्न हो जाएगी जैसे श्वसुर को देखते ही पुत्रवधू शरमा जाती है। इस कृत्य की पृष्ठभूमि में वस्तुतः यह विचार कार्य करता रहा होगा कि प्राचीन समय में पुत्रवधू अपने श्वसुर के समक्ष नहीं आती थी अथवा सामने आ जाने पर लज्जावश तत्काल सामने से हट जाती थी। इस आधार पर यहाँ शत्रु सेना को पुत्रवधू के रूप में मानकर और यह चर्चा करके कि श्वसुर उसे देख रहा है, विरोधी सेना को असमंजस में डालकर उसे भग्न करने का प्रयास किया गया है।

यहीं पर यज्ञ में विभिन्न अवसरों पर वैभव की भविष्यवाणी हेतु अथवा अन्य परिणामों के ज्ञान के लिए पशुओं का प्रयोग किया जाता था। इन पशुओं के शाकुनिक रूप की अपेक्षा यज्ञ के साथ रहने वाले इनके सम्बन्धों के कारण है। ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार की भविष्यवाणी के लिए घोड़े का प्रयोग किया गया है जहां लोकप्रिय अन्धविश्वास के कारण भाग्य का अनुमान घोड़े के हिनहिनाने से भी कर लिया जाता है।[2] जबकि अन्य ब्राह्मणों में पशु के गमन की दिशा ही सौभाग्य एवं दुर्भाग्य की निर्णायक होती है।

---

1. ऐत० ब्रा०, 3.2
2. तत्रैव, 2.15

(2) **तैत्तिरीय ब्राह्मण में अभिचारपरक अंश** : अभिचार कर्मों की दृष्टि से तैत्तिरीय ब्राह्मण का महत्वपूर्ण स्थान है। तैत्तिरीय ब्राह्मणगत याग-मीमांसा अत्यन्त व्यापक है। अन्य ब्राह्मणों में जहाँ सोमयागों का ही वर्चस्व है वहीं इस ब्राह्मण में इष्टियों, सोमयागों के साथ ही पशु-याग भी प्रभूत रूप से वर्णित हैं। नक्षत्रेष्टियों और नक्षत्रों से सम्बद्ध होम भी बहुल संख्या में मिलते हैं।

वस्तुतः वेदकालीन समाज में यज्ञ-यागों का सम्पादन मनुष्य अपनी रक्षा एवं अभीष्ट-सिद्धि के लिए ही करता था। उस समय कुछ यागों का सम्पादन आवश्यक भी माना जाता था और जिनके न करने से अथवा उनके सम्पादन में कोई त्रुटि हो जाने पर विभिन्न प्रकार से अनिष्ट होने की सम्भावना व्यक्त की गई है अतः उन त्रुटियों के प्रायश्चित स्वरूप, अभीष्ट सिद्धि की दृष्टि से तथा यागों की निर्विघ्न समाप्ति के उद्देश्य से यज्ञ-सम्पादन एवं होम की क्रियाओं के मध्य में विभिन्न आभिचारिक कृत्यों का भी समावेश हो गया है जिनका विवरण निम्नवत है :

तैत्तिरीय ब्राह्मण में विभिन्न प्रकार के होमों का विधान किया गया है जिसके लिए अधिश्रयणादिक हविः संस्कार बतलाये गए हैं। इनमें से आभि-चारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एक संस्कार है उत्तर दिशा में पृथक्कृत अंगारों पर स्थाली का रखा जाना। जिसमें यदि अज्ञानवश स्थाली अंगारों पर न रखकर सीधे वेद्यग्नि पर ही रख दी जाए तो होमकर्त्ता की पत्नी की मृत्यु की सम्भावना बढ़ जाती है। क्योंकि वेदिगत अग्नि रुद्र स्वरूप है और पत्नी स्थाली स्वरूप।[1]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में निरूपित वाजपेय याग[2] भी वस्तुतः स्वराज्य एवं सभा में ज्येष्ठता की प्राप्ति हेतु एक आभिचारिक याग ही प्रतीत होता है। जिसकी पुष्टि तैत्तिरीय ब्राह्मण में वाजपेय यागके सन्दर्भ में दी गई आख्यायिका से होती है। इस आख्यायिका के अनुसार 'देवों के मध्य पारस्परिक ज्येष्ठता सम्बन्धी प्रतियोगिता हुई। इसका निर्णय आजि-धावन के द्वारा हुआ, जिसमें विजय पाने के अनन्तर बृहस्पति ने सर्वप्रथम इसका अनुष्ठान किया, तत्पश्चात् उन्होंने

1. तै० ब्रा०, 2.1.3
2. तत्रैव, 1.3.2-9

इन्द्र से इसका अनुष्ठान कराया, जिससे उन्हें स्वराज्य और ज्येष्ठता प्राप्त हुई" इससे प्रकट होता हैं कि स्व राज्य-प्राप्ति ही इसका फल है।

अतः इस यज्ञ का सम्पादन किसी भी स्वराज्यकामी व्यक्ति के द्वारा किया जा सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय ही इस अनुष्ठान के योग्य हैं—स वा एष ब्राह्मणस्य चैव राजन्यस्य व यज्ञः।[1]

अश्वमेध याग भी वस्तुतः समृद्धि प्राप्ति के लिए एक आभिचारिक याग ही है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार इस याग का प्रयोजन है—समृद्धि और सभी प्राणियों का अभिभव—

"अश्वमेधः समृद्ध्यै। अश्वमेध याजी सर्वाणि भूतान्यभि भवति।[2]

इसके अनुष्ठान का अधिकारी सार्वभौम अथवा एकच्छत्राधिपति सम्राट को माना गया है। गौण रूप से अन्य छोटे राजा भी अधिकृत हैं। इसका नामान्तर है—'राजयज्ञ' ये ब्रह्महत्यादि महापातकों का नाशक है। इसकी मान्यता सर्वराजजयचिह्न—भूतरूप में है—सर्वस्याप्त्यै, सर्वस्य जित्यै, सर्वमेव तेनाप्नोति, सर्वं जयति।

बहुत से ग्राम्य और आरण्यक पशु इस याग के अंगभूत होते हैं जिनमें अश्व मुख्य रहता है। उसी अश्व से यह याग सम्पाद्य है, जिसके शरीर का पूर्वभाग कृष्णपर्ण एवं पश्चार्ध भाग श्वेत हो और ललाट में शकटाकार पुण्ड्र हो। इस याग का आरम्भ चित्रा नक्षत्र युक्त पौर्णमासी को 'सांग्रहणी' इष्टि के अनुष्ठान से होता है। वैशाखी को प्राजापत्य पशुयाग किया जाता है। इस यज्ञ में जलाशय के समीप मारे जाने वाले श्वान को शत्रु का प्रतीक माना गया है—'श्वेव वै पाप्मा भ्रातृव्यः। पाप्मानमेवास्य भ्रातृव्य हन्ति।'[3] अतः इस कुत्ते को मूसल से मारकर अश्व के नीचे फेंकना वस्तुतः शत्रु को मारना ही है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के सप्तम प्रपाठक में विभिन्न 'एकाह' संज्ञक सोमयाग

---

1. तै० ब्रा०, 1.3.2.1
2. तत्रैव, 3.8.3.5
3. तत्रैव, 3.8.4.1

वर्णित हैं जिनका अनुष्ठान एक ही दिन में हो जाता है। इन सभी 'एकाह' यागों को 'सव' नाम से अभिहित किया गया है। इनमें से केवल आभिचारिक विशेषताओं से लिप्त सवों का वर्णन ही यहां किया जायेगा।

**बृहस्पति सव** : यह एकाह याग पौरोहित्य की कामना करने वाले के लिए सम्पाद्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मणगत आरण्यायिका के अनुसार बृहस्पति ने पौरोहित्य की कामना से इस सव को प्रत्यक्ष किया था—"बृहस्पतिरकामयत् देवानां पुरोधां गच्छेयमिति। स एतं बृहस्पतिसवमपश्यत्।" इसके अनुष्ठान से उन्हें देवत्व-लाभ हुआ था। इसमें 'परिस्रजी' और विद्वान् होता होना चाहिए। उसके शरीर का रक्त वर्ण हो, बार-बार आँखों का उन्मीलन और निमीलन करने वाला हो। ऋत्विकों को इसमें दक्षिणास्-वरूप 33 गायें दी जाती हैं। याग के अनन्तर यजमान का कृष्णाजिन पर बैठाकर आज्य से अभिषेक किया जाता है। इसमें त्रिवृतस्तोम विहित है।

**वैश्य सव** : ये सव पुष्टि कामना से अनुष्ठेय हैं। इसमें सात हवियाँ होती हैं और आठवीं हवि के स्थान पर श्वेतवर्णीय चतुर्वर्षीय मादा पशु का विधान है। यजमान का अभिषेक दधि से वृषभ चर्म पर बैठाकर किया जाता है।

**गोसव** : यह कामनापूर्ति का याग है। स्वराज्य का इच्छुक व्यक्ति इसे करता है। इसमें षट्त्रिंश स्तोम विहित है। अयुत संख्यक गायों के दूध से अभिषेक का विधान है।

**ओदन सव** : यह अन्नाद्य-कामना से अनुष्ठेय है। इसमें सूर्योदय के अनन्तर ओदन से चार आहुतियां दी जाती हैं। यजमान को खाने के लिए सत्तू दिया जाता है। उसके हाथ में हिरण्य बांधा जाता है। इसमें यजमान का अवभृथ न होकर प्रोक्षण होता है। तदनन्तर वह रथारोहण करता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'दश होता' संज्ञक मन्त्र का भी विचित्र प्रयोग उल्लिखित है। इससे सम्बन्धित आख्यायिका के अनुसार प्रजापति ने सृष्टि कामना से इस मन्त्र का मानस पाठ करके दर्भस्तम्ब (होमाधार) पर आज्य होम किया। होमशक्ति से उनकी कामना पूर्ण हुई। अतः जिसे सृष्टि-कामना हो वह इस मन्त्र का मानस जाप करके उपर्युक्त प्रकार से होम करे।

इसके अतिरिक्त भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में विभिन्न होमों एवं उनके होतृ-

मन्त्रों से साध्य एक काम्य प्रयोग बतलाया गया है। सीता-सावित्री की आख्यायिका के माध्यम से अपने प्रिय पात्र को वश में करने हेतु यह प्रयोग है—

"स यः कामयेत् प्रियः स्यामिति । यं वा कामयेत प्रियः स्यादिति । तस्मा एतं स्थागस्मलंकारं कल्पयित्वा दशहोतारं पुरस्ताद् व्याख्याय ।"

(3) **शतपथ-ब्राह्मण में आभिचारिक स्थल** : वैदिक कर्मकाण्ड में इस सिद्धान्त को अपनाया गया है कि प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली शक्तियों को मनाना एवं राजी करना नितान्त आवश्यक है, फलतः यज्ञ में राक्षसों के लिए अन्नकण अर्पित करना एवं विभिन्न प्रकार की बलि देने की प्रथा प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त वैदिक यज्ञों में अनेक ऐसे कृत्यों का भी उल्लेख मिलता है, जो सम्भवतः मानव को किसी न किसी हानि अनिष्ट अथवा कष्ट से मुक्त रखने में समर्थ होते हैं। इन्हीं कृत्यों की शृंखला में यज्ञ में प्रयुक्त कृष्ण मृगचर्म को झटकने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है।[1] कृष्ण मृगचर्म को झाड़ने का कार्य सम्भवतः राक्षसों या शत्रुओं को दूर भगाने अथवा यज्ञ में बाधक अन्य दुष्ट शक्तियों को दूर भगाने के उद्देश्य से किया जाने वाला कार्य प्रतीत होता है। इसी प्रकार यज्ञ के अवसर पर पत्थरों को पीटना युद्ध में शत्रुओं को हानि पहुँचाते हुए विजय प्राप्त करने की ओर संकेत करता है।[2]

वैदिक कर्मकाण्ड के आभिचारिक कृत्यों में दण्ड प्रयोग का विशेष महत्व है। यज्ञ में स्फ्य नामक एक पात्र का प्रयोग होता है जो तलवार की आकृति में खदिर काष्ठ से निर्मित होता है। यज्ञ में इसकी परिकल्पना इन्द्र के वज्र के सदृश मानी गई है। अतः यज्ञ में अध्वर्यु द्वारा स्फ्य को ग्रहण करने का प्रयोजन पापी या बैरी को मारना अथवा हानि पहुँचाना होता है। इस स्फ्य का प्रयोग यज्ञ में वेदिस्थानीय भूमि को खोदने के लिए किया जाता है। वेदि-निर्माण के पश्चात् अध्वर्यु स्फ्य को उत्तर की ओर फेंकता है। यदि अभिचार के उद्देश्य से स्फ्य फेंका जाता है तो यह कहते हुए कि मैं......(अमुक) के लिए तुझ वज्र को फेंकता हूँ। इससे स्फय वज्र नाश करता है।[3] इसी प्रकार यज्ञ में स्रुवा

1. शत० ब्रा०, 1.1.4.4
2. तत्रैव, 1.1.4.17 [दर्श पौण मासइष्टि के अवसर पर]
3. तत्रैव, 1.2.5.22

पात्र को अग्नि में तपाने का उद्देश्य यजमान के शत्रुओं और राक्षसों को जलाकर उनका विध्वंस करना हो सकता है।[1]

शतपथ ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, पिण्डपितृ यज्ञ, आग्रयणेष्टि, दाक्षायण यज्ञ, चातुर्मास यज्ञों का वर्णन है। शत्रु के लिए किए जाने वाले यज्ञों में अग्न्याधान के विषय में शतपथ ब्राह्मण का मत है कि अग्नियों का आधान चित्रा नक्षत्र में करना चाहिए। अपने पक्ष के विषय में तर्क देते हुए शतपथ ब्राह्मणकार का कथन है कि एक बार देव और असुर अपनी श्रेष्ठता के लिए लड़ पड़े और दोनों ही द्युलोक में चढ़ने की इच्छा करने लगे। तब असुरों ने द्यौलोक में चढ़ने के लिए रौहिण अग्नि को प्रज्वलित किया तब इन्द्र घबराए कि यदि असुर इस अग्नि का आधान कर लेंगे तो हमें पराजित कर हमारा विनाश कर देगें। अतः वह ब्राह्मण वेष धारण कर एक ईंट लेकर वहाँ गए और अग्नि वेदि में ईंट रख दी। फिर कुछ समय पश्चात् उन्होंने उस ईंट को अपनी ईंट कहकर उसे खींच लिया जिससे अग्नि की वेदि गिर पड़ी और अग्नि के गिरने से असुर भी गिर पड़े तथा इन्द्र ने ईंटों को वज्र बना कर उनसे असुरों के गले काट लिए। इस प्रकार इन्द्र के द्वारा असुरों को मारना चित्र अर्थात् विचित्र बात हुई। यही चित्रा नक्षत्र की विचित्रता है। अत: इस नक्षत्र में अग्न्याधान कर यजमान अपने अहितकारी शत्रुओं का विनाश अवश्य ही करता है। शतपथ ब्राह्मणकार का मत है कि क्षत्रियों को तो अवश्य ही चित्रा नक्षत्र में अग्न्याधान करना चाहिए क्योंकि क्षत्रिय तो सदैव अपने शत्रु-नाश की कामना किया करता है।

अग्न्याधान के समय के विषय में कहा गया है कि जब सूर्य उत्तरायण हो तो अग्न्याधान करना चाहिए इससे यजमान दीर्घायु होता है। लेकिन दक्षिणायन सूर्य में अग्न्याधान करने से यजमान आयु से पूर्व मृत्यु को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार अपशकुन सम्बन्धी विचार पिण्ड पितृ यज्ञ के अवसर पर परिलक्षित होता है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जो व्यक्ति इस यज्ञ के नियमों का उल्लंघन करता है वह आवश्यकता से अधिक मोटा हो जाता है और पैर लड़खड़ाने के कारण वह चल नहीं सकता है।[2]

---

1. शत० ब्रा०, 1.3.1.5
2. तत्रैव, 2.4.26

शतपथ ब्राह्मण के तृतीय एवं चतुर्थ काण्ड में सोम याग का निरूपण है। सोमयाग के समय अध्वर्यु प्रोक्षणी-पात्र में जल लेकर यज्ञ-वेदि को मन्त्रोच्चार पूर्वक चतुर्दिशाओं से सिञ्चित करता है, पश्चात् प्रोक्षणी में अवशेष जल को वेदि के बाहर, उत्तर वेदि के दोनों कोनों में दक्षिणी कोने के पास मन्त्र पढ़ते हुए[1] फेंकता है। इसी जल का प्रयोग किसी शत्रु व्यक्ति के प्रति अभिचार के उद्देश्य से भी किया जा सकता है, यथा—यजमान अपने किसी शत्रु को शाप देना चाहे या उसे हानि पहुँचाना चाहे तो इतना कहे कि अमुक पुरुष के विरुद्ध मैं यह जल यज्ञ के बाहर निकालता हूँ। इस क्रिया से वह अपने शत्रु को शोक से बींधता है और शत्रु शोकाकुल होकर ही परलोक की ओर गमन करता है।[2]

शतपथ ब्राह्मण में अभिचार को वलग कहा गया है।[3] कृत्या शब्द का प्रयोग अभिचारीय टोने के रूप में किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार असुरों द्वारा किए गए अभिचार को देवों ने यज्ञ रूपी प्रति अभिचार से दूर किया। इसीलिए यज्ञ को सृष्टि विद्या का प्रकाशक मानने के साथ ही शत्रुओं के प्रति अभिचारीय कृत्य मानना भी सर्वथा उचित है। यज्ञ में हविर्धान को यज्ञ का सिर माना गया है जिसमें चार छिद्र (उपख) बनाए जाते हैं। देवताओं ने असुरों द्वारा इन लोकों में लगाई गई कृत्या एवं वलग को इन्हीं उपखों के माध्यम से खोदा था अतः यज्ञ में यजमान भी अपने किसी शत्रु द्वारा भूमि में छिपाई या गाड़ी गई कृत्या रूपी अभिचार को इन्हीं उपखों के माध्यम में उखाड़ फेंकता है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल[4] पर कहा गया है कि यदि वलग खोद दिए जाएँ तो उनका प्रभाव नहीं में रहता। अतः यहाँ मैं भी यदि शत्रु के द्वारा वलग गाड़ा गया होता है तो वह इन उपखों के माध्यम से उनको खोद डालता है। इसके लिए सर्वप्रथम यज्ञ में अभ्रि की सहायता से यज्ञ वेदि से एक प्रादेश छोड़कर एक रेखा खींची जानी चाहिए जिसका उद्देश्य यजमान द्वारा अपने शत्रुओं और विरोधियों की गर्दन काटना माना गया है। उसके पश्चात् उपख के चिह्न बनाने का विधान है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सर्वप्रथम यज्ञ के

---

1. इदमहं तप्तं वार्वहिधा यज्ञान्नि सृजाभि। यजु०, 5.11
2. शत० ब्रा०, 3.5.1.7
3. इदमहं ते वलगमुत्किरामि यन्मे निष्ठ्यो यममात्यो निचरणाम्। तत्रैव, 3.5.4.10
4. तत्रैव, 3.5.4.3

अग्रभाग में दांया फिर पृष्ठ भाग में बाँया और दांया उसके पश्चात् अग्रभाग में बाँया छिद्र (उपख) बनाना चाहिए।[1] इन चिह्नों को बनाने के क्रम से ही मन्त्रोच्चारण करते हुए खोदना चाहिए और उसी क्रम से उनकी मृत्तिका को मन्त्र पढ़ते हुए फेंकना चाहिए। सर्वप्रथम अमात्य के द्वारा की हुई कृत्या या वलग को दूर करने के लिए मन्त्र पढ़ता है।[2] तत् पश्चात् यजमान के किसी मित्र या शत्रु के द्वारा गाड़ी गई कृत्या को दूर करने के लिए निम्नाङ्कित मन्त्र का उच्चारण करते हुए मिट्टी खोदता है।[3] इसके पश्चात् यजमान के किसी सम्बन्धु और असबन्धु के द्वारा गाड़ी गई अथवा सजातीय और विजातीय के द्वारा छिपाई गई कृत्या को क्रमशः दो मन्त्रों[4] को पढ़कर दूर करता है। अन्त में उत्कृयाङ्किरामि' यह कहकर छिद्रों की शेष मृतिका को निकाल कर फेंकता है।

इस प्रकार यज्ञ में हविर्धान में बनाए गए उपखों के माध्यम से यजमान को पीड़ित करने के उद्देश्य से किसी के भी द्वारा छिपाई गई कृत्या या अभिचार को दूर किया जा सकता है।

शतपथ ब्राह्मण में त्र्यम्बक यज्ञ का उल्लेख आया है[5] जो साकमेध के अंग याग है। इस यज्ञ के विषय में वस्तुतः ऐसी मान्यता है कि जो व्यक्ति इस यज्ञ को विधिवत् सम्पन्न करता है वह सर्वथा रोग एवं शत्रु मुक्त श्रीयुक्त हो जाता है। शतपथ ब्राह्मण[6] के अनुसार अविवाहित स्त्रियों के द्वारा निम्नाङ्कित मंत्र पढ़ते हुए यज्ञ में परिक्रमा किए जाने पर उन्हें शीघ्र ही पति की प्राप्ति होती है क्योंकि रुद्र की बहन अम्बिका भाग्य की अधिष्ठात्री देवी हैं।[7] इस यज्ञ में जांघों को पीटते हुए मन्त्रोच्चारण कर वेदि की परिक्रमा का भी विधान

---

1. शत० ब्रा०, 3.5.4.6
1. इदमहं तं वलगमुत्किरामि यन्मे निष्ट्यो यममात्यो निचखान।
3. इदमहं तं वलगमुत्किरामि यन्मे समानो यमसमानो निचखान।
4. इदमहं तं वलगमुत्किरामि यन्मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखान।
   इदमहं तं वलगमुत्किरामि यन्मे सजातो यमसजातो निचखान।
5. शत० ब्रा०, 6.2.6.2
6. तत्रैव, 2.6.2.13-14
7. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
   उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥

है जिसके द्वारा यज्ञ कर्त्ता मृत्यु के मुख में प्रविष्ट हो जाने के बावजूद भी वापस लौट आता है।

इसी प्रकार आग्रयणेष्टि असुरों के कृत्य (टोने) से औषधियों (अन्नों) को विषमय होने से बचाने के लिए की जाती है। नवीन उत्पन्न अन्न द्वारा निर्मित पुरोडाश एवं चरु द्रव्यों द्वारा शरद एवं वसन्त ऋतु में की जाने वाली इष्टि आग्रयणेष्टि कहलाती है।

दर्शपूर्णमास इष्टि का प्रयोजन शत्रुनाश, इच्छित फल की प्राप्ति एवं शत्रु के भाग की प्राप्ति बताया गया है।

राजसूय यज्ञ का प्रयोजन राज्य प्राप्ति है। इसका यजन करने पर यज्ञ-कर्त्ता राजा बनता है। राजसूय यज्ञ करने वाले से भयभीत होकर समस्त पृथिवी उसकी पशवर्तनी हो जाती है उस पर अभिचार करने वाला स्वयं उसी अभिचार का शिकार होकर नष्ट हो जाता है।[1]

विधि-निदेश के विभिन्न अवसरों पर भी शकुन सम्बन्धी आस्थाओं का प्रदर्शन उपलब्ध है। 'स्विष्टकृत' के लिए आहुति में से कुछ भी भाग न बचाए जाने पर अपशकुन सम्बन्धी विचार द्रष्टव्य हैं।[2] यहाँ एक कपाल का उलटना राष्ट्र के विनाश का सूचक है।

'त्रिरात्रयज्ञ' में गोदान के अवसर पर कहा गया है कि 'यजमान द्वारा गाय छोड़े जाने पर यदि वह पूर्वाभिमुख हो जाती है तो वह यजमान की कार्य में सफलता की सूचक है। यदि उत्तर की ओर उन्मुख होती है यह समझना चाहिए कि यजमान जगत् में यशस्वी बनेगा। पश्चिम की ओर उन्मुखता धन-धान्य से पूर्णता और दक्षिण की ओर उन्मुखता मृत्यु की सूचक होती है।

इसी प्रकार वैदिकी विश्वास में दिव्य शक्तियों से सम्बद्ध उड़ान एवं पशुओं के हिलने-डुलने से भी शकुन और अपशकुन का विचार किया जाता है। यूप की रचना करवाते समय उल्लेख है कि कपोती के आकार का यूप बनवाने वाला शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

---

1. शत०ब्रा०, 5.1.1, 5.3.8
2. पर्याभूद्वाऽयमेककपालो मोहिष्यति राष्ट्रमिति ॥

(4) **ताण्ड्य महाब्राह्मण में अभिचार** : सामवेदीय ब्राह्मण-ग्रन्थों में ताण्ड्य ब्राह्मण का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका अन्य नाम पञ्चविंश ब्राह्मण भी है।

ताण्ड्य महाब्राह्मण का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय तो सोमयाग ही है। साथ ही विभिन्न प्रकार के साम, उनका प्रयोग और विविध प्रकार की प्रायश्चित विधियाँ यथास्थान वर्णित हैं। यद्यपि अभिचार की दृष्टि से ताण्ड्य महा-ब्राह्मण में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती है फिर भी इस ब्राह्मण में अभिचार शब्द का उल्लेख होने से[1] प्रसंगवश इस ब्राह्मण की गणना करना सर्वथा उचित है। ताण्ड्य ब्राह्मण में लिखा है कि अभिचारी व्यक्ति का ब्रह्मसाम वषटकारणिधन होना चाहिए। 'वषटकारणिधन' साम को देवइषु और इन्द्र के वज्र के तुल्य माना गया है। इस साम के प्रयोग से यजमान अपने शत्रु पर या आभिचारिक पर वज्र के समान आक्रमण करता हुआ देव बाण के द्वारा उसे बेधने में समर्थ होता है।

विविध प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान भी ताण्ड्य ब्राह्मण में प्राप्त होता है। नवम अध्याय के तीसरे खण्ड से लेकर इस अध्याय के अन्त तक सोमयाग के प्रायश्चितों का वर्णन है। यद्यपि ये प्रायश्चित कर्म अभिचार की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं तथापि इनसे सम्भावित अनिष्ट को ध्यान में रखते हुए ब्राह्मणकार ने जिन प्रायश्चितकर्मों का विधान किया है वह स्वस्तिक अभि-चार की कोटि में परिगणनीय हैं। सोम खरीदने के पूर्व या खरीदने के पश्चात् शत्रु के द्वारा सोम लेकर भाग जाने पर सोम विक्रेता को अल्पधन देकर पुनः सोम खरीदने का विधान है।[2] सोम के अभाव में पूतीक लता के प्रयोग का विधान है। पूतीक के अभाव में अर्जुन पौधे के प्रयोग का निर्देश है।[3] द्रोण कलश अर्थात् सोम रखने के पात्र के टूट जाने पर ब्रह्मसामन् का गान विहित है।[4] सोम के अवशेष रह जाने पर भी विभिन्न प्रकार के प्रायश्चितों का विधान है, यथा, प्रातः सवन में सोम के शेष रह जाने पर मरुत देवता से सम्बद्ध गायत्र

---

1. तां० ब्रा०, 8.1.2
2. यदि सोमक्रीतमपहरेयुरन्यः क्रेतव्यः यदि क्रीतं योऽन्योऽभ्याशं स्यात् स आहृत्यः सोम विक्रयिणे तु किञ्चिदद्दधात्। तत्रैव 9.5.1.2
3. यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुर्यदि न पूतीकानर्ज्जुनानि। तत्रैव, 9.5.3
4. तदि कलशो दीर्येत् वषट्कारणिधनं ब्रह्म साम तु पयति। तत्रैव, 9.6

सामन् में निबद्ध 'अस्ति सोमो अयं सुत' ऋचा का गान विहित है।[1] माध्यन्दिन में सोमावशेष रहने पर सूर्य से सम्बद्ध गौरी-वित् सामन् में निबद्ध 'वण्महां असि सूर्य' ऋचा का गान[2] तथा सायं सवन में सोमावशेष रहने पर विष्णु शिपिविट देवता से सम्बद्ध ऋचा[3] का गान विहित है।

इसी प्रकार सोमयाग के लिए दीक्षित किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर निम्न प्रकार से प्रायश्चित का विधान है—'मृतक व्यक्ति का दाह संस्कार करके उसके स्थान पर उसके निकट सम्बन्धी को दीक्षित करके सोमयाग करवाना चाहिए।[4] यज्ञ में यामम् सामन् का गान करना चाहिए।

द्रोणकलश में सोम के कम हो जाने पर यजमान के द्वारा सोम में दूध मिलाने का विधान है।[5] नाराशंस पात्र में सोम के कम हो जाने पर गृह पात्रों का सोम मिलाना चाहिए।[6] सोमाभिषव के समय पत्थर के टूट जाने पर उससे लगने वाले दोष से मुक्त होने के लिए मरुत देवता से सम्बद्ध द्युतान् सामन् का गान करना चाहिए।[7] दो परस्पर शत्रुभूत यजमानों के द्वारा यदि एक साथ और उसी स्थान पर दो सोमयाग किए जा रहे हों, तो यह प्रायश्चित विधेय है। इसके सन्दर्भ में विशेष रूप से रौरव, योधाजय, बृहत, रथन्तर तौरश्रवस् और विहव्य आदि साम विहित हैं।[8] प्रवर्ग्य इष्टि में प्रयोज्य महावीर पात्र के टूट जाने पर तीन ऋचाएँ पढ़कर उसका स्पर्श करना ही इसका प्रायश्चित है।[9]

यज्ञ के मध्य में यूप में शाखा का उद्भिन्न हो जाना यजमान के लिए अशुभ है। उसके प्रायश्चित स्वरूप पशु याग करणीय है, जिसमें कई रंगों वाला पशु त्वष्टा को समर्पित किया जाता है।

---

1. तां० ब्रा०, 9.7.1
2. तत्रैव, 9.7.6
3. तत्रैव, 9,7.9
4. 'यदि दीक्षितानां प्रमीयते दग्ध्वास्थीन्युपनत्य योनेदिष्टी स्यात दीक्षयित्वा सह यजेरन्'। तत्रैव, 9.8
5. तदाहुः पयोऽनवयेदिति। तत्रैव, 9.9.6
6. तत्रैव, 6.9.6
7. यदि ग्रावाऽपिशीर्यते ˙˙ द्युतानस्य मारुतस्य साम्ना स्तुयुः।
8. तत्रैव, 9.4.9-10
9. तत्रैव, 9.10.1

(5) **षड्विंश ब्राह्मण में अभिचार** : अभिचार की दृष्टि से उल्लेखनीय सामवेद का द्वितीय ब्राह्मण ग्रन्थ षड्विंश ब्राह्मण है। यह ताण्ड्य महाब्राह्मण का ही 26वाँ अध्याय माना जाता है। वस्तुतः षड्विंश ब्राह्मण में निरूपित अभिचार यागों के कारण ही इस ब्राह्मण का विशेष महत्व है।

षड्विंश ब्राह्मण में सम्प्रति छः अध्याय हैं जिसमें तृतीय अध्याय के पञ्चम से नवम खण्ड में अभिचार यागीय त्रिवृत स्तोम की दो विष्टुतियों, पञ्चदश स्तोम की विष्टुति, सप्तदश स्तोम की विष्टुति, एकविंश स्तोम की विष्टुति तथा त्रिणव स्तोम की विष्टुति का वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय के द्वितीय खण्ड में श्येन याग नामक अभिचारीय याग का निरूपण तथा उसके स्तोत्रगत स्तोमों और सामों का कथन है। तृतीय और चतुर्थ खण्डों में त्रिवदग्निष्टोम और संदंश यागों का निरूपण है। पञ्चम खण्ड में वज्र याग का विधान तथा वज्र और संदंश में गीयमान सामों का वैशिष्ट्य प्रदर्शित है।

आभिचारिक दृष्टि से षष्ठ अध्याय भी महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है जिसमें विभिन्न अनिष्टों, अद्भुत कर्मों तथा अपशकुनों की शान्ति का विधान है। इसी कारण इस अध्याय का नामकरण ही 'अद्भुत ब्राह्मण' हो गया जिसकी अपनी स्वतन्त्र मान्यता भी है। इस अध्याय के अन्तर्गत कुल 12 खण्ड हैं। जिनमें प्रथम खण्ड में पलाश की समिधाओं से 1008 आहुतियों का विधान है। द्वितीय खण्ड में शत्रु विजय के निमित्त होम विशेष का विधान है। तृतीय खण्ड में इन्द्र विषयक अद्भुत होम विशेष का अनुष्ठान विहित है। यह तब करणीय है जब अग्नि-निर्मित आभूषणों अथवा घटादि की क्षति हो अथवा गृह भाग भंग हो जाए और हाथियों तथा अश्वों में से किसी की मृत्यु हो जाए। चतुर्थ खण्ड में यम के निमित्त अद्भुत कर्मों का विधान (अनुष्ठान) विहित है। इस अनुष्ठान के निमित्त विशेष हैं—अपने कुटुम्बियों अथवा पशुओं के शरीर में व्याधि हो। दुःस्वप्न अनिद्रा अथवा क्षुधा नाश की स्थिति हो, आलस्य से शरीर ग्रस्त हो तब एक सौ आठ (108) बार 'नाके॰'[1] प्रभृति ऋचा का गान करके यम के निमित्त आहुति पञ्चक प्रदेय है। पञ्चम खण्ड में वरुण से सम्बद्ध अद्भुतों की शान्ति का विधान है। यह क्षेत्रस्थ तथा गृहगत अन्न को मूषकादि अथवा अतिवृष्टि आदि से क्षति पहुँचाने की स्थिति में करणीय

1. साम॰ सं॰, 320

है। उपर्युक्त कारणों के उत्पन्न होने पर 'घृतवती०'[1] ऋक् के गान तथा वरुण के निमित्त पाँच आहुतियाँ देने का विधान है। षष्ठ खण्ड में स्वर्ण, रजत वैदुर्यादि की हानि होने पर, किए गए उद्योग के निष्फल होने पर, मित्रों के विद्वेष करने पर, पिशाचादि जन्य उद्वेग होने पर, कष्टकर पक्षियों के घर में बसेरा बनाने पर वैश्रवणदेव के निमित्त होम विहित है। इस कृत्य में वैश्रवण यक्षादि पति हिरण्यपाणि, ईश्वर और सर्वप्रायपशमयिता—इन पाँच नामों के निमित्त आहुति पञ्चक देकर 'अभित्यं देवं'[2] मन्त्र गेय है। सप्तम खण्ड में अग्नि से सम्बद्ध अपशकुनों के निवारण की विधि उल्लिखित है। जब पृथिवी फटने लगे अथवा उसमें कम्पन्न होने लगे, अग्नि के बिना ही धूम उत्पन्न हो, बिना वर्षा के जल गिरे, जल में प्रक्षिप्त पत्थर न डूबे और प्रक्षिप्त मृत शरीर डूब जाए तथा अकाल पुष्प फल उत्पन्न होने जैसे अद्भुत कार्यों के होने पर यह अनुष्ठेय है।

अष्टम खण्ड में वायुदेव से सम्बद्ध उत्पातों के शमन हेतु होम विशेष विहित है। इसके निमित्त विशेष हैं—वायु का अतिरेक अथवा अभाव, पर्वतों का टूट-टूटकर गिरना, घर में वन्य पशुओं का प्रवेश, आकाश से मांस खण्ड और रुधिर आदि की वर्षा इत्यादि।

नवम खण्ड में यजमान द्वारा स्वर्गाभिमुख होकर सोम के अद्भुतों की शान्ति का विधान है। ये होम नक्षत्र के टूटकर गिरने, उल्कापात, अन्तरिक्ष में धूमकेतु का आविर्भाव, गायों के थनों से दूध के स्थान पर रक्तस्राव आदि अद्भुतों के होने पर किया जाता है।

दशम खण्ड में विष्णु जन्य अद्भुतों की शान्ति के निमित्त होम विशेष का सम्पादन विहित है, यथा—स्वप्न में अयानबद्ध अश्वादि का गमन दिखाना, देव प्रतिमाओं का हँसना तथा पसीजना इत्यादि। इस कृत्य में स्वस्ति वाचन के साथ ब्राह्मण-भोजन तथा दक्षिणा का भी विधान है। ग्यारहवें खण्ड में रुद्र और बारहवें में सूर्य देवता से सम्बन्धित अद्भुतों की शान्ति का विधान है।

**षड्विंशोक्त अभिचार याग :** षड्विंश ब्राह्मण में चार अभिचार यागों का उल्लेख एवं उनके निष्पादन की विधि वर्णित है।

---

1. साम० सं०, 368
2. तत्रैव, 464

1. **श्येन याग :** यह याग शत्रु हिंसा के प्रयोजन से अनुष्ठेय है।[1] श्येन पक्षी के नाम पर इसके नामकरण का आधार बतलाया गया है कि वह पक्षियों में क्षेपिष्ठ अर्थात् सर्वाधिक तीव्रगामी होता है। श्येन जिस प्रकार से पक्षि-समूह पर टूटकर उन्हें मारने के लिए दबोच लेता है वैसे ही यह याग भी यजमान के शत्रु को दबोच लेता है। इसके सभी पवमान स्तोत्र त्रिवृत्तोम युक्त होते हैं। अन्य सोमयागों में हविर्धान शकटाकार होते हैं किन्तु इसमें रथ होते हैं [2] श्येन याग में प्रयोज्य विशिष्ट साम हैं—वषटकारणिधन,[3] बृहत, रथन्तर, वार्षाहार, सफौपगव इत्यादि। इस का यूप तिल्वक अर्थात् बाधक काटेदार वृक्षों की लकड़ी से स्फ्याग्र सदृश (खड्गाकृति वत्) अग्रभाग युक्त होता है। सवनीय पशु का रंग लाल विहित है। इध्म का चयन विभीतक (अक्षदारु) वृक्ष से किया जाता है। अनुष्ठान में निरत् ऋत्विक् ऊपर से नीचे तक रक्त वस्त्र और रक्तोष्णीष धारण करते हैं। वे निवीत होकर अर्थात् कान अथवा कण्ठ पर ब्रह्मसूत्र और उत्तरीय डालकर ही याग कृत्यों का सम्पादन करते हैं।

आर्षेय कल्प के व्याख्याकार वरदराज के अनुसार श्येन याग के ऋत्विक् श्रमिकों और योद्धाओं के पुत्र होते हैं, किन्तु उन्हें अनूचान अर्थात् वेदानुशीली होना चाहिए।[4] दक्षिणा में प्रत्येक ऋत्विक् को प्रतिवर्ण की नौ गायें प्राप्त होती हैं जिनका विवरण इस प्रकार है – काण (एक आँख वाली), खोर (लंगड़ी), कूट (टूटे शृंगो वाली) वाण्ड (छिन्न पुच्छ)। इस प्रकार प्रत्येक ऋत्विक् को छत्तीस गायें प्राप्त होती हैं। दक्षिणा में हिरण्यादि भी योग्यतानुसार दान किए जाते हैं। कात्यायन श्रौत सूत्र से विदित होता है कि यह साद्यस्क है और इसके सभी अनुष्ठान एक ही दिन में सम्पन्न कर लिए जाते हैं।[5]

2. **इषुयाग अथवा त्रिवृदग्निष्टोम :** इस याग का नामकरण त्रिवृदग्निष्टोम

---

1. षड्० ब्रा०, 4.22
2. तत्रैव, 4.2.6
3. साम० सं०, 5.11
4. व्रातीनां यौधानां पुत्रा अनूचान अभिचारणीयायामृत्विजः प्रचरन्ति। अर्हतामेव पुत्रा इति धानञ्जय्यः। ते च लोहितोष्णीषा लोहित वाससो निवीताः प्रचरन्ति। आर्षेयकल्प, 3.15
5. दीक्षादि सर्वं सद्यः क्रियते। कात्या० श्रौ०सू०, 22.3.25-26

की 'इषु' नाम्नी विष्टुतियों के आधार पर हुआ है।[1] इसका प्रयोजन भी शत्रुवध ही है। त्रिवृतस्तोम तथा वषट्कारणिधन साम इसमें विशेषतः प्रयोज्य हैं। इसके ऋत्विगादि तथा शेष कृत्य श्येन याग के समान होते हैं।[2]

3. **संदंश याग :** जैसे संदंश (अयोगोलकादि) सामान्यतया पकड़ में न आ सकने वाली वस्तु को भी पकड़ने का साधन है वैसे ही यह याग भी उस शत्रु के निमित्त है जो सामान्य रूप से हमारी पकड़ में नहीं आता। जैसा कि षड्विंश ब्राह्मण में कहा गया है—"यद्वै दुरादानं सन्दशेन तदादत्ते।"[3] इसमें दो स्तोत्र त्रिवृत स्तोम युक्त, दो द्वादश स्तोम युक्त, दो पञ्चदश स्तोम युक्त, दो एकविंश स्तोम युक्त, दो चतुर्विंश स्तोम युक्त और दो त्रिणवस्तोम युक्त होते हैं। वैयश्व, वार्षाहर, काशीतौपगव और नानद आदि इसमें विशेष प्रयोज्य साम हैं। इसके भी ऋत्विगादि श्येनवत् ही कहे गए हैं।[4]

4. **वज्र याग :** शत्रु हिंसा की दृष्टि से इसकी वज्र से समानता है।[5] इसके सभी स्तोत्र द्वादशस्तोम युक्त होते हैं, क्योंकि वह वज्ररूप ही होता है। षोड्शियुक्त उक्थ्य इसमें अनुष्ठेय है। महानाम्नी ऋचाओं पर आधृत षोड्शि साम इसमें विशेष प्रयोज्य है। शेष कृत्य संदंश के समान ही हैं।

(6) **सामविधान ब्राह्मण में अभिचारपरक अंश :** यह सामवेद का अन्यतम ब्राह्मण है जिसका विषय ब्राह्मणों में उपलब्ध विषयों से नितान्त भिन्न है। इस ब्राह्मण में जादू-टोना करने के लिए, यथा—किसी व्यक्ति को ग्राम से भगाने के लिए, शत्रु को ध्वस्त करने के लिए, धन पाने के लिए, नाना उपद्रवों की शान्ति के लिए, सामगायन के साथ-साथ कतिपय अनुष्ठानों को करने का विधान पाया जाता है। यों तो अन्य वेदों में भी तत्तत मन्त्रों के इस प्रकार के आभिचारिक प्रयोगों के उपयोग का वर्णन मिलता है। 'ऋग्विधान' में ऋग्वेदीय मन्त्रों का तथा 'यजुर्विधान' में यजुर्वेदीय मन्त्रों का प्रयोग ऐसी क्रियाओं के लिए किया गया है। परन्तु यह ग्रन्थ ब्राह्मण-ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न दृष्टिगत

---

1. षड्० ब्रा०, 4.3.2
2. समानभिचरत् श्येनेन्। तत्रैव, 4.3.7
3. तत्रैव, 4.4.3
4. तत्रैव, 4.4.10
5. तत्रैव, 4.5.8

होता है क्योंकि इस ग्रन्थ में व्यापक रूप से जनसामान्य की मनोकामनाओं को साकार करने हेतु अभिचार मिश्रित अनुष्ठानों एवं पूर्णरूप से आभिचारिक अनुष्ठानों का विधान पाया जाता है तथा वशीकरण प्रयोग, उच्चाटन प्रयोग, यश प्राप्ति के प्रयोग, आदि।

**वशीकरण जन्म प्रयोग :** सामविधान ब्राह्मण ने एक पुरुष अथवा स्त्री को वश में करने, सम्पूर्ण कुटुम्ब को वश में करने, सौभाग्यकामना जन्म, वेश्याओं और संन्यासिनियों को वश में करने तथा कन्या के लिए वरलाभार्थ अनेक विलक्षण कृत्यों का विधान है।[1] उनमें से कतिपय प्रयोग इस प्रकार हैं--जिस स्त्री या पुरुष को वश में करना हो उसकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उस स्त्री अथवा पुरुष का नामोच्चारण करते हुए मन से साध्य रूप में उसकी भावना करके प्रतिमा में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके, पूर्वाह्न में पूर्व दिशा में, मध्याह्न में दक्षिण दिशा में, अपराह्न में पश्चिम दिशा में और अरात्रिर्ध में उत्तर दिशा में विवेच्य स्थान पर उसको स्थापित करके उस पर रखकर वर्णानुसार निर्दिष्ट विशिष्ट साम का जप विहित है।[2] द्वितीय प्रयोग के अन्तर्गत कृष्ण वर्ण की व्रीहि जिसकी भूसी नाखूनों से निकाली गई हो उसको पीस कर साध्य स्त्री अथवा पुरुष की प्रतिमा बनाकर उस पर स्वेदन (पसीना) एवं सरसों का तेल लेप कर लोहे के छुरे से उसके हृदय के अतिरिक्त अंगों को काट-काट कर 'प्रमन्दिने' इस साम से आहुतियाँ देने तथा हुत शेष के भक्षण से वह स्त्री अथवा पुरुष वश में हो जाता है परन्तु हुत शेष का भक्षण न करने पर यजमान मृत्यु को प्राप्त होता है।[3]

इसके पश्चात् सम्पूर्ण कुटुम्ब को वश में करने का विधान है कि पुरुष सम्पूर्ण कुटुम्ब को वश में करना चाहे वह एक दिन और रात्रि तक छुरा धारण करते हुए विशिष्ट साम का जप करे। इससे सम्पूर्ण कुटुम्ब वश में हो जाता है।[4] दो दिन और रात्रि तक छुरा धारण कर विशिष्ट साम से जप करने पर राजा के

---

1. सामवि० ब्रा०, 2.5.3
2. तत्रैव, 2.51
3. तत्रैव, 2.5.1
4. तत्रैव, 2.5.2

आश्रितजन, तीन दिन और रात्रि में राजा स्वयं, चार दिन और रात्रि में जनपद, सात दिन और रात्रि में देवता, आठ दिन और रात्रि में भूत-पिशाच, नौ रात्रि पर्यन्त यक्ष, दश रात्रियों में गन्धर्व और अप्सराएँ, अर्ध मास में धन के स्वामी कुबेर, एक मास में इन्द्र और प्रजापति तथा एक वर्ष तक छुरा धारण करके विशिष्ट साम का जाप करने पर सम्पूर्ण जगत वश में हो जाता है।[1]

कमनीय व्यक्ति के वशीकरण हेतु पृथक विधान उल्लिखित हैं—'भ्रूण की झिल्ली को हाथ से स्पर्श किए बिना अग्नि के प्रताप से सुखाकर, पश्चात् प्रियङ्गुक नामक लता के बीजों का चूर्ण बनाकर विहित सामों से अग्नि में उसकी आहुति देनी चाहिए और इस आहुति से निष्पन्न राख का वशीकरण हेतु कमनीय व्यक्ति पर लेप करने से वह वश में हो जाता है।

वेश्याओं और संन्यासिनियों को वश में करने के लिए खिले हुए कमल की कलिका में प्रियङ्गुक के बीज डालकर कमल के बन्द होने पर उसे उखाड़ ले और उसे फाड़ कर उसकी कर्णिका को निकाल कर विहित साम से अनुलेपन करने पर पूर्वोक्त युवतियाँ वश में हो जाती हैं।[2]

**शत्रु उच्चाटनार्थक प्रयोग :** [3] शत्रु उच्चाटन के लिए साधक तीन दिन उपवास करके जलती हुई चिता से अंगारे लाकर चौराहे पर कांटेदार लकड़ियों पर मत्स्य और क्रकर पक्षियों की आहुतियाँ क्रमशः 'अग्ने मृड महाँ् असीति' तथा 'अग्निर्तृ त्राणि' इन दो साम विशेष को पढ़कर दे, उसके पश्चात् दग्ध मत्स्य और क्रकर को पत्रपुट में रखकर उसमें हरिताल का चूर्ण और गो हृदय का शोणित निर्दिष्ट सामों को पढ़कर मिलाएँ और उससे तैयार भस्म को शत्रु के घर में बिखेर देने से साधक की उपर्युक्त कामना पूर्ण होती है।

**स्मरण शक्ति, यश तथा ब्रह्मवर्चस् की वृद्धि हेतु प्रयोग :** सामविधान ब्राह्मण में यश की प्राप्ति हेतु पुष्प नक्षत्र की रात्रि मे प्रियङ्गु के बीजों का होम और उससे निष्पन्न भस्म का वर्षान्त अनुलेपन करने का विधान निहित है।[4]

---

1. सामवि० ब्रा०, 2.5.3
2. तत्रैव, 2.5.7
3. तत्रैव, 2.6.6
4. तत्रैव, 2.6.7

स्मरण शक्ति के सन्दर्भ में श्रुतनिगादित्य शब्द का प्रयोग है। श्रुत निगादी ऐसे व्यक्ति को कहा गया है जो किसी मन्त्र को एक बार सुनकर उसका पाठ करने लगे। उपर्युक्त प्रयोजनों की पूर्ति हेतु विभिन्न सामों के अतिरिक्त अनेक पराम्परागत काष्ठ और प्राणिज औषधियों का अनुपान वैविध्यपूर्वक विधान किया गया है। स्मरण-शक्ति में वृद्धि के निमित्त ब्राह्मी बूटी का सेवन विहित करने के अतिरिक्त अन्नप्राशन से पूर्व भारद्वाज पक्षी की जिह्वा को उखाड़कर पीसकर घृत मधु से चटाने का विधान है।[1] भारद्वाज पक्षी के माँस को अन्न-प्राशन के प्रसंग में चटाने की विधि पारस्कर गृह्यसूत्र में भी है। इसी प्रसंग में सामविधान ब्राह्मण में हल्दी और वच के चूर्ण भी स्मरणशक्तिवर्धक बतलाए गए हैं।

**धान्यादि समृद्धि हेतु प्रयोग :** तद्विषयक विभिन्न प्रयोग तृतीय प्रपाठक के तृतीय खण्ड में प्राप्य हैं। विभिन्न सामों के गान के अतिरिक्त सत्यसंभाषणादि नियम व्यक्ति को समृद्धि की ओर अग्रसर करने में निःसन्देह समर्थ हैं। इस प्रसंग में जो प्रयोग सामान्य से भिन्न हैं उनमें से एक में मणिभद्र यक्ष के निमित्त क्रमशः अज और वराह, कुक्कुर और मत्स्य मांस के समर्पण की विधि है।[2]

**वास्तु शान्ति :** इसका अभिप्राय है—नवीन गृह की आधारशिला रखते समय भूमिगत राक्षसादि का निवारण। वास्तु (भूखण्ड) की प्रत्येक दिशा को रज्जु से आवृत कर, सभी कोनों को गोमयोदक से लीपकर, शमी पलाश और बिल्व पत्रों तथा अक्षतों को बिखेर देना चाहिए। तदनन्तर रात्रि में भूखण्ड पर किसी भी स्थान पर अग्नि को स्थापित करके निर्दिष्ट सामों से पायसाहुति होम तथा बलि समर्पण भी इसमें विहित है। यह आहुति, होम एवं बलि समर्पण क्रमशः प्रजापति इन्द्र, वायु, यम, पितृगण, वरुण, महाराज सोम, महेन्द्र तथा वासुकि प्रभृति के निमित्त होता है।[3]

**अदृष्टदर्शनार्थक प्रयोग :** सामविधान ब्राह्मण के तृतीय प्रपाठक के चतुर्थ अनुवाक में अदृश्य विषयों के दर्शनार्थ अनेक प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

सर्वप्रथम स्वप्नविषयक प्रयोग के अन्तर्गत सम्मार्जनी के निकट से

---

1. सामवि० ब्रा०, 2.7
2. तत्रैव, 3.3 3-4
3. तत्रैव, 3.3.2-3

संकरवासिनी' नाम्नी देवी का आह्वान, सूप में पुष्प, धूपादि (अक्षतादि) रखकर करे, सूप को सिरहाने रखकर विहित साम विशेष का गानकर चुपचाप सो जाए। ऐसा करने से रात्रि में भाविफलसूचक स्वप्न दिखाई देता है।[1]

द्वितीय प्रयोग के अन्तर्गत विषगुलिका को सम्पुट में रखकर अक्षतादि से उसकी अर्चना करके सिरहाने रखकर, सामविशेष का गान कर सो जाने पर दिदृक्षित वस्तु के दर्शन हो जाते हैं।[2]

स्वप्नविषयक प्रयोगों के पश्चात् जाग्रत विषयक प्रयोगों का विधान किया गया है जो इस प्रकार हैं—

रजोदर्शन रहित कन्या को और दर्पण को 'अयमग्नि ?' इस मन्त्र विशेष से अभिमन्त्रित करके रात्रि में अपने पास रखने, प्रातःकाल उसी मन्त्र की शतावृत्ति करने के पश्चात् कन्या से उस दर्पण में देखने को कहा जाए तो वह कन्या वही बताती है जो कुछ उससे पूछा जाता है। प्रयोगान्तर से दर्पण के स्थान पर पिघला हुआ घी भी प्रयोग में लाया जा सकता है।[3]

इसके पश्चात् अज्ञान-ज्ञान के सन्दर्भ में विहित प्रयोग बतलाए गए हैं—सर्वप्रथम वैदिक तथा लौकिक कर्मों के सिद्धि तथा असिद्धि के निर्णायक प्रयोग कहे गए हैं कि वैदिक तथा लौकिक कर्मों में त्वक्सार से निर्मित दो शलाकाओं पर चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ का लेप करके साम विशेष का गान करते हुए दो ब्रह्मचारी रात्रि में उपवास रखें और प्रातःकाल उन्हीं साम विशेष का गान करते हुए उन शलाकाओं को प्रयत्नपूर्वक आपस में मिलाएँ। यदि आगे पकड़ी गई शलाका स्वयं ही बीच में मिल जाए तो कार्य की सिद्धि जाननी चाहिए।[4]

बीजों का वपन करते समय फसल विषयक भाविफल को जानने का प्रयोग इस प्रकार है—"आषाढ़ मास की पूर्णमासी को यव, ब्रीहि आदि के बीजों को तुला (तराजू) में रखकर तुला को उठाएँ। तुला उठाने पर यव, ब्रीहि आदि

1. सामवि ब्रा०, 3.4.1
2. तत्रैव, 3.4 2
3. तत्रैव, 3. 4.4-5
4. तत्रैव, 3 4.6

बीजों के मध्य में जिसका पलड़ा भारी हो, भविष्य में उसी की फसल अच्छी या बलवती होगी ऐसा जानना चाहिए।"[1]

इसी प्रकार कार्यों की सिद्धि-असिद्धि का विधान भी प्रयोगान्तर से किया गया है।[2]

संग्राम में जय-पराजय ज्ञात करने हेतु पक्ष एवं विपक्ष की भावना करके तेजयुक्त तथा धूमरहित दो अंगार राशियों के प्रयोग का विधान है। इसमें जिसकी अंगारराशि धूम रहित होकर पहले जल जाती है युद्ध में उसकी विजय निश्चित जानी जाती है।[3]

दीर्घजीवन के परिज्ञान हेतु विभिन्न अंगार राशियों को मानवी स्त्रियों के स्तन्य दुग्ध से तैयार नवनीत से प्रज्वलित करने पर जिसकी अंगार राशि सबसे बाद में जले उसे दीर्घायु जानना चाहिए। इसी आधार पर सभी के जीवन का पौर्वापर्य जानना चाहिए।[4]

**राज्याभिषेक :** सायण के अनुसार यह कृत्य पुरोहित कर्तृक है। अभिषेक के साधन भूत द्रव्यों में व्रीहि, यव, तिल, माष, दधि, मधु, पुष्प, स्वर्ण खण्ड, पवित्र नदियों तथा समुद्र से पृथकशः समानीत जल है। उदम्बुर निर्मित सिंहासन पर बिछे व्याघ्रचर्म पर समासीन राजपदाभिलाषी व्यक्ति का अभिषेक जीवित गायों के शुङ्ग कोश से विहित है। गेय साम रहस्य है। ग्राम, दासियाँ आदि पुरोहित को दक्षिणास्वरूप दी जाती हैं।[5]

**अद्‌भुत एवं अभिचार शान्ति :** इस सन्दर्भ में साम-विशेषों से साध्य होमादि विहित हैं। 'प्र दैवो दास' साम से कृष्ण तिलों की अग्नि में आहुति डालने पर आभिचारिक रूप से प्रयुक्त कृत्या आदि प्रयोक्ता के पास ही लौट जाती है।[6]

---

1. सामवि० ब्रा०, 3.4.8
2. तत्रैव, 3.4. 9
3. तत्रैव, 3.4.10
4. तत्रैव, 3.4.11
5. तत्रैव, 3.5.1-2
6. तत्रैव, 3.5.3-4

**संग्राम-जयार्थी राजा के निमित्त विभिन्न प्रयोग :** ये सभी कर्म पुरोहित कर्तृक हैं। विभिन्न मन्त्रों से होम का विधान है। युद्धार्थ प्रस्थान करते समय राजा को सन्नद्ध करने, उसके रथ योजन तथा रथारोहण के निमित्त भी विभिन्न साम विहित हैं। प्रयोगान्तरों में गोघृत से होम, कांटेदार एवं महासार वृक्ष की शाखाओं से होम का विधान है। शत्रु के चतुरंग बल के विनाशार्थ गो धूम-चूर्ण की प्रतिकृति बनाकर उस पर सरसों के तेल का लेपन कर छुरे से अंगों को काटने की प्रक्रिया उल्लिखित है। शत्रु विशेष के वध के लिए द्वितीय प्रपाठक गत उच्चाटन प्रयोग की आवृत्ति कर दी गई है। अन्तर केवल यह है कि यहाँ मत्स्य एवं कुकर के स्थान पर सर्षप तेल से एक सहस्र आहुतियां डालने का विधान है। होम के अन्त में एक पुरुष हाथ में त्रिशूल लेकर खड़ा होता है, उससे व्यक्ति विशेष को मारने के लिए कहा जाता है।[1]

**पिशाच वशीकरणार्थ प्रयोग**[2] **:** पिशाचों को अपने वश में करने का इच्छुक व्यक्ति एक वर्ष तक चतुर्थकाल में ही भोजन करे, कपाल में भिक्षा मांगे, विहित साम विशेष की आवृत्ति को। उपर्युक्त प्रयोग का ही अयाचित व्रतपूर्वक अनुष्ठान करने से पितृदर्शन तथा चतुर्थकाल के स्थान पर अष्टकपाल में भोजन करने से गन्धर्वों और अप्सराओं के दर्शन होते हैं।[3] देवदर्शन का भी यही माध्यम है।

**भूत वशीकरण लभ्य धनार्थ प्रयोग :** सप्तमी से चतुर्थी तक आठ दिन उपवास करके अमावस्या के दिन मुख में आज्य रखकर साम विशेष का मानस जाप करने और आज्य होम करने से दो भूत दिखलाई देते हैं। वे अनुष्ठाता को पाँच कार्षापण देते हैं, उन्हें व्यय करने से वे फिर लौट आते हैं।[4]

गो-शाला में प्रवेश करती हुई दो गायों में से जो गाय पीछे रह जाए, उसके सिर से पूँछ तक सभी अंगों को परिमार्जित करने और बिना हिले-डुले पूरी रात गो-शाला में खड़े रहने से जम्भक नामक भूत विशेषों को वश में हो जाने का उल्लेख है जो अनुष्ठाताओं की सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं।[5]

---

1. सामवि० ब्रा०, 3.6
2. तत्रैव, 3.7
3. तत्रैव, 3.7.3-4
4. तत्रैव, 3.7.5
5. तत्रैव, 3.7.5

**पुनर्जन्म से मुक्ति हेतु रात्रि उपासना :** जो[1] व्यक्ति चाहे कि उसका पुनर्जन्म न हो, वह रात्रि की उपासना करे। विहित मन्त्र का अर्थ है—"मैं पुनः पुनः अर्थात् प्रतिदिन आविर्भूत होने वाली सुख प्रदा रात्रि देवी की शरण आया हूँ। वह मुझे विभिन्न सामर्थ्यों से युक्त करे। रात्रि उस उपासक से इस प्रकार कहती है—तुम अमुक अयन, अमुक ऋतु, अमुक मास, अमुक पक्ष, अमुक द्वादश रात्र, अमुक षड्रात्र, अमुक त्रिरात्र, अमुक अहोरात्र, अमुक दिन, अमुक बेला और अमुक मुहूर्त में मरोगे। तुम यथाभिलषित स्वर्ग, देव ब्रह्म या क्षत्र लोक में जाओ, वहाँ उत्कृष्ट ब्राह्मण्यादि योनि में प्रवेश करो। उपासक रात्रि के द्वारा कथित इन वचनों का निराकरण करके—"मैं प्राणियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति की भी आर्तव युक्त योनि में प्रवेश नहीं करूँगा, क्योंकि योनि में प्रविष्ट हुआ व्यक्ति जन्मता है और देहान्तर से सम्बद्ध होता है। इसीलिए हे रात्रि देवि ! मेरे लिए पुरातन स्वर्गादि से विलक्षण, अर्चिमार्ग से प्राप्य तथा कर्मफलोपभोग से बहिर्भूत ब्रह्मलोक में स्थान प्रदान करो, जिससे पुनः जन्म न हो। ये रात्रि व्रत रात्रि में ही अनुष्ठेय हैं।

**स्वेच्छा से लोकान्तरगमन-गामी के निमित्त प्रयोग[2] :** यह अनुष्ठान चार-मासों में अनुष्ठेय है। इसकी प्रक्रिया यूं है—तीन मास तक गायों के पीछे भ्रमण—इस अवधि में मात्र दुग्धाहार ग्राह्य है। चतुर्थ मास में अरण्य के किसी पावन स्थल पर तृण कुटी बनाकर, आचमनार्थ कमण्डल में जल लेकर स्नान, भोजन और जलपान बिना किए हुए विहित साम की प्रतिदिन सहस्रावृति करने पर यदि देव-देवियों के दर्शन हों तब व्रत को सफल मानना चाहिए। इस व्रत से अनुष्ठाता के लिए देव, गन्धर्व आदि की सिद्धि और अन्तरिक्ष विचरण की सामर्थ्य सिद्ध हो जाती है। स्वर्गादि लोकों के द्वार उसके लिए अनायास अना-वृत्त हो जाते हैं। इस प्रयोग के साथ एक अन्य साम विशेष की आवृत्ति से साधक 'मनोजवा' हो जाता है।

**मानुषादि भोगों की प्राप्ति :** शुक्लपक्षगत दिनों में उपवास, स्नान श्वेत वस्त्रधारण और चन्दन लेपन करके निर्दिष्ट सामों की सहस्र आवृत्ति से देव और मानुष भोग सुलभ हो जाते हैं।[3]

---

1. सामवि० ब्रा०, 3.8
2. तत्रैव, 3 9
3. तत्रैव, 3.9.3

**त्रैलोक्याधिपतित्व प्राप्ति :** एक मास उपवास और मास भर अयाचित भोजन का क्रम चार वर्षों तक अपनाने और सामविशेष की आवृत्ति से व्यक्ति त्रैलोक्य का स्वामित्व प्राप्त कर लेते हैं।[1]

साम विधान ब्राह्मण के द्वितीय प्रपाठक के द्वितीय अनुवाक में तीन काम्य कर्म उल्लिखित हैं – बाल मृत्यु निवारणार्थ, राक्षसों के द्वारा ग्रहीत होने पर शान्त्यर्थ तथा रोग शमनार्थ। इनकी अनुष्ठान विधियों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि गाँव-गाँव और घर-घर फैले लोक विश्वासों तथा टोना-टोटकों को एकत्र कर और उनके साथ विभिन्न सामों का पुट देकर इन्हें प्रस्तुत किया गया है। लोकतत्व की दृष्टि से इन लोक विश्वासों तथा टोटकों का अनुशीलन अत्यन्त रोचक है। इन काम्य कर्मों में अभिचार का समिश्रण सम्भवतः है।

यों तो विश्व के सभी धर्मों में अभिचार किसी न किसी रूप में पाया जाता है और उसे आदिम विज्ञान की मान्यता भी प्राप्त है; किन्तु वैदिक वाङ्मय में प्राप्त अभिचार यागों को जनजातियों के धार्मिक विश्वासों, जीव[2] और जीवीवादों[3] अथवा मानव विज्ञान के बने बनाए चौखटों के आधार पर नहीं समझा जा सकता। प्रो० कीथ, विण्टरनित्स प्रभृति विद्वानों ने नैतिकता की दृष्टि से इसे पतन की कोटि में रखा है।[4] किन्तु प्रायश्चित्त और काम्य कर्मों में भी सत्य भाषणादि की अनिवार्यता देखकर[5] उपर्युक्त विद्वानों का अभिमत तथ्यपरक नहीं प्रतीत होता है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि किसी भी काल-खण्ड में और किसी भी समाज में सभी व्यक्तियों का मानसिक स्तर एक-सा नहीं होता। उनकी इच्छाएं, आकांक्षाएँ भी एक नहीं होती और न ही उन कामनाओं को साकार करने के साधन ही एक होते हैं। सामविधान ब्राह्मण ने इन अभिचार मिश्रित अनुष्ठानों में केवल विशिष्ट वर्ग के समानान्तर चल रही जनसामान्य की आस्थाओं और विश्वासों को ही समन्वित करने का प्रयत्न किया है—

---

1. सामवि० ब्रा०, 3.9.5
2. Animism
3. Animatism
4. वैदिक धर्म एवं दर्शन, भाग 2, अनु० डॉ० सूर्यकान्त, पृ० 470-495
5. सामवि० ब्रा०, 1.2.7 सत्यं वदेत् इत्यादि।

**बाल-मृत्यु निवारणार्थ**[1] : यह अनुष्ठान उसी स्त्री के द्वारा अनुष्ठेय है, जिसके पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् जीवित न रहते हों। इसमें गर्भ के तीसरे मास न्यग्रोध शुङ्ग और शरकण्डे के मूल को उखाड़कर पीसकर तीन पर्णों वाली मणि बनाई जाती है, तत्पश्चात् व्याहृति होम होता है। विहित साम विशेष से मणि पर भी आहुति डाली जाती है और गर्भिणी स्त्री अपनी मेखला में इसे पहने तथा नवजात शिशु के कण्ठ में बाँध दें।

**राक्षसों से मुक्ति हेतु**[2] : 'इसमें राक्षस ग्रस्त व्यक्ति के निमित्त अशनि-आहत वृक्ष की लकड़ी, श्वेतवर्णीय गाय के घी और बिल्व वृक्ष की मणि से पूर्ववत् मणि बनाने, होम करने और विशिष्ट सामों के गान का निदेश है।

**रोग शान्ति हेतु** : विशेष[3] सामों से कुम्भगत घी से होम करने हुत-शेष घी के खाने आदि का विधान है।

**सर्प-भय से मुक्ति हेतु** : पूर्ववत् शंखपुष्पी और सर्पगन्धा से मणि निर्माण, होम और विशेष साम विहित हैं।[4] शस्त्र भय से मुक्ति, ब्रह्मन्न प्राप्ति, पिपासा से बचने, जल में डूबने से, सम्भावित मृत्यु से बचने, यक्ष्मा और विष के प्रभाव को समाप्त करने, सर्वत्र क्षेम कामना तथा स्वस्त्ययन के हेतु भी उपर्युक्त प्रकार से विशेष सामों का विधान किया गया है।[5]

वार्धक्य और मृत्यु पर विजय पाने के निमित्त सामविशेष के गान के विधान के अतिरिक्त मास भर वनवास तथा तन्तु निर्मित वस्त्र न पहनने का निर्देश है।[6]

प्रकृत ब्राह्मण में काम्य कर्मों और प्रायश्चित कर्मों के अनुष्ठानोल्लेख से पूर्व ही यह कह दिया गया है कि जहाँ कोई विशिष्ट निर्देश न हो, वहाँ त्रिराज

---

1. सामवि० ब्रा०, 2.2
2. तत्रैव, 2.2-1
3. तत्रैव, 2.2.2
4. तत्रैव, 2.3.2
5. तत्रैव, 2.3,3.7
6. तत्रैव, 2.4.4

उपवास करणीय है और कृत्यारम्भ पुष्य नक्षत्र से होना चाहिए।[1]

उपर्युक्त सभी काम्य कर्म आवश्यक कर्म न होकर स्वेच्छागत कर्म हैं।

सामविधान ब्राह्मण में कुछ प्रायश्चित कर्मों का भी विधान किया गया है और इन्हें आवश्यक कर्मों के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। ताण्ड्य और षड्विंश ब्राह्मणों में यागगत त्रुटियों के सन्दर्भ में प्रायश्चित प्रयोग विहित हैं, किन्तु सामविधान ब्राह्मण तक सामान्यजीवन व्यवहारों में सम्भावित अपकृत्यों के परिमार्जन हेतु धर्मशास्त्रीय दृष्टि से भी प्रायश्चित प्रक्रिया का निर्धारण हो चुका था, जिसका विवरण अधोलिखितवत है :

**तीन कृच्छ्र व्रत :** सामविधान ब्राह्मण में कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र तथा कृच्छ्राति-कृच्छ्र संज्ञक तीन कृच्छ्र व्रतों का प्रायश्चित प्रयोगों के रूप में निरूपण हुआ है।[2] इनका प्रयोजन अपवित्र व्यक्तियों की शुद्धि है।[3] सायण और भरत स्वामी के तद्विषयक भाष्यांशों के अवलोकन से विदित होता है कि इनकी मान्यता विशिष्ट तप के रूप में रही है।[4]

इन व्रतों का स्वरूप ब्राह्मणकार ने प्रायः वैसा ही बतलाया है, जैसा आगे मनु आदि स्मृतियों में मिलता है।[5] निर्धारित प्रक्रिया से उपवास तथा कतिपय सत्य भाषणादि नियमों का पालन ही इसमें विहित है। तीनों कृच्छ्रों में उपवास की अवधि प्रायः बढ़ती गई है। इनके साथ ही विभिन्न साम विहित हैं। सामविधान ब्राह्मण के अनुसार इन तीन कृच्छ्रों के पालन से व्यक्ति वेद-ज्ञान साध्य विभिन्न फलों का अधिकारी हो जाता है।[6]

**अन्य प्रायश्चित :** सामविधान ब्राह्मण के प्रथम प्रपाठक (पंचम से अष्टम अनुवाक तक) में विभिन्न दुष्कृत्यों के प्रायश्चित विहितहैं। पंचम अनुवाक में अश्लील भाषण, ब्राह्मणों, बन्धुओं और उपाध्यायादि से परुष भाषण अनध्याप्य

---

1. सामवि० ब्रा०, 2.1.1
2. तत्रैव, 1.2
3. प्रथमं चरित्वा..........सर्वस्मादेनसो मुच्यते। तत्रैव, 1-2.11
4. तत्रैव, 1.2.1
5. मनुस्मृति, 11वाँ अध्याय
6. अथैतांस्तीन कृच्छ्रान चरित्वा सर्वेषु वेदेषु भवति। सामवि०ब्रा०, 1.2.12

अध्यापन, अयाज्य याजन, ब्रह्महत्या और सुवर्णादि की चोरी करने पर प्रायश्चितों का विधान है। प्रायश्चित की दृष्टि से सर्वाधिक महत्व है मन्त्रों का जो समस्त पापों के शोधन में समर्थ माने गए हैं।[1] बहुत से प्रसंगों में जहाँ अन्य कोई विशिष्ट विधान प्राप्त नहीं होता, 100 बार या कम से कम 10 बार साम गान ही शुद्धि हेतु पर्याप्त है।[2] उदाहरणस्वरूप अश्लील शब्दों का उच्चारण करने पर प्रायश्चित्त हेतु 'दधिक्राव्णो अकारिषम' साम का गान विहित है। साम आवृत्ति के अतिरिक्त उपवास (जिसकी अवधि तीन दिनों से लेकर अपराध की गम्भीरता के अनुसार कितने ही दिनों तक हो सकता है) दक्षिणा, परित्याग, वमन विरेचन, सम्पूर्ण वेद राशि का स्वाध्याय, वस्त्र त्यागकर त्रिसवन स्नान, स्वकुकृत्य-ख्यापन, केशादि छेदन भी विहित है। अपराध की गुरुता के अनुसार उक्त साधनों की मात्रा और अवधि भी बढ़ जाती है। षष्ठम अनुवाक में परधानापहरण और अगम्यागमन के सन्दर्भ में प्रायश्चितों का विधान है। एक ही अपराध की गुरुता वर्णादि के अनुसार भी घटती बढ़ती दिखाई देती है। ब्राह्मण और अब्राह्मण के धनहरण में अन्तर दिखाई देता है। उस युग की मान्यताओं को देखते हुए ये स्तेय और यौन सम्बन्धी अपराध निःसन्देह असामान्य हैं किन्तु सामविधान ब्राह्मण में इनका जो प्रायश्चित विधान है, वह कुछ अल्प प्रतीत होता है। उदाहरण स्वरूपब्राह्मण का धनापहरण करने पर सामविधान ब्राह्मण में एक मास तक जलाशय के निकट निवास, चतुर्थकाल में भोजन और 'शुकं ते अन्यद्०' साम का गान विहित है। गुरु अथवा ब्राह्मण की पत्नी के साथ अवैध सम्बन्ध करने पर अल्प भोजन, तीनों कृच्छों का साधन तथा निर्दिष्ट साम गान ही विहित है जबकि स्मृतियों में इन्हीं अपराधों के लिए शिश्नच्छेद अथवा अण्डच्छेद तक का विधान है।

सप्तम अनुवाक में चतुर्विध अपराधों के सन्दर्भ में प्रायश्चित विहित हैं। प्रथम कोटि के अपराध वे हैं जिनका सम्बन्ध दान अथवा प्रतिग्रह से है, यथा—अदत्त आदान अथवा बिना किसी विपत्ति के दान ग्रहण आदि। द्वितीय कोटि हत्या एवं ताड़ना सम्बन्धी अपराधों की है। तीसरी श्रेणी में काम-जन्य अपराध हैं, यथा योनि भिन्न अंग पर वीर्य स्खलन, ब्रह्मचारी द्वारा स्त्री-गमन, अग्रज के अविवाहित रहते हुए अनुज का विवाह कर लेना आदि। चतुर्थ श्रेणी

---

1. अनादेशे मन्त्रा बलवन्तस्तपोऽन्विताः पावना भवन्ति। सामवि०ब्रा०, 1.5.2
2. तत्रैव, 1.5.4

में जीविका सम्बन्धी अपराधों का प्रायश्चित विधान है जो आज वास्तव में अपराध नहीं माने जाते। यथा, उस युग में ब्राह्मणों द्वारा अध्ययन-अध्यापन से अपनी जीविका के लिए धन अर्जित करने का नियम था और इस कार्य को छोड़कर जो ब्राह्मण अन्य व्यवसायों से अपनी जीविका निर्वाह करते थे उनके लिए प्रायश्चित का विधान था।

अष्टम अनुवाक में रसादि-विक्रय, अश्वादि प्रतिग्रह, अदत्त कन्या के साथ विवाह, गणादि अभिघात सम्बन्धी अपराधों की प्रायश्चित विधि भी दी गई है। इन सभी में प्रायश्चित स्वरूप प्रायः कृच्छ्रानुष्ठान और विभिन्न सामों का गान विहित है।

निष्कर्ष रूप में इन चारों अनुवाकों में सामान्य व्यवहारगत, आर्थिक और यौन सम्बन्धी अपराधों के सन्दर्भ में प्रायश्चित विधान हैं।

कुछ ऐसी स्थितियों में भी प्रायश्चित विधान प्राप्त होता है, जो वस्तुतः अपराध कोटि में नहीं आती जैसे—दुःस्वप्न दर्शन, अक्षि-स्पन्दन, गृह-दाह, मूषकों द्वारा अन्न-भक्षण, कूर्च नाश, गृहगत उपकरण विनाश और पुत्र भृत्यादि का कष्ट पाना आदि।[1]

यद्यपि उपर्युक्त प्रसंगों में मनुष्य प्रायः विवश होता है तथापि ब्राह्मणकार के द्वारा ये प्रायश्चित विधान सम्भवतः अदृष्ट जन्य अमंगल की आशंका और उसके निवारण की भावना से किया गया है।

1. सामवि॰ ब्रा॰, 1.8.7.13

पंचम अध्याय

# कल्पसूत्रों में अभिचारात्मक याग और अन्य अनुष्ठान

**'कल्प' शब्द का अर्थ :** 'कल्प' शब्द का अर्थ है--'वेद में विहित कर्मों का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र'।

"कल्पो वेद विहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पना शास्त्रम्।[1]

सायणाचार्य के अनुसार 'कल्प' का अर्थ है--"याग-विधियों का समर्थन और प्रतिपादन"--"कल्प्यते समर्थ्यतेऽत्र याग प्रयोगः।"

वेद षडंगों में 'कल्प' की भी गणना की जाती है। कल्प सबसे महत्व-पूर्ण वेदाङ्ग हैं। वैदिक साहित्य में सूत्र-साहित्य को वेदाङ्ग के अन्तर्गत 'कल्प' शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है, जिसमें वैदिक कर्मकाण्ड के विस्तार को सूत्रबद्ध कर दिया गया है।

**कल्पसूत्रों का विभाजन :** कल्प सूत्र मुख्यतः चार प्रकार के हैं—

1. **श्रौत सूत्र**—श्रौत सूत्र वे हैं, जिनमें श्रौत अग्नि से सम्पादित होने वाले बड़े-बड़े श्रौत यागों का क्रमबद्ध विवरण है। कुछ प्रमुख श्रौत याग ये हैं—दर्श पौर्णमासादि इष्टि याग एवं सोमयाग, (वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्व-मेधादि)। प्रत्येक वेद के अलग-अलग श्रौतसूत्र हैं।

2. **गृह्य सूत्र**—गृह्य सूत्र वे हैं जिनमें गृह्याग्नि-साध्य यज्ञों, विवाहादि संस्कारों और शाला-निर्माण तथा कृषि-कर्मों का विधान है। इसमें प्रायः 16 संस्कारों, 5 महायज्ञों, 7 पाकयज्ञों, गृह-निर्माण, गृह-प्रवेश, पशुपालन, रोग-नाशक विधियों का विवरण है। ये भी शाखानुसार पृथक-पृथक हैं।

3. **धर्म सूत्र**—धर्म सूत्रों में नीति, धर्म, रीति, प्रथाओं, चारों वर्णों और

---

1. विष्णु मित्र-ऋग्वेद प्रातिशाख्य की वर्गद्वयवृत्ति, पृ० 13

आश्रमों के कर्तव्यों तथा सामाजिक, व्यवहारोपयोगी नियमों का विवरण है।

4. **शुल्ब सूत्र**—शुल्ब सूत्रों में यज्ञ-वेदियों के निर्माण से सम्बद्ध नाप तथा वेदि-निर्माण के विविध नियमों का विवरण है।

**श्रौतसूत्रों में अभिचारात्मक याग एवं अन्य अनुष्ठान** : वैदिक श्रौतयज्ञों के विषय में यह धारणा विद्यमान है कि यज्ञ के द्वारा न केवल देवताओं को प्रसन्न किया जा सकता है, अपितु दैवी शक्तियों को यज्ञकर्त्ता की सहायता अथवा उसकी मनोकामना की पूर्ति के लिए बाध्य भी किया जा सकता है।

श्रौत यज्ञों में तीन से पांच तक अग्नियों का प्रयोग किया जाता है, जो सोलह या सत्रह की संख्या तक के ऋत्विजों की सहायता से अनुष्ठित किए जाते हैं।

श्रौतयज्ञ दो प्रकार के होते हैं – 1. नित्य, 2. नैमित्तिक

नित्य याग वे होते हैं जिनका अनुष्ठान सभी द्विजों के लिए अनिवार्य है। यथा—अग्निहोत्र।

नैमित्तिक याग वे होते हैं जो किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए सम्पन्न किए जाते हैं। यथा—पुत्र के लिए पुत्रेष्टि या वर्षा के लिए कारीरी इष्टि।

कुछ भी हो, लेकिन यज्ञ-सम्पादन का मुख्य उद्देश्य देवता को प्रसन्न करके अपने अभीष्ट की सिद्धि करना ही है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देवता का यज्ञ-स्थली में मन्त्रों की सहायता से आह्वान किया जाता है कि वह स्वर्ग से यज्ञ-स्थल पर पधार कर उसके लिए समर्पित एवं परोसे गए अन्न आदि को ग्रहण करें। इस प्रकार आहूत देवता को मन्त्र-शक्ति से यज्ञ-स्थल पर आने एवं यजमान की सहायता करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इस प्रकार के कर्मों में सर्वथा स्वार्थ-सिद्धि की भावना ही प्रबल रहती है।

विभिन्न प्रकार की सिद्धियों के लिए कर्मकाण्ड में अनेक प्रकार के बाह्य उपायों का विधान भी किया गया है। किसी शत्रु के प्राणघात की अभिलाषा से प्रेरित यज्ञ के कर्त्ता के ऋत्विजों को रक्तवर्ण का उष्णीष धारण करने का निर्देश है। आहुति के लिए आज्य, रुग्ण गौ के मक्खन से तैयार किया जाता है एव सोमाभिषवणार्थ चर्म 'अनुस्तरणी' संज्ञक गौ का होना चाहिए। इसी प्रकार

'व्रात्यस्तोम' महाव्रत प्रभृति कर्मों में असुरों को दूर करने एवं सूर्य की सहायता करने क लिए ढोल पीटना तथा पुंश्चली के साथ सम्भोग करना अभीष्ट उर्वरता की सिद्धि के प्रतीक हैं।

श्रौतयज्ञों के ऋत्विजों में यजमान तक का नाश करने की सामर्थ्य होती है। ऋत्विजों के चयन (ऋत्विग्वरण) में छोटी सी-भी त्रुटि अथवा किसी मन्त्र के उच्चारण में स्वर का दोष आदि यज्ञ के फल को नष्ट करने अथवा उसे सर्वथा प्रतिकूल कर देने अथवा ऋत्विजों एव यजमान के जीवन को संशयाक्रान्त कर देने में समर्थ सिद्ध हो सकते हैं।

वैदिक यज्ञों में मन्त्रोच्चारण के प्रकार अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न प्रकार के मन्त्रों, मन्त्रांशों अथवा 'वौषट्' 'फट्' प्रभृति ध्वनियों के उच्चारण का विधान किया गया है, जिनके द्वारा शत्रु-नाश अथवा आत्मोन्नति एवं अभीष्ट-सिद्धि जैसे उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। मारण-उच्चाटन सदृश क्रूर-कर्मों की सिद्धि के लिए महाप्राण तथा सघोष वर्णों वाले मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। मंगलकारी शुभ कार्यों की सिद्धि के लिए अल्प-प्राण, अघोष कोमल वर्णों वाले मन्त्रों के प्रयोग का विधान है।

ऋग्वेदीय आश्वलायन श्रौत सूत्र में सत्रों के प्रसंग में अनेक प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति के लिए नाना प्रकार के कृत्यों का विधान है, वहीं पर आवश्यकतानुसार यथास्थान विभिन्न आभिचारिक कृत्यों का भी विवरण दिया गया है जिनमें पुरोहितों को वैसे ही 'लोहित उष्णीष' पहनने का निर्देश है जैसे अन्य श्रौतसूत्रों में विहित पूर्ण आभिचारिक यागों के ऋत्विजों के लिए।

श्रौतसूत्रों में यज्ञ के अवसर पर यजमान की काष्ठ-निर्मित तलवार का प्रयोग वेदि-स्थानीय भूमि को खोदने के लिए किया गया है और इसे 'अररु' नामक शत्रु समझ कर वरड़ी पर फेंक दिया जाता है।[1]

शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता की माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं से सम्बद्ध कात्यायन श्रौतसूत्र भी आभिचारिक यागों और अनुष्ठानों की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चूँकि इस श्रौतसूत्र के दो मुख्य प्रेरणा

1. शांखा० श्रौ० सू०, 4.4.2

स्रोत हैं—1. शतपथ ब्राह्मण, तथा 2. ताण्डय महाब्राह्मण। इसके अधिकांश भाग का विषय प्रतिपादन तथा विषयक्रम शतपथ ब्राह्मण के अनुरूप ही है। पिछले अध्याय 'ब्राह्मण ग्रन्थों में अभिचारपरक अंश' शीर्षक के अन्तर्गत शतपथ तथा ताण्डय महाब्राह्मण में निहित अभिचारपरक अंशों एवं कृत्यों के विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर दिए जाने के कारण प्रकृत स्थल पर केवल इतना उद्धृत करना ही पर्याप्त है कि कात्यायन श्रौतसूत्र के कुछ अध्याय (22 से 24) आभिचारिक यागों एव अनुष्ठानों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं जो पञ्चविंश अर्थात् ताण्ड्य महाब्राह्मण के अध्याय 16 से 25 पर आधृत हैं। इसके अतिरिक्त कात्यायन श्रौतसूत्र के 15वें अध्याय में उल्लिखित 'ताडन' कृत्य का यज्ञीय प्रयोग उल्लेखनीय है। राजसूय यज्ञ में राज्याभिषेक के अवसर पर पुरोहित द्वारा राजकुमार को धीरे-धीरे पीटा जाता था। हमारे विचार से इस कृत्य के पीछे यह धारणा रही होगी कि ऐसा करने से राजकुमार को अज्ञात ही पीड़ा पहुँचाने वाली दुष्ट शक्तियाँ भाग जाएँगी।[1] इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में विवेचित यज्ञ के अवसर पर दण्ड का प्रयोग भी कात्यायन श्रौतसूत्र में मान्य है। सोमयाग में मैत्रावरुण पुरोहित हाथ में दण्ड धारण करके आग की ओर झुककर दैत्यों को यज्ञ स्थल से हटाने के लिए तैयार खड़ा होता है।[2] सोम याग के अवसर पर ही सोम का सवन होते समय उस व्यक्ति को जो अपने किसी शत्रु को मारना चाहता है, सोचना चाहिए कि वह उसे सावनिक पत्थरों से पीस रहा है—बस पीसने का शत्रु पर सीधा प्रभाव पड़ जाएगा।

इस प्रकार श्रौत यज्ञों के निष्पादन में सक्रिय विविध अनुष्ठानों और यजमान के मानसिक विचारों का विपुल सामञ्जस्य स्थापित किया गया है।

कृष्ण यजुर्वेदीय बौधायन श्रौतसूत्र में 'इष्टिकल्प' अन्तर्गत विभिन्न काम्येष्टियों तथा अभिचार कर्मों का विधान है जिनमें से एक अभिचार शत्रु को कुष्ट रोग से आक्रान्त करने के लिए और स्वयं को इसके आक्रमण से सुरक्षित रखने के लिए भी है।

औपानुवाक्य में राष्ट्र भृतों द्वारा राष्ट्र के हितार्थ तथा युद्ध में शत्रुओं पर विजयार्थ अनुष्ठानों का भी प्रतिपादन किया गया है।

---

1. कात्या॰ श्रौ॰ सू॰, 15.7.6
2. कात्या॰ श्रौ॰ सू॰, 6.4.6 एवं आप॰ श्रौ॰ सू॰, 3.1.20

प्रश्न 18 में उत्तरातति (एकाह) के अन्तर्गत भी अनेक आभिचारिक कृत्यों का उल्लेख हुआ है।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में बौधायन श्रौतसूत्र की अपेक्षा अधिक विस्तार से अभिचार कर्मों का विधान किया गया है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में अभिचार मन्त्रों का स्वरूप इस प्रकार है—'हतोऽसौ फट्'।[1] प्रवर्ग्य के पश्चात् एक वर्ष तक अनेक प्रकार के व्रत करने का विधान है। प्रतीक रूप में मानव-आकृति के खण्ड विभिन्न देवताओं के लिए विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु समर्पित किए जाते हैं, जिनमें विद्वेष करने वाले शत्रु को, नाम लेकर मारना भी सम्मिलित है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में वर्णित राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत सौत्रामणी यज्ञ तो नमुचि को मारने के पश्चात् सोम से मदमत्त इन्द्र की चिकित्सा की कथा का एक जीवन्त अनुकरण है। इसमें सुरा और सोम दोनों इन्द्र को समर्पित किए जाते हैं। इस यज्ञ का सम्पादन यजमान को चाहे वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में क्यों न रहे, उसकी अभिलाषित सफलता प्राप्त कराने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक विशेष प्रकार के कौकिली सौत्रामणी कर्म का भी विधान किया गया है।

वाजपेय याग के अवसर पर रथ की दौड़ यजमान की प्रकर्ष प्राप्ति के लिए एक आभिचारिक अनुष्ठान का द्योतक है क्योंकि इस कृत्य में दिखाई गई दौड़ में उसे विजयी बना दिया जाता है।[1]

मशक या मशक गार्ग्य द्वारा रचित सामवेद से सम्बद्ध आर्षेय कल्प या मशक कल्पसूत्र में विभिन्न सोम यागों में गाये जाने वाले स्तोमों की क्लृप्तियों का विवरण दिया गया है। इस सूत्र में एकाह से लेकर सहस्र संवत्सर पर्यन्त सोम यागों की सर्वाधिक विशाल किन्तु शुष्क तालिकाएं दी गई हैं। इस कल्प में विभिन्न यागों का सामविषयक विवरण देते समय पञ्चविंश (ताण्ड्य) ब्राह्मण का सूक्ष्म अनुसरण किया गया है। यद्यपि श्येन याग, संदंश याग, इषु याग तथा वज्र जैसे एकाह अभिचार यागों का विवरण पञ्चविंश ब्राह्मण में नहीं दिया गया है किन्तु षड्विंश ब्राह्मण में दिया गया है तो भी इस सूत्र ने इन यागों के परिप्रेक्ष्य में षड्विंश ब्राह्मण का अनुकरण न करके यजुर्वेदीय परम्परा को ही

---

1. आप० श्रौ० सू०, 12.11.10
2. तत्रैव, 5.19.2

आत्मसात किया है, जहाँ श्येन याग साद्यस्क्र के पश्चात् तथा इषु याग बृहस्पति सव के पश्चात् एवं संदंश तथा वज्र याग एकाह यागों के अन्त में वर्णित हैं।

श्येन याग एक अभिचार याग है जिसका उल्लेख पञ्चविंश ब्राह्मण में है। इसका विस्तृत विवरण षड्विंश ब्राह्मण में दिया गया है। इसमें श्रमिक लोग ऋत्विज् होते हैं, किन्तु उन्हें भी वेदविद् होना आवश्यक बताया गया है। ये रक्त वर्ण के वस्त्र धारण करते है तथा रक्त वर्ण की उष्णीष (पगड़ी) बांधते हैं। ये धनुष-बाण चढ़ाए रहते हैं तथा दक्षिणार्थ लाई गायों को तीक्ष्ण धार वाले अस्त्रों-शस्त्रों से बींध कर उनका रक्तस्राव करते हैं। ये यज्ञोपवीती न होकर 'निवीती' रहते हैं।

चार व्रात्य स्तोमों का निरूपण सस्कारविहीन व्रात्यों के द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले प्रायश्चितों के रूप में हुआ है। ये स्तोम हैं—चतुः षोडशी, षट् षोडशी, द्विषोडशी तथा शमनीचमेढ्राणां। ये चारों कृत्य 'निकायिनः' कहे जाते हैं। इनमें से अन्तिम स्तोम बद्ध तथा क्षीण-कामवासना वाले लोगों के लिए अनुष्ठेय बताया गया है।

इस श्रौतसूत्र में चार अग्निष्टुत यागों का भी विधान है। ये चारों याग भी निकायिनः की कोटि में आते हैं। इनमें से प्रथम तीन तो विविध प्रकार के पापों के लिए प्रायश्चित्त याग स्वरूप हैं, किन्तु चतुर्थ अन्नाद्यकाम रूप अभिचार कर्म ही प्रतीत होता है क्योंकि इसके करने से अन्न तथा भोज्य पदार्थों की कामना-पूर्ण होती है।

त्रिवृदग्निष्टोम में चार कर्मों का विवरण प्राप्त होता है जिनका सम्पादन वस्तुतः किसी अभीष्ट की पूर्ति हेतु ही किया जाता है। ये चार कर्म हैं—

1. **प्रजापतेरपूर्व** : यह कर्म उन लोगों के लिए करणीय है जिनके ध्येय पूर्ण नहीं हो पाते हैं।

2. **बृहस्पति सव** : ये कर्म केवल पौरोहित्य की कामना करने वाले के लिए करणीय हैं।

3. **इषु याग** : ये श्येन याग सदृश ही अभिचार कर्म हैं जिसका विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में षड्विंश ब्राह्मण के अभिचार यागों के अन्तर्गत किया जा चुका है। इस याग का सम्पादन शत्रु के मारणार्थ ही किया जाता है।

**4. सर्वस्वार (शुनंकर्ण स्तोम) :** यह एक काम्य कर्म है जो सुत्या के दिन देहावसान होने की इच्छा रखने वाले के लिए करणीय है।

चतुर्थ अध्याय में उल्लिखित तीव्रसुत (उक्थ्य संस्था) सोमयाग के पश्चात् अनायास ही हो जाने वाले किसी अपराध या त्रुटि के लिए प्रायश्चित याग है, जो क्लृप्ति में आयुष्टोम से समानता रखता है।

पंचम अध्याय में विभिन्न एकाह यागों का विवरण उपलब्ध होता है। इन्ही के अन्त में संदंश तथा वज्र नामक दो आभिचारिक यागों का वर्णन है। इनमें से प्रथम संदंश याग तो राजा के विरुद्ध प्रयोग में लाया गया है और द्वितीय वज्र याग का निष्पादन जनपद के विरुद्ध करने का विधान है। इन दोनों ही यागों की सम्पादन विधि षड्विंश ब्राह्मण में कथित संदंश और वज्र यागों के सदृश ही है।

सामवेदीय क्षुद्रकल्प में एक दिन से लेकर कई वर्षों तक अनुष्ठीय मान सोम यज्ञों में प्रयोज्य सामगानों का परिगणन किया गया है। इस कार्य हेतु इसमें पञ्चविंश ब्राह्मण का अनुसरण किया गया है।

प्रथम अध्याय में केवल काम्येष्टियों तथा तत्सम्बन्धी कर्मों में प्रयोज्य सामों, विष्टुतियों, स्तोमो तथा स्त्रोत्रीयों का विवरण दिया गया है। इस अध्याय में परिगणित कृत्यों में चौदह प्रतिपत्, नौ ब्रह्मसाम, एक ज्योतिष्टोम तथा सात उक्थ्य याग सम्मिलित हैं। इन सभी को 'काम्य' सज्ञा से अभिहित किया गया है। इनमें से कई ऐसे भी काम्य कृत्य हैं जिनकी अभीष्ट कामनाओं का उल्लेख नहीं किया गया है।[1] अतः इसके ज्ञान के लिए हमें ब्राह्मण-ग्रन्थों पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। इस सूत्र में एक विचित्र बात यह भी है कि यहाँ श्येन तथा भ्रातृत्व सदृश अभिचार कर्मों तथा विभ्रष्ट यज्ञ सदृश प्रायश्चित कर्मों में 'ब्रह्मसाम' का प्रयोग होने से इन कर्मों की गणना ब्रह्मसामिकों के अन्तर्गत ही की गई है।

द्वितीय अध्याय में तीन अतिरात्रों तथा दस प्रायश्चित यज्ञों का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ भी प्रतिष्ठाकाम तथा पशुकाम दो समान लक्ष्य वाले अतिरात्रों तथा ब्रह्मसामिकों एवं उक्थ्यों का उल्लेख समान संज्ञा से किया गया है।

---

1. क्षुद्र कल्प, 1.1.8-9

सामवेदीय लाट्यायन श्रौतसूत्र में श्येन याग के लिए 'व्रातीन' योद्धा ब्राह्मणों के 'अनूचान' पुत्रों को ऋत्विज् बनाने का विधान है।[1] ये लोग भी अन्य श्रौत सूत्रों में वर्णित ऋत्विजों की भाँति ही लोहित वर्ण के वस्त्र एवं रक्त वर्णीय पगड़ी ही धारण करते थे। इस प्रकार के नियमों एवं व्यवस्था से प्रकट होता है कि तत्कालीन ब्राह्मणों का जीवन कष्टमय होता था और वे आजीविकोपार्जनार्थ संघ बनाकर रहते थे और विविध प्रकार के परिश्रम साध्य कार्यों को भी अपना लेते थे।

आभिचारिक कृत्यों की दृष्टि से इस श्रौतसूत्र का नवम प्रपाठक उल्लेखनीय है जिसमें राजसूय याग का प्रतिपादन होने के साथ ही कई अन्य छोटे-मोटे कृत्य भी विहित हैं। जिनमें वैश्य के लिए गो सव का विधान है और राजा तथा प्रजा के विरुद्ध अभिचारों का भी विवरण दिया गया है। सहस्र पशु-प्राप्ति के लिए एक शबली होम का भी विधान है। जिसमें होमानन्तर यजमान वन में जाकर शबली-शबली पुकारता है। वन में यदि किसी कुत्ते के भौंकने अथवा गधे के रेंकने का शब्द सुनाई पड़े तो होम को असफल मानना चाहिए और पशु-प्राप्ति की आशा नहीं करनी चाहिए।

सामवेदीय निदान सूत्र के सातवें प्रपाठक में विजिघांसद् यज्ञ तथा अभिचरणीय एकाह का विवरण प्राप्त होता है।

## श्रौतसूत्रों में प्रमुख काम्य याग

**1 पशु बन्ध या निरुढ पशुबन्ध :** पशुबन्ध की मान्यता सामान्यतः स्वतन्त्र याग के रूप में नहीं है। सोमयज्ञों में इसका सम्पादन उनका एक अभिन्न अंग माना जाता है। स्वतन्त्र पशुयज्ञ को निरुढ-पशुबन्ध (आँत निकाले हुए पशु की आहुति) कहा जाता है। जिस प्रकार बहुत सी काम्येष्टियाँ होती हैं, उसी प्रकार सम्पत्ति, ग्रामों, यश आदि के लाभार्थ विभिन्न पशु बलि दिए जाते हैं। यथा—समृद्धि के लिए श्वेत पशु वायु को, ग्राम के लिए कोई पशु नियुत्वान को, वाक्पटुता के लिए भेड़ सरस्वती को भेंट किए जाते हैं।[2] जैमिनि सूत्र के अनुसार निरुढ-पशु सोमयाग में प्रयुक्त पशुबलि का परिमार्जन मात्र है।[3] आश्वलायन के

1. लाट्यायन श्रौतसूत्र, 8.5.1
2. आप० श्रौ० सू०, 19.16.17; आश्व० श्रौ० सू०, 3.7 एवं 3.8
3. जैमिनि सूत्र, 8.1.13

मत से पशुबन्ध के पूर्व या पश्चात् विकल्प से कोई इष्टि की जा सकती थी और वह या तो अग्नि अथवा अग्नि-विष्णु अथवा अग्नि और अग्नि-विष्णु के लिए होती थी।[1] इस यज्ञ में केवल एक वेदि बनाई जाती है। वेदि की पूर्व दिशा के उत्तरी कोण से लेकर शम्या (32 अंगुल) वर्ग का परिमाण का एक गड्ढा खोदा जाता है जिसे चात्वाल कहते हैं। इस यज्ञ के लिए ग्यारह यूपों को गाड़ने की प्रथा है।

बलि का पशु सुगन्धित जल से नहलाया जाता है और चात्वाल तथा उत्कर के बीच में रखा जाता है। उसका मुख पश्चिम में यूप के पूर्व होता है। बलि का पशु नर होता है तथा जो अपंग न हो अर्थात् वह टूटे सींगों वाला, कनकटा, दन्त-रहित अथवा पुच्छ विहीन न हो। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के अनुसार उपर्युक्त में से कोई दोष होने पर शुद्धि के लिए विष्णु, अग्नि विष्णु, सरस्वती या बृहस्पति को आज्य की आहुति देने का विधान है।[2]

पशु की बलि इन्द्र-अग्नि, सूर्य या प्रजापति के लिए दी जाती है और बलि करने वाले को प्रत्येक पशुबन्ध में जीवन भर उस देवता के लिए, जिसे वह प्रथम बार चुनता है, ऐसा करना पड़ता है।[3] इसके पश्चात् पशु की बलि दी जाती है और उसकी आँते एक विशिष्ट गड्ढे में दबा दी जाती हैं। पशु-विशसन के समय यजमान उसकी स्वर्ग प्राप्ति-हेतु मन्त्रोच्चारण करता है। पशु के मरने के बाद यजमान पत्नी उसके अंगों का परिमार्जन करती है और अध्वर्यु पशु के विभिन्न अंगों वो पृथक् करता है। हृदय को छोड़कर शेष अंगों को उखा में पकाया जाता है। जैमिनि सूत्र के मत से मांस पकाने का कार्य शालामुखीय अग्नि पर होता है न कि शामित्र अग्नि पर।[4] हृदय को एक अरत्नि लम्बी लकड़ी में खोंसकर पृथक् रूप से भूना जाता है।

**उक्थ्य या उक्थ :** आपस्तम्ब श्रौतसूत्रानुसार उक्थ्य, षोडशी अतिरात्र एवं आप्तोर्याम का सम्पादन उन्हीं लोगों के द्वारा किया जाता है जो पशु शक्ति, सन्तति एवं सभी वस्तुओं के अभिकांक्षी होते हैं।[5] उक्थ्य में अग्निष्टोम के

1. आश्व० श्रौ० सू०, 3.1.2-6
2. आप० श्रौ० सू०, 7.12.3
3. कात्या० श्रौ० सू०, 6.3.29-30
4. जैमिनि सूत्र, 12.1.12
5. आप० श्रौ० सू०, 14.1.2

समान बलि दिए जाने वाले पशुओं के अतिरिक्त बकरी की भी बलि दी जाती है।[1] उक्थ्य में गेयशस्त्र कुल 15 होते हैं।

**षोडशी यज्ञ :** इस यज्ञ में उक्थ्य के 15 स्तोत्रों के अतिरिक्त एक अन्य स्तोत्र एवं शस्त्र का गायन एवं पाठ होता है जिसे तृतीय सवन में षोडशी के नाम से पुकारा जाता है। आपस्तम्ब के मत से प्रातःकाल या अन्य कालों में रस रखने के लिए एक अधिक पात्र भी रख दिया जाता है।[2] यह पात्र खदिर वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता है और इसका आकार चतुष्कोण होता है। इस यज्ञ में इन्द्र के लिए एक भेड़ देने का भी विधान है और दक्षिणास्वरूप लोहित-पिंगल घोड़ा या मादा खच्चर होती है।[3]

**अतिरात्र :** श्रौतसूत्रों में अतिरात्र यज्ञ को भी धन समृद्धि एवं कामनाओं का पूरक माना गया है। इस यज्ञ का नाम ऋग्वेद (7.103.7) में भी आया है। यह एक दिन और रात्रि में समाप्त होने वाला यज्ञ है। इसीलिए इसका नाम अतिरात्र हुआ। आपस्तम्ब के अनुसार कुछ लोगों का मत है कि यह अग्निष्टोम के पूर्व सम्पादित होता है और इसमें 29 स्तोत्र एवं 29 शस्त्र होते हैं।[4] किन्तु आश्वलायन के अनुसार इसमें 12 शस्त्र होते हैं।[5] इस यज्ञ में सोम रस निकालने के दिन सरस्वती को एक भेड़ चढ़ाई जाती है। इसका विस्तृत विवेचन ऐतरेय ब्राह्मण (14.3 एवं 16.4-7) में दिया गया है।

**अप्तोर्याम :** आश्वलायन श्रौतसूत्र के मत से यह यज्ञ उन लोगों के द्वारा सम्पाद्य है जिनके पशु जीवित नहीं रहते या जो अच्छी नस्ल के पशु के अभिकांक्षी होते हैं। यह यज्ञ अतिरात्र के सदृश ही है। इस यज्ञ की दक्षिणा सहस्रों गौए होती हैं। होता को रजतजटित तथा गदहियों से खींचा जाने वाला रथ मिलता है। बहुधा यह यज्ञ अन्य यज्ञों के साथ किया जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण (20.3.4-5) का कहना है कि इसका नाम अप्तोर्याम इसलिए पड़ा कि इसके

---

1. आश्व० श्रौ० सू०, 6.1.1-3; आप० श्रौ० सू०, 14.1
2. आप० श्रौ० सू०, 14.2.4-5
3. आश्व०श्रौ०सू० 6.2.3, आप०श्रौ०सू०, 14.2.3; सत्या०श्रौ० सू०, 9.7
4. आप० श्रौ० सू०, 10.2.4
5. आश्व० श्रौ० सू०, 6.4.10

द्वारा अभिकांक्षित वस्तु प्राप्त होती है।

**वाजपेय याग :** आश्वलायन[1] तथा आपस्तम्ब[2] श्रौतसूत्र के अनुसार यह कृत्य उसके द्वारा किया जाता था जो आधिपत्य या समृद्धि अथवा स्वराज्य का अभिलाषी होता था। इस याग का सम्पादन केवल ब्राह्मण या क्षत्रिय ही कर सकता था वैश्य नहीं।[3] इस यज्ञ में 17 की संख्या को प्रमुखता प्राप्त है, यथा—स्तोत्रों एवं शस्त्रों की संख्या 17 होती है। 17 पशुओं की बलि होती हैं। दक्षिणा में 17 वस्तुएं दी जाती हैं। यूप 17 अरत्नियों का लम्बा होता है। यूप का परिधान भी 17 टुकड़ों वाला होता है आदि।

**कुछ अन्य अभिचारपरक एकाह याग :** आश्वलायन (9 5.11), बौधायन (18.11-10), कात्यायन (22) आदि ने भी कुछ एकाह यागों का विवरण प्रस्तुत किया है जिन्हें आभिचारिक दृष्टि से उल्लिखित करना आवश्यक प्रतीत होता है—

**बृहस्पति सव :** तैत्तिरीय ब्राह्मण (2.7.1), आपस्तम्ब (22.7.5), आश्वलायन (9.5.3) के अनुसार बृहस्पति सव एक प्रकार का एकाह सोमयज्ञ है जो आधिपत्य के अभिलाषी द्वारा किया जाता है। आश्वलायन (9.5.3) ने ब्रह्म वर्चस (आध्यात्मिक महत्ता) के अभिलाषी के लिए इसे करने को कहा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (2.7.1) ने राज-पुरोहित पद की प्राप्ति हेतु इसे करणीय बताया है।

**गोसव :** एक अति विचित्र यज्ञ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (2.7.6) ने संक्षेप में इसका वर्णन किया है। स्वराज्य का इच्छुक व्यक्ति इसे करता है। आपस्तम्ब के अनुसार इस यज्ञ के पश्चात् साल भर यजमान को पशु व्रत अर्थात् पशु की भाँति आचरण करना पड़ता है। उसे पशु के समान जल पीना, घास चरना, कुटुम्ब-व्यवहार आदि करना पड़ता है।[4]

---

1. आश्व० श्रौ० सू०, 9.9.1
2. आप० श्रौ० सू०, 18.1.1
3. लाट्यायन श्रौ० सू०, 8.11.1; कात्या० श्रौ० सू०, 14.1.1 एवं आप० श्रौ० सू०, 18.1.1
4. "तेनेष्ट्वा संवत्सरं पशुव्रतो भवति। उपावहायोदकं पिबेत्तृणानि चाच्छिन्द्यात्। उपमातरमियादुप स्वसारमुप सगोत्रम"

   आप० श्रौ० सू०, 22.13.1-3

**सर्वस्वार** : यह उस व्यक्ति के द्वारा करणीय बताया गया है जो यज्ञ करते करते स्वर्ग की प्राप्ति के लिए मर जाना चाहता है। इस यज्ञ को शुनः-कर्णोग्निष्टोम कहा जाता है।[1]

**काम्येष्टियां** : श्रौतसूत्रों में बहुत-सी ऐसी इष्टियों के सम्पादन के नियम पाए जाते हैं जो विशिष्ट घटनाओं, अवसरों या वाञ्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिए की जाती है। आश्वलायन श्रौतसूत्र, आपस्तम्ब श्रौतसूत्र तथा अन्य श्रौतसूत्रों ने बहुत-सी इष्टियों के नाम लिए हैं जो निम्न हैं :

**आयुकामेष्टि** : इस इष्टि के सम्पादन का निर्देश उन व्यक्तियों के लिए है जो लम्बी आयु की अभिकांक्षा रखते हैं।

**स्वस्त्ययनी** : इस इष्टि का सम्पादन यात्रा के शुभ होने एवं यात्रा में आने वाली बाधाओं से सुरक्षित रहने के लिए किया जाता है।

**पुत्रकामेष्टि**[2] : पुत्र उत्पन्न होने अथवा दत्तक पुत्र की प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले के लिए यह इष्टि करणीय है।

**लोकेष्टि, महावैराजी**[3] **या मित्र विन्दा**[4] : ये इष्टियाँ उन लोगों के द्वारा करणीय हैं जो सम्पत्ति, राज्य, मित्रों एवं लम्बी आयु की अभिलाषा रखते हैं। इसमें दस देवों की पूजा की जाती है।

**संज्ञानी इष्टि एवं कारीरीष्टि** : दो लोगों अथवा समूहों के मध्य में विवाद हो जाने पर उनमें समझौते (मानसिक, वैचारिक) के लिए संज्ञानी इष्टि के सम्पादन का एवं वृष्टि के इच्छुक व्यक्ति के लिए कारीरीष्टि के सम्पादन का विधान है।[5] तैत्तिरीय संहिता (2.4.7-10) के अनुसार कारीरीष्टि में यजमान काले अञ्चल वाले वस्त्र को धारण करता है।

---

1. तां ब्रा०, 17.12.5; जैमिनिसूत्र, 10.2.57-61
2. आश्व० श्रौ० सू०, 2.10.8-9
   कालिका पुराण (व्यवहार मयूख, पृ० 114) के मत से पांच वर्ष वाले या उससे बड़े पुत्र को गोद लेने वाला पुत्रेष्टि करता है।
3. आश्व० श्रौ० सू०, 2.11.1-4
4. कात्या० श्रौ० सू०, 5.12; शतपथ ब्राह्मण, 11.4.3
   आश्व० श्रौ० सू०, 2.13.1-13; आप० श्रौ० सू०, 19.25.16

**तुरायण एवं दाक्षायण इष्टि**[1] : इन इष्टियों का सम्पादन भी विभिन्न कामनाओं की पूर्ति हेतु किया जाता है ।

**सौत्रामणी यज्ञ** : इस यज्ञ के दो रूप हैं : (1) कौकिली एवं (2) चरक-सौत्रामणी या साधारण सौत्रामणी । इनमें से कौकिली वस्तुतः आभिचारिक कृत्य ही प्रतीत होता है क्योंकि यह यज्ञ उन लोगों के द्वारा सम्पादित होता है, जो सम्पत्ति के इच्छुक होते हैं अथवा जिनका राज्य छिन गया है या जो पशुधन चाहते हैं ।[2] कौकिली कृत्य का सम्पादन स्वतन्त्र रूप से होता है । इस कृत्य के आरम्भ एवं अन्त में अदिति को चरु प्रदान किया जाता है । लाट्यायन श्रौत-सूत्र[2] के मत से केवल कौकिली में साम-मन्त्रों का वाचन होता है अन्य प्रकारों में नहीं । आपस्तम्ब श्रौत्रसूत्र[4] के अनुसार सामान्य सौत्रामणी की विधि निरुढ-पशुबन्ध के समान होती है और यही बात कौकिली के विषय में लागू होती है । सौत्रामणी कृत्य के सम्पादन में चार दिन लग जाते हैं । प्रथम तीन दिनों तक विविध पदार्थों से सुरा बनाई जाती है और अन्तिम दिन दूध तथा सुरा की तीन-तीन प्यालियां अश्विनी, सरस्वती एवं इन्द्र को समर्पित की जाती हैं तथा इन्हीं तीन देवों के लिए पशु-बलि का भी विधान है ।

**अश्वमेध यज्ञ** : आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार सभी पदार्थों के इच्छुकों, सभी विजयों के (स्वइन्द्रिय विजय के लिए भी) अभिलाषियों तथा अतुल समृद्धि के कांक्षियों द्वारा अश्वमेध यज्ञ किया जाता है ।[5]

## गृह्यसूत्रों में आभिचारिक कर्म

**गृह्यसूत्रकालीन समाज में व्याप्त आभिचारिक क्रियाएं** : प्राचीन समय में लोगों का जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण था । उस समय के लोग अपना जीवन सुख-समृद्धि एवं वैभवपूर्ण व्यतीत करने के इच्छुक होते थे जिसके लिए वे निरन्तर प्रयासरत रहते थे । इसीलिए उनके द्वारा अनुष्ठित प्रत्येक कर्म के

---

1. आश्व० श्रौ० सू०, 2.14.4-6, 2.14.7-10
2. कात्या० श्रौ० सू०, 19.1.2-4
3. लाट्यायन श्रौ० सू०, 5.4.21
4. आप० श्रौ० सू०, 19.1.2
5. सर्वान् कामानाप्स्यन् सर्वा विजितीर्विजिगीषमाण: सर्वा व्युष्टीर्व्यशिष्यन्न-श्वमेधेन यजेत । आश्व० श्रौ० सू०, 10.6.1

पृष्ठ में सदैव सुख-समृद्धिपूर्ण एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करने की कामना ही रहती थी। इतना सब होते हुए भी तत्कालीन समाज के लोगों में कुछ संशयात्मक धारणाएं एवं अन्धविश्वास प्रचलित थे जिसकी पुष्टि गृह्यसूत्रों पर दृष्टिपात करने से होती है :

उस समय लोगों में कन्या के विवाह के पूर्व ही उसके भविष्य को ज्ञात करने की प्रथा थी जिसके लिए विवाह के पूर्व विभिन्न स्थानों, यथा, जुती हुई भूमि, यज्ञ भूमि, जलाशय एवं द्यूतगृह आदि की मृत्रिका से निर्मित पिण्डों को कन्या के सम्मुख रखा जाता था और यह विश्वास किया जाता था कि जुती हुई भूमि से निर्मित पिण्ड को उठाने वाली कन्या अनेक पुत्रों को जन्म देगी। यज्ञ-भूमि, जलाशय और गोष्ठ की मृत्तिका से निर्मित पिण्ड को उठाने वाली कन्या-क्रमशः धार्मिक क्रियाओं में सहायता प्रदान करने वाली, पति को प्रसन्न और तृप्त रखने वाली तथा पशुओं की समृद्धि करवाने में सहायक होगी, जबकि द्यूत-स्थान की मृत्तिका से निर्मित पिण्ड को उठाने वाली कन्या कलहप्रिया होगी। श्मशान की मृत्तिका से निर्मित पिण्ड को उठाने वाली कन्या के पति की मृत्यु शीघ्र हो जाएगी तथा ऊसर भूमि के मृत्तिका-पिण्ड को उठाने वाली कन्या बन्ध्या होगी, ऐसी मान्यता थी। कुछ आचार्यों का मत है कि मिश्रित मृत्तिका के पिण्ड को उठाने वाली कन्या से ही विवाह करना चाहिए।[1]

इसी प्रकार पाणि-ग्रहण के समय पत्नी का अगुष्ठ पकड़ने से केवल पुत्र ही उत्पन्न होते हैं तथा केवल अंगुलियाँ पकड़ने से पुत्रियाँ ही जन्म लेती हैं किन्तु यदि पत्नी की अंगुलियाँ और अंगुष्ठ दोनों ही पकड़े जाएँ तो स्त्री एवं पुरुष दोनों ही सन्तानें उत्पन्न होती हैं।

गर्भाधान के अवसर पर सम-रात्रियों में गर्भाधान करने से पुरुष सन्तान बिषम रात्रियों में गर्भाधान करने से स्त्री सन्तान उत्पन्न होती है।[2] यदि पति-पत्नी गृह्यसूत्रों में निर्दिष्ट विधि से तीन या बारह दिन तक, एक, चार या छः मास तक अथवा एक वर्ष तक व्रत रख कर गर्भाधान करें तो उनके ऐसी पुरुष सन्तान होगी जो भविष्य में क्रमशः, श्रोत्रिय, अनूचान, ऋषि कल्प, भ्रूण, ऋषि और देव बनेगीं।

---

1. गो० गृ० सू०, 2.1.4-9
2. खादिर, द्राह्यायण गृ० सू०, 1.4.15,16

लोगों में यह विश्वास था कि जन्म लेने वाली सन्तान का नाम गुप्त रखकर भी उन्हें समस्त अभिचारों के प्रभाव से बचाया जा सकता है।

प्रसव हो जाने के बाद प्रसूतिका तथा शिशु की रक्षा हेतु उनके समीप एक जलपात्र रखने का विधान था और विभिन्न रोगों तथा अमानवीय शक्तियों से शिशु एवं माता की रक्षा करने के लिए सूतिकाग्नि में सरसों और धान के छिलकों से होम करने का विधान था।[1] आज भी विभिन्न परिवारों में प्रसूतिका एव शिशु की रक्षा हेतु उनके निकट अग्नि जलाने एवं लोहे का छुरा या धारदार कोई औजार रखने की प्रथा है।

इसी प्रकार मधुपर्क प्रदान करते समय गौ का आलभन करने से अतिथि और आतिथेय दोनों के पापों के नाश का विश्वास प्रचलित था।

प्राचीन समय में वृद्ध लोगों की यह धारणा थी कि श्राद्ध के दिन पितर काक और श्येन का रूप धारण करके आते हैं। अतः श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराने एवं अन्य वस्तुएं प्रदान करने से पितर तृप्त हो जाते हैं।[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रमाणित हो जाता है कि गृह्यकालीन समाज में लोग विभिन्न प्रकार के टोने-टोटके एवं आभिचारिक क्रियाओं पर विश्वास रखते थे और उनसे सम्भावित अनिष्टों से बचने के लिए विभिन्न उपायों का आश्रय लेते थे।

अतः वैदिक साहित्य के अन्तर्गत गृह्यसूत्रों में भी विभिन्न प्रकार की आभिचारिक क्रियाओं का और उनसे मुक्ति के लिए अभिचार कर्मों का विवरण उपलब्ध होता है।

## विभिन्न गृह्यसूत्रों में अभिचार कर्म एवं अन्य अनुष्ठान

**पुत्रोत्पत्ति के लिए अभिचार :** चारों वेदों से सम्बद्ध विभिन्न गृह्यसूत्रों में पुरुष सन्तान की प्राप्ति हेतु विभिन्न प्रकार के कर्मों एवं पत्नी के नासिकाछिद्र में विभिन्न जड़ी-बूटियों के चूर्ण को डालने का विधान किया गया है। इस कर्म को अधिकांश गृह्यसूत्रों में पुंसवन संस्कार के नाम से अभिहित किया

1. जैमि० गृ० सू०, 1.18
2. जैमि० गृ० सू०, 27.13, 20; गो० गृ० सू०, 4.3.21; खादिर, द्राह्यायण-गृ० सू०, 3.5-31

गया है। वास्तव में इस संस्कार का नामकरण एक आभिचारिक कृत्य के आधार पर ही किया गया है क्योंकि इसके करने से पुत्रोत्पत्ति ही होती है—

'पुमान् प्रसूयते येन तत् पुंसवनमीरितम'।[1]

सामवेदीय गृह्यसूत्रों में गर्भाधान के तृतीय मास के प्रथम एवं तृतीय भाग में पुंसवन संस्कार करने का विधान है।[2] यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों में भी इस संसार के लिए यही समय बताया गया है।[3] अथर्ववेदीय कौशिश सूत्र में इस संस्कार के लिए पंचम मास का विधान है।[4]

इस संस्कार के प्रारम्भ में वधू प्रातःकाल शिर से स्नान करके उत्तराभिमुख बिछे हुए कुशों के ऊपर अग्नि के पश्चिम की ओर स्वयं पूर्वाभिमुख होकर पति के दाहिनी ओर बैठती है। पत्नी के पीछे पूर्वाभिमुख खड़े होकर पति को दाहिने हाथ से मूक होकर 'पत्नी के दाहिने कन्धे का स्पर्श करना चाहिए। पश्चात् 'पुंमासौ मित्रावरुणौ' इत्यादि मन्त्र के द्वारा पत्नी की नाभि का स्पर्श करना चाहिए।[5] आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा जैमिनी गृह्यसूत्र के अनुसार पति यव, सर्षप और दधि का मिश्रण निर्दिष्ट मन्त्र "प्रजापतिः···जीवसूर्भयासम्" से करते हुए उस मिश्रण को पत्नी को खाने के लिए देता है।[6]

तत्पश्चात् पुंसवन संस्कार हेतु पूर्वोत्तर दिशा में वटवृक्ष की ऐसी डाली को रखा जाता है जो नवीन पत्तों (कोपलों) से युक्त हो तथा जिसमें दोनों ओर फल लगे हों; जो मलिन न हो और जिसमें कीड़े न लगे हों। इस टहनी को इक्कीस यव अथवा उड़द देकर क्रय करने का विधान है। टहनी के क्रय के समय सोम, वरुण, वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत और विश्वेदेवो के सम्बन्ध में मन्त्र पढ़े जाते हैं।[7] तदनन्तर टहनी उत्थापन का मन्त्र पढ़ा जाता है[8] और

1. 'पुंसवन' शब्द अथर्ववेद, में भी उल्लिखित है जिसका शाब्दिक अर्थ है—पुत्र सन्तान को जन्म देना। अथर्ववेद, 6.11.1
2. गो० गृ० सू०, 2.6.1; खादिर, द्राह्यायण गृ०सू०, 2.2.17
3. पार० गृ० सू० 1.14.3; वा० गृ० सू०, 16.5
4. कौशिक सूत्र, 4.35.1
5. गो० गृ० सू० 2.6.3,4; खादिर, द्राह्यायण गृ०सू०, 2.2.18.19
6. जैमि० गृ० सू० 1.5; आश्व० गृ० सू०—1.13.2-4
7. गो० गृ० सू० 2.6.7-11, खादिर, द्राह्यायण गृ० सू०, 2.2.21
8. खादिर तथा द्राह्यायण गृ० सू० 2.2.20,21

मन्त्रोच्चार पूर्वक टहनी को उठाकर तिनकों से ढककर आकाश की ओर उठाकर यह कहना चाहिए—'हे औषधिगण ! तुम सब प्रसन्न होकर वधू में वीर्य साधन करो, जिससे यह वधू कष्टरहित होकर गर्भ प्रसव करे। तत्पश्चात् वट वृक्ष की डाली को धोकर, ब्रह्मचारी, पतिव्रता, ब्रह्मबन्धु अथवा कुमारी उसे कूट-कूटकर पीसती है। प्रातःकाल सिर से स्नान करके वधू उत्तराभिमुख और अग्नि के पश्चिम की ओर पूर्वोत्तराभिमुख होकर शयन करती हैं। तब पिसे हुए न्यग्रोध अङ्कुरों को पति अपने अंगूठे और अंगुली में पकड़कर निम्नाङ्कित मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे पत्नी के नासारन्ध्र में डालता है।[1]

"पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः।
पुमांस पुत्रं बिन्दस्व तं पुमाननु जायताम॥"

यजुर्वेदीय पारस्कर गृह्यसूत्र में पुरुष सन्तान उत्पन्न करने के लिए पत्नी के दक्षिण नासारन्ध्र में न्यग्रोध के अवरोहों और नवीन प्रल्लवों के रस को अथवा कुश जड़ और सोमलता को पीसकर 'हिरण्यगर्भ' और अद्मयः सम्भृतः' इन दो मन्त्रों से छोड़ने का विधान है।[2] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में 'पुंसवनमसि' आदि यजुष मन्त्र से न्यग्रोध के रस को नासिका में डालने का विधान है।[3] इसी प्रकार हिरण्यकेशि, आग्निवेश्य, भारद्वाज आदि गृह्यसूत्रों में भी पुत्र-सन्तान उत्पन्न करने के लिए पत्नी के नासारन्ध्र में विभिन्न पौधों के रसों को डालने का विधान है।[4] वैखानस गृह्यसूत्र में लिखा है कि यदि पति पुत्र उत्पन्न करना चाहे तो उसे गर्भाधान के पूर्व पत्नी के दक्षिण नासारन्ध्र में लक्ष्मी, वट, शुंग और सहदेवी वृक्षों में से किसी एक का रस निकालकर डालना चाहिए, किन्तु पति यदि पुत्री की कामना करे तो उसे यह रस वाम नासारन्ध्र में डालना चाहिए।[5]

शांखायन गृह्यसूत्र के अनुसार पत्नी के नासारन्ध्रों में डाली जाने वाली औषधि, सोम, कुश तथा न्यग्रोध की शाखा का रस, यूप का अग्नि-दग्ध भाग,

---

1. गो० गृ० सू० 2.6.9-11, खादिर तथा द्राह्यायण गृ० सू०, 2.2.23
2. पार० गृ० सू०, 1.14.3,4
3. आप० गृ० सू०, 6.14-11
4. हिरण्य० गृ०सू०, 2.2.6; आग्नि०गृ०सू०, 2.1.1; भार० गृ०सू०, 1.22
5. वैखा० गृ० सु०, 3.9

जुहू में लगे होम-शेष में से कोई भी हो सकता है।[1] इसी गृह्यसूत्र में आगे एक गर्भरक्षण संस्कार का भी उल्लेख किया गया है जिसके लिए गर्भ के चतुर्थ मास में 'ब्रह्मण्यऽग्निः' एवं 'सविदान' आदि छः मन्त्रों से स्थालीपाक से होम करने का विधान किया गया है तथा 'अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां' प्रभृति ऋचा से उल्लिखित अङ्गों पर आज्य लेपन का विधान है।[2]

कौशिक सूत्र में व्रीहि और यव को पीसकर सरूप वत्सा गौ के दूध में डालकर और छानकर अथवा अध्यण्ड में बृहती, पलाश और विदारी को डालकर बूटी की भाँति पत्नी के दाहिने नासिका छिद्र में डालने का विधान है।[3] इसी गृह्यसूत्र में यह विधान भी किया गया है कि शमी वृक्ष के भीतर के अश्वत्थ वृक्ष के काष्ठ से मथ कर निकले हुए अग्नि में घृत (जिस गौ का बच्चा पुरुष हो उसके घृत से) डालकर स्त्री के दाहिने नासिका छिद्र में डालना चाहिए।[4]

वैखानस, हिरण्यकेशि और आग्निवेश्य में पुत्रोत्पत्ति हेतु पत्नी के हाथ पर अण्डकोष की आवृत्ति में यव, सर्षप और धान्य रखकर, उनके ऊपर दधि डालकर उसे उन्हें खिलाने का विधान है।[5] कौशिक सूत्र में भात में तिल मिश्र आगम कृशर को गर्भिणी को खिलाने का विधान है।[6]

**कष्टरहित प्रसव के लिए कर्म :** गृह्यसूत्रों में पत्नी को सुखपूर्वक प्रसव कराने के कर्म को सोष्यन्ती कर्म या क्षिप्र-प्रसवन कर्म कहा गया है। गृह्यसूत्रों में जननी को सूतिका गृह में प्रवेश कराने से पूर्व सूतिकागृह से भूत-प्रेतों तथा अन्य दुरात्माओं के निरसनार्थ वहाँ 'काकातनी' 'मचक चातनी' 'कोषातकी' 'बृहती' तथा 'कालकलीतक' नामक औषधियों को पीसकर उसमें लेप का विधान किया गया है।[7] वैखानस गृह्यसूत्र के अनुसार वहाँ 'वृषभ'

---

1. शांखा० गृ० सू०, 1.20.3-5
2. तत्रैव, 1.21
3. कौशिक सू०, 4.35.4
4. तत्रैव, 4.35.8
5. वैखा० गृ० सू०, 3.11; हिरण्य० गृ० सू०, 2.2.2-4; आग्नि० गृ० सू०, 2.1.1
6. कौशिक सूत्र, 4.35.5,6
7. शांखा० गृ० सू०, 1.23.1

नामक औषधि को जलाया जाता है तथा सरसों एवं तिलों से धूपित किया जाता है।[1] खादिर और द्राह्यायण गृह्यसूत्रों में प्रसव के समय सोष्यन्ती होम का विधान किया गया है।[2] प्रसव के समय होने वाले पत्नी के कष्ट को देखकर पति का मन विभिन्न विपत्तियों की आशंका से विचलित हो जाता है। अतः प्राचीन काल में पत्नी को प्रसव के कष्ट से मुक्त कराने के लिए पति को ईश्वर प्रार्थना का ही आश्रय लेना पड़ता था क्योंकि उस समय चिकित्सालय तथा चिकित्सक नहीं हुआ करते थे।

गोभिल और खादिर गृह्यसूत्र में पत्नी के प्रसव होने के समय पति द्वारा या तिरश्ची ̈ तथा 'संराधन्यै'...इन दो मन्त्रों से आज्याहुतियाँ अर्पित करने का विधान किया गया है।[3] काठक गृह्यसूत्र में शिशु-जन्म के अवसर पर पीड़ा रहित क्षिप्र प्रसवनार्थ जल से गीले किए गए पत्नी के हाथ को उसी के सिर पर रखकर पति को अपने गीले हाथ से उसके शरीर को सिर से हृदय-प्रदेश तक स्पर्श करने का विधान है।[4]

जैमिनीय गृह्यसूत्र में यह विधान है कि शिशु के जन्म के अवसर पर नियमित औपासनाग्नि के स्थान पर आहित सूतिकाग्नि में उत्थान तक माता और शिशु की रक्षा के लिए प्रतिदिन सरसों और धान के छिलकों की आहुतियाँ दी जानी चाहिए। इन आहुतियों के लिए यजुर्वेद से सम्बद्ध गृहसूत्रों तथा जैमिनीय गृह्यसूत्र में मन्त्रों का निर्देश है।

भारद्वाज गृह्यसूत्र, हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में पीड़ा-रहित प्रसव के लिए -- किसी कोरे पात्र (शराव) में नदी की धारा की ओर से जल लेकर, स्त्री के पैरों के समीप तुर्यन्ती का पौधा रखकर, यजुष मन्त्र "आभिष्टवाहं दशभिरभिमृशामि" के द्वारा उसके (पत्नी के) सिर का स्पर्श करने के पश्चात् यजुष् मन्त्र "यथैव सोमः पर्वतः" आदि का पाठ करते हुए प्रत्येक मन्त्र के साथ उसके ऊपर जलाभिषिञ्चन का विधान किया गया है।[5]

---

1. वैखा० गृ० सू०, 3.14
2. खादिर तथा द्राह्यायण गृ० सू०, 2.2.29
3. गो० गृ० सू० तथा ख० गृ० सू०, 2.2.39
4. काठ० गृ० सू०, 33.1-3
5. आप० गृ० सू०, 6.14.15; भार० गृ० सू०, 1.22-23; हिरण्य० गृ० सू०, 2.2.8,2.3.1

वैखानस गृह्यसूत्र के अनुसार गर्भपात में विलम्ब होने पर 'विशल्या' या 'सुवर्चला' औषधि का रस योनि पर निचोड़ना चाहिए तथा 'पिण्डीतक' अथवा सर्प की केंचुली से धूपित करना चाहिए। 'हिरण्यपुष्पी' नामक औषधि की जड़ को उसके हाथों तथा पाँवों पर रखना चाहिए। शिशु के बाहर आते समय माता के सिर की दाहिनी ओर एक घड़ा (जलपूर्ण) रखना चाहिए तथा 'तूर्यन्ती' नामक औषधि को उसके पैरों के नीचे रखकर उसके पेट को समन्त्रक थपथपाना चाहिए।[1]

पारस्कर गृह्यसूत्र में मेधाजनन के पूर्व इस कर्म का उल्लेख किया गया है। इस गृह्यसूत्र में प्रसव पीड़ा से विकल स्त्री को जल से 'एजतु' आदि यजुष् मन्त्र से अभ्युक्षण करने के पश्चात् जरायु के अधोपतन के लिए "अवैतु··· पद्यताम्" इस यजुष् मन्त्र के उच्चारण का विधान है।[2]

कौशिक सूत्र में सुखपूर्वक प्रसव के लिए 'वषट ते पूषन०" इस सूक्त से चार जल पात्रों में चार कुशों को गर्भिणी के शिर पर पूर्वाग्र और पश्चिमाग्र कर उच्छ्रित करने, गर्भिणी के शिर के दक्षिण केश-समुदाय को गर्म जल से नहलाने, सूतिका गृह के बन्धनों को काटने तथा गाड़ी के जुए के दोनों कील को गर्भिणी के कमर में बाँधने का विधान किया गया है। 'यदि सोमस्यासि०' इत्यादि मन्त्रों से 21 यव परिमित 'स्रज' (जंगली जड़ी) को गर्भिणी के चारों ओर छिड़कने एवं 'अन्या वो०' मन्त्र से सब औषधियों को एकत्र कर गर्भिणी के कमर में बाँधने का भी निर्देश है।[3]

**गर्भ न धारण करने वाली स्त्री के लिए अभिचार :** पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रथम काण्ड में पुंसवन संस्कार के पूर्व गर्भ न धारण करने वाली अर्थात् वन्ध्या के भी सन्तान होने के लिए उपचार इस प्रकार बताया गया है—

"श्वेत पुष्प वाली कण्टकारि (भटकटैय्या) की जड़ को पूर्व उपवास रखकर पुष्य नक्षत्र में उखाड़कर, लाकर, ऋतुकाल के चतुर्थ दिन स्नान की हुई (शुद्ध स्त्री) के दाहिने नासिकारन्ध्र में रात्रि के समय जल के साथ पीसकर

---

1. वैखा० गृ० सू०, 3.14
2. पार० गृ० सू०, 1.6
3. कौशिक सू०, 4.33.1-8

'इयमोषधी'''जाग्रभम' इस मन्त्र से डालने पर वह वन्ध्या स्त्री अवश्यमेव गर्भ धारण करती है।[1]

कौशिक सूत्र में 'इदं जनास'० इस मन्त्र से शिशपा की शाखाओं को लाकर जल के पास उन पर वन्ध्या को बैठाकर उसके शिर पर औषधियों को रखकर अवसिंचन करने, पश्चात पुरोडाश, प्रमन्द, कटुपा, अलंकार लाकर उसे देने का विधान किया गया है।[2]

कौशिक सूत्र में ही उस स्त्री के लिए भी उपचार बताया गया है जिनका अकारण ही गर्भपात हो जाता है अथवा पैदा होते ही शिशु की मृत्यु हो जाती अथवा कभी-कभी स्त्री या पुरुष की मृत्यु हो जाती है। कौशिक सूत्र में इस समस्या के निदान हेतु पूर्वमुख दरवाजे वाले तीन मण्डप बनवाकर एक में अभ्यातानान्त कर्म करके पूर्व-पश्चिम द्वार में इषिका को बाँधकर 'निः सालां' मन्त्र से तीन गूलर की लकड़ी को मृत वत्सा के लिए आधान करने का विधान है। तत्पश्चात् पूर्व और पश्चिम मुख वाले घर में पलाशपत्र पर सीसों को रखकर उस पर स्त्री को बैठाकर उत्तर सम्पातों को लाना चाहिए और उसी जल से स्त्री को स्नान कराने के पश्चात् पहने हुए काले वस्त्र का परित्याग कराकर दूसरे वस्त्र को पहनाना चाहिए और उसे पूर्व द्वार से बाहर निकालना चाहिए। इसी प्रकार पूर्व के घरों में भी पश्चिम में किए गए कर्मों को पुनः दोहराना चाहिए। तत्पश्चात् वन्ध्या के लिए कथित कर्म को करने से गर्भपात, शिशु अथवा स्त्री-पुरुष की मृत्यु नहीं होती है।[3]

**शिशु के बुद्धि-विकास हेतु कर्म :** विभिन्न गृह्यसूत्रों में शिशु के बुद्धि के विकास हेतु 'मेधाजनन' नामक कर्म करने का विधान किया गया है, जैसा कि मेधाजनन के नामकरण से ही विदित है कि यह बुद्धि को उत्पन्न करने एवं विकसित करने का कर्म है। गोभिल तथा खादिर गृह्यसूत्रों में शिशु की बुद्धि विकसित करने हेतु वटवृक्ष की टहनी की भांति कूट-कूटकर पीसे गए जौ और धानों के चूर्ण को दाहिने हाथ के अँगूठे एवं अँगुली से बुद्धि विकास के मन्त्र

---

1. पार० गृ० सू०, 1.13
2. कौशिक सूत्र, 4.34.1-2
3. तत्रैव, 4.34.3-11

'मेधां ते'' पुष्करसृजौ से शिशु की जिह्वा पर डालने का विधान किया गया है।[1]

पारस्कर गृह्यसूत्रों में जन्म लेते ही शिशु को पिता द्वारा मधु या घृत समन्त्रक खिलाने का विधान है।[2]

शांखायन गृह्यसूत्र[3] के अनुसार बुद्धि के विकास के लिए शिशु को घृत, मधु, दधि तथा जल के मिश्रण में काले बैल के रोमों को घोलकर 'भूर्ऋग्वेदं त्वयि दधामि०' प्रभृति मन्त्र से खिलाने का विधान किया गया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र[4] मे शिशु के कानों में 'मेधां ते देव: सविता मेधां देवी सरस्वती०' प्रभृति मन्त्र के उच्चारण का विधान है, जब कि शांखायन गृह्यसूत्र[5] में शिशु के कान में तीन बार केवल वाक् शब्द का उच्चारण ही पर्याप्त समझा गया है।

कौशिक सूत्र में कहा गया है कि मेधा चाहने वाला कंटकारिका के पत्ते को 'अयं में वरण उरसि०' और 'आश्यादि' सूक्त से आज्याहुति के सम्पात से होम करके अपने गले में बाँधे और इस कर्म का कर्ता मेधा चाहने वाले को खिलावे।[6]

**दीर्घायु के लिए अभिचार** : गृह्यसूत्रों में शिशु की दीर्घायु की कामना से किए जाने वाले अभिचार कर्मों को आयुष्य कर्म के अन्तर्गत रखा गया है। मानव गृह्यसूत्र में पिता के द्वारा मथित अग्नि में शिशु की दीर्घायु के लिए आज्य की इक्कीस आहुतियाँ प्रदान करने का विधान है।[7] शेष आज्य में दधि, मधु तथा जल का मिश्रण करके सुवर्ण-शकल से आलोडन करके शिशु को तीन बार पिलाने का निर्देश है। तैत्तिरीय संहिता के बौधायन गृह्यसूत्र और आग्निवेश्य गृह्यसूत्र में[8] दीर्घायु-प्राप्ति के लिए आयुष्य चरु होम नामक कर्म का विधान

---

1. गो० गृ० सू०, 2.7.18-21; ख० गृ० सू०, 2.2.33-35
2. पार० गृ० सू०, 1.16.3-4
3. शांखा० गृ० सू०, 1.24.7-8
4. आश्व० गृ० सू, 1.15.2
5. शांखा० गृ० सू०, 1.24.9-10
6. कौशिक सूत्र, 2.10.1-3
7. मानव० गृ० सू०, 1.17.1-7
8. बौधा० गृ० सू०, 3.7; आग्नि० गृ० सू०, 2.5.3

किया गया है। इस कर्म में कुमार को दीर्घजीवी बनाने के लिए प्रत्येक वर्ष छः-छः मास पश्चात्, चार-चार मास पश्चात् अथवा प्रत्येक मास कुमार के जन्म नक्षत्र में व्रीहि, धान्य अथवा तण्डुलों के चरु से होम किया जाता है। पारस्कर और भारद्वाज गृह्यसूत्रों में शिशु के कान में कुछ मन्त्रों के उच्चारण का विधान है।[1] आपस्तम्ब तथा आग्निवेश्य गृह्यसूत्रों के अनुसार पिता बालक का हाथ अपने हाथ में लेकर कुछ मन्त्रों का उच्चारण करता है।[2]

कुछ गृह्यसूत्रों के अनुसार कुमाराभिमन्त्रण में शिशु के कानों में पिता को 'अश्मा भव, परशुर्भव, हिरण्यमस्तृतं भव' प्रभृति मन्त्रों का उच्चारण पलाश के लिपटे हुए पत्ते में से करना चाहिए[3] अथवा कन्धे को स्पर्श करना चाहिए।[4] गोभिल, खादिर एवं जैमिनीय गृह्यसूत्रों[5] के अनुसार दीर्घायु के लिए पिता बालक के सिर का स्पर्श करता है अथवा सिर को सूँघता है।[6] एक अन्य मत के अनुसार अभिमन्त्रण भिन्न प्रकार से किया जाता है जो इस प्रकार होता है—'भूमि पर रखी एक शिला पर परशु तथा परशु पर स्वर्ण कलश रखकर, पिता 'अश्मा भव' प्रभृति मन्त्रों का उच्चारण करता है। इस कर्म में प्रयुक्त पदार्थ क्रमशः दृढ़ता, शत्रु-उच्छेदन की क्षमता तथा सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य के प्रतीक हैं।

**वशीकरण प्रयोग** : आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में पति को पत्नी के प्रति अनुरक्त बनाए रखने के लिए वधू के पिता द्वारा किए जाने वाले अभिचार में यज्ञकर्म और आभिचारिक क्रिया का विचित्र संयोग दृष्टिगत होता है—

"वर का मन पत्नी की ओर आकृष्ट न हो और यदि वधू के पिता की यह इच्छा हो कि उन दोनों के हृदय परस्पर प्रेमानुरक्त रहें तो वह कम से कम तीन रात्रियों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पुनर्वसु नक्षत्र में स्थालीपाक पकाकर अग्नि के उपसमाधान से आरम्भ करके आज्य भाग की आहुति पर्यन्त होम

---

1. पार० गृ० सू०, 1.1.6; भार० गृ० सू०, 1.24
2. आप० गृ० सू०, 6.?.12; आग्नि० गृ० सू०, 2.1.5
3. मानव गृ० सू०, 1.17.1-7; वा०गृ० सू०, 2.6; भार०गृ० सू०, 1.24
4. आश्व० गृ० सू०, 1.15-3
5. गो० गृ०सू०, 2.8.21; ख०गृ० सू०, 2.3.13; जैमि०गृ० सू०, 8.18
6. बौधा० गृ० सू०, 21. 15, 6.15.1-4

करे, पत्नी द्वारा संसृष्ट होते हुए 'प्रातरग्निम्' इत्यादि सात मन्त्रों से सात प्रधान आहुतियाँ अर्पितकर तत्पश्चात् जया आदि आहुतियाँ करके अग्नि के चारों ओर जल-परिषेचन की क्रियाएं करे। यज्ञ के अवशिष्ट अंश को घृत मिलाकर सम संख्या के ब्राह्मणों को अथवा कम से कम दो ब्राह्मणों को खाने के लिए दे और उन्हें भोजन कराकर उनसे अपने अभीष्ट सिद्धि हेतु आशीर्वाद पढ़वावे।[1]

दूसरे दिन जब चन्द्रमा तिष्य नक्षत्र में हो, तब वधू पाठ नाम के पौधे के चारों ओर तीन बार सात सात जौ 'यदि वारुण्यसि' मन्त्र का पाठ करते हुए बिखेरे।[2] उसके पश्चात् दूसरे दिन पाठ वृक्ष को 'इमां खनामि' आदि मन्त्र का पाठ करते हुए खोदकर आगे की तीन ऋचाओं 'उत्तानपर्णे०' आदि से उसके मूल के दो टुकड़े करके आगे की ऋचा 'अहमस्मि०' आदि का पाठ करते हुए हाथ में इस प्रकार बाँधकर रखे कि उसका पति न देख सके और रात्रि को शयन के समय 'उपतेऽधाम्' मन्त्र का जप करते हुए दोनों भुजाओं से पति का इस प्रकार आलिङ्गन करे कि दोनों पाठ-मूल आपस में एक दूसरे के ऊपर पड़ें। ऐसा करने से पति पत्नी के वश में हो जाता है।[3]

उपर्युक्त क्रिया से ही पत्नी अपनी सौतों पर भी अधिष्ठित होती है।[4]

कौशिश सूत्र के अनुसार पति अथवा पत्नी को वश में करने के लिए 'रथजितां'० इत्यादि तीन सूक्तों से माषस्वरा (अपने बोए या अन्य के बोए हुए उड़द जो पहले बोए गए हों) को अभिमन्त्रण करके जिस स्त्री अथवा पुरुष को वश में करना हो उसकी खाट या चारपाई के नीचे अथवा घर में या शयन देश में डालने से वे वशीभूत हो जाते हैं।[5]

सपत्नियों पर विजय प्राप्त करने हेतु शरपुंख के पत्रों को शयनीय (पलंग या चारपाई) के नीचे 'उपतेऽधां'० मन्त्र से बाँधने का विधान है।[6]

---

1. आप० गृ० सू०, 3.9.4
2. तत्रैव, 3.9.5
3. तत्रैव, 3.9.6
4. 'सपत्नी बाधनं च। तत्रैव, 3.9.6
5. कौशिक सूत्र, 4.36.13
6. तत्रैव, 4.36.20

**स्वभार्या के साथ परपुरुष सम्बन्ध का प्रतिरोधक कर्म :** आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में विधान किया गया है कि यदि किसी स्त्री का पति यह चाहे कि उसकी पत्नी का सम्बन्ध किसी अन्य पुरुष से न हो तो उसे पत्नी की एकनिष्ठता के लिए निम्न प्रकार से कर्म करना चाहिए :

"पत्नी पर पुरुष के साथ मैथुन की इच्छा न करे इसके लिए जीवित आढारिका (एक प्रकार का रेंगने वाला कीड़ा को पीसकर जब वह (पत्नी) सोई हुई हो तो 'अवज्यामिवधन्वन' आदि मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसके गुप्तांग में डालना चाहिए ।[1]

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र[2] में आढारिका के चूर्ण को पत्नी की जननेन्द्रिय में तब डालने का विधान किया गया है जब उसका कोई प्रेमी हो। भारद्वाज गृह्यसूत्र[3] में विधान है कि प्रवास पर जाने से पूर्व पति को पत्नी की रक्षा के लिए जीवित स्थूलाढारिका का चूर्ण अमावस्या की रात्रि को उसकी उपस्थेन्द्रिय में निम्नलिखित मन्त्र से डालना चाहिए—

"सोमवास्य परिधमन्येभ्यः पुरुषेभ्योऽन्यत्रमद ।"

**भागने वाले भृत्य के लिए अभिचार :** यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों पारस्कर आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि, भारद्वाज आदि में भृत्य (नौकर) को भागने से रोकने हेतु एक विचित्र आभिचारिक कर्म का उल्लेख किया गया है ।[4] पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार भ्रमणशील दास के वशीकरण हेतु अभिषेक कर्म या उतूल परिमेह विधि इस प्रकार है— "जब दास सो रहा हो, तो जीवित पशु के सींग को अपने मूत्र में डुबोकर छिड़कते हुए 'परित्वा....' मन्त्र पढ़कर तीन बार बाँए से दाएँ घूमे । इस प्रक्रिया में उच्चारण किए गए मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

---

1. "असम्भवेप्सुः परेषां स्थूलाढारिका जीव चूर्णानि कारयित्वोत्तरयासुप्तायास्सम्बाध उपवपेत् ।" आप० गृ० सू०, 8.23.3
2. हिरण्य० गृ० सू०, 1.14.7
3. भार० गृ० सू०, 2.28
4. पार० गृ० सू०, 3.7; आप० गृ० सू०, 8.22, हिरण्य० गृ० सू०, 1.13. 19; भार० गृ० सू०, 2.27

"ओ दास ! मैं तुम्हें पर्वत से खींचकर माता-पिता, भगिनी, भ्राता और मित्र सबसे पृथक् कर अपने में अनुरक्त करता हूँ। अब तुम मन्त्र-शक्ति से पाश बद्ध हो। कहाँ जाओगे ? अर्थात् अब तुम कहीं नहीं जा सकते।"

इसके अनन्तर भी यदि दास का स्वच्छन्द विचरण बन्द न हो तो उसको वश में करने के लिए द्वितीय कर्म के अन्तर्गत पञ्चभू संस्कार पूर्वक अरण्याग्नि की स्थापना कर तीन कुश कुण्डलों को घृताक्त कर 'परित्वाह्वलन…' मन्त्र पढ़ते हुए उनकी आहुति देने का विधान है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न गृह्यसूत्रों[1] में क्रोधी व्यक्ति के क्रोध को शान्त करने हेतु, मुकदमें में विजय-प्राप्ति हेतु तथा प्रतिद्वन्दी को पराजित करने के लिए भी अभिचार कर्मों का विधान किया गया है।

**शत्रु-सेना पर विजयार्थ उनका ज्ञान भ्रष्ट करने एवं उद्विग्न करने का कर्म :** कौशिक सूत्र में विभिन्न अभिचार कर्मों का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। इस सूत्र में युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने के लिए विभिन्न कर्मों[2] का उल्लेख हुआ है, यथा—शत्रु-सेना के हाथियों को भयभीत करने का कर्मक, इषु निवारण कर्म,ख परसेना का ज्ञान नष्ठ करने का कर्म,ग" उद्वेग कर्मघ आदि।

कौशिक सूत्र के अनुसार शत्रु पर निश्चित विजय के लिए शत्रु-सेना के उद्विग्न हो जाने पर ही युद्ध करना चाहिए। इसके लिए श्वेत पैर वाली बकरी, भेंड़ अथवा हरिणी को पुरोहित द्वारा शत्रु-सेना में छोड़ने का विधान किया गया है।

इसके अतिरिक्त केवल कौशिक सूत्र में ही शत्रु-सेना की पराजय एवं अपनी विजय की जानकारी हेतु किए जाने वाले अन्य कर्मों में जय-विजय कर्म, जय-पराजय ज्ञान, सांग्रामिक विधान, परसेना एवं स्वसेना में किन महारथियों का मरण होगा इसका ज्ञान, सोमलता को योद्धाओं के हाथ में

---

1. पार० गृ० सू०, 3.13.5-6; आप० गृ० सू०, 8.23.1,2,6,7; हिरण्य० गृ० सू०, 1.14.1,5, 1.15.2-8; भार० गृ०सू०, 2.27
2. कौशिक सूत्र, क. 2.14-10, ख. 2.14.14,; ग. 2.14-16; घ. 2.14.22

बांधना, अभय कर्म आदि का भी विस्तृत विवेचन हुआ है।[1]

## रोग-निवारण

**पिशाचगृहीत का उपचार :** प्राचीन समय के लोगों की यह धारणा होती थी कि बालक को कुछ रोग राक्षसों तथा ग्रहों की कुदृष्टि के परिणामस्वरूप हो जाया करते हैं। अतः रोगग्रस्त बालक या व्यक्ति के शरीर से राक्षसों एवं ग्रहों के प्रभाव को दूर करने के लिए भिन्न-भिन्न आभिचारिक क्रियाएं की जाती थीं। हिरण्यकेशि और भारद्वाज गृह्यसूत्रों[2] के अनुसार जब पुत्र श्वग्रह (पिशाच) से पीड़ित हो तब पिता को यज्ञोपवीती होकर, आचमन करके नये शराबों (लघु कुम्भों) में जल लाना चाहिए। पश्चात् सभा में द्यूत-क्रीड़ा के स्थल को थोड़ा ऊँचा करके उस पर अक्ष (कौड़ी) रख कर सभा को छत में छिद्र करके उसमें से कुमार को अन्दर लाना चाहिए और अक्षों पर उत्तान लिटा देना चाहिए। इसके बाद दधि, लवण और जल के मिश्रण से कुमार का अभ्युक्षण करके, अनेक मन्त्रों द्वारा राक्षसों से कुमार को मुक्त करने की प्रार्थना की जानी चाहिए। इस समय कुमार के दक्षिण में घण्टा भी बजाने का विधान है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[3] के अनुसार 'श्वग्रह से पीड़ित कुमार को जाल से ढककर कस या घण्टी बजाते हुए मुख्य द्वार से भिन्न द्वार से सभा में लाना चाहिए और ग्यारह मन्त्रों 'कूर्कुरस्सुकूर्कुरः' से लेकर 'श्वानमिच्छवादन्न पुरुषं छत्' का पाठ करते हुए कुमार का अभ्युक्षण करना चाहिए।

उपर्युक्त तीनों ही गृह्यसूत्रों के अनुसार यह अभिचार कर्म (अभ्युक्षण कर्म) दिन में तीन बार प्रातः, मध्याह्न और सायं करना चाहिए।

पारस्कर गृह्यसूत्र[4] के अनुसार यदि शिशु को कोई भी ग्रह पीड़ित करे तो पिता को उसे अपनी गोद में लेकर मछली पकड़ने के जाल से ढककर राक्षसों से कुमार को मुक्त करने की प्रार्थना करनी चाहिए।

---

1. कौशिक सूत्र, अध्याय 2 में कण्डिका 14 से 33 तक में
2. हिरण्य० गृ० सू०, 2.7.1-5; भार० गृ० सू०, 2.7
3. आप० गृ० सू०, 7.18.1,2
4. पार० गृ० सू०, 1.16.24

कौशिक सूत्र[1] के अनुसार ब्रह्मग्रह से पीड़ित के लिए तक्म नाशन गण 'दशवृक्ष०' इस सूक्त से शान्त वृक्षों के शकलों को लेकर लाख और स्वर्ण से वेष्टित मणि बनानी चहिए और संयुक्त रूप से दस मित्रों द्वारा उपर्युक्त सूक्त का जप करने हुए पिशाच गृहीत का अभिमर्शन करके उसे मणि पहना देनी चाहिए। कौशिक सूत्र[2] में ही राक्षस गृहीत को 'आ यं विशन्ति' सूक्त से पक्षी के घोंसले को जलाकर क्षीरौदन पकाकर खिलाने का विधान है।

**शंख रोग का उपचार** : आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[3] में शंख नामक रोग से ग्रस्त रोगी के लिए निम्न प्रकार से अभिचार का विधान है—

"शंख नामक रोग से पीड़ित बालक के ऊपर 'एते ते प्रतिदृश्येते' आदि दो मन्त्रों द्वारा व्रत और ब्रह्मचर्य धारण करने के बाद (पिता या कर्म करने वाला व्यक्ति) अभिमन्त्रण करे फिर एक जल-पात्र में जल लेकर अगले मन्त्र 'ऋषिर्बोधः प्रबोधः' आदि का पाठ करते हुए जल को उसके शिर पर गिरावे।" यह क्रिया भी दिन में तीन बार प्रातः, मध्याह्न एवं सायं करनी चाहिए।

आपस्तम्ब के भाष्यकारों के अनुसार शंख रोग बहुत भयानक होता था। इससे अधिगत बालक शंख की भाँति शब्द करता था।[4]

**राजयक्ष्मा रोग का निवारण** : आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[5] के अनुसार "पत्नी के राजयक्ष्मा या किसी अन्य रोग से पीड़ित होने पर ब्रह्मचर्य धारण करने वाला पति ऐसे कमल के मूलों से जिसकी पंखुड़ियाँ बन्द हों अथवा उसकी पंखुड़ियों और मूल से 'अक्षीभ्यां ते०' आदि छः मन्त्रों का पाठ करते हुए मन्त्र में निर्दिष्ट अंग को एक-एक मन्त्र से रगड़ता है और उन कमल दलों एवं मूलों को पश्चिम दिशा में फेंककर पत्नी द्वारा विवाह के समय पहने गए वस्त्रों को दान में देता है।

---

1. कौशिक सूत्र, 4.27.6
2. तत्रैव, 4.29.27
3. आप० गृ० सू०, 7.18.3,4
4. शंखो नाम ग्रहः कुमाराणां भयंकरः येन गृहीतः शंखवन्नदतीति।
[हरदत्त मिश्र व सुदर्शनाचार्य]
5. आप० गृ० सू०, 3.3.10,11

कौशिक सूत्र[1] के अनुसार 'नवीन घट' को अग्नि के उत्तर भाग में स्थापन करके जल से 'हिरण्य वर्णा०' इस सूक्त द्वारा वरण वृक्ष-मणि का अभिमन्त्रण करके 'वरणो वारयातां' इन तीन ऋचाओं से मणि को रोगी के बाँधने का विधान है।

**शीर्ष रोग भेषजम्** : पारस्कर गृह्यसूत्र[2] में शिरोवेदना को दूर करने की विधि इस प्रकार बताई गई है—तदनुसार 'हस्त प्रक्षालन करके निम्नाङ्कित मन्त्र से भौहों का मार्जन करके शिर की पीड़ा से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

चक्षुर्भ्यां क्षोत्राभ्यां गोदानाच्छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्य रराटाद्विवृहामि मम्॥

किन्तु यदि शिर के केवल अर्धभाग में पीड़ा हो तो भिन्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए मार्जन करना चाहिए।

अवभेदक विरूपाक्षश्वेतपक्ष महायशः।
अथौ चित्रापक्ष शिरोमास्यभिताप्सीद॥

कौशिक सूत्र[3] में शिर की बीमारी में 'जरा युज०' सूक्त से अभिमन्त्रित घी को रोगी की नाक में डालने का विधान है।

**विष निवारण** : खादिर तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र[4] के अनुसार विषधर, साँप अथवा बिच्छू के काट लेने पर विष निवारण हेतु उस काटे हुए स्थान को धोकर 'माभैषीर्न' मन्त्र का जाप करना चाहिए।

कौशिक सूत्र में भिन्न भिन्न स्थलों[5] पर सर्प एवं बिच्छू के विष निवारण की क्रिया उल्लिखित है। बिच्छू के काटने पर 'तिरश्चिराज०' इन आठ मन्त्रों

---

1. कौशिक सूत्र, 4.26.33-36, 4.32.11-13
2. पार० गृ० सू० 3.6.2,3
3. कौशिक सूत्र, 4.26.8
4. खादिर तथा द्राह्यायण गृ० सू०, 4.4.1
5. कौशिक सूत्र, 4.28.1,2; 4.29.1-17; 4.32.4-6

से जेठी मधु को पीस कर अभिमन्त्रण करके बिच्छू काटे व्यक्ति को पिलाने एवं खेत की मिट्टी को जीव कोषणी के चमड़े में लपेट करके मणि बनाकर भूमि पर रखकर अभिमन्त्रित करके रोगी को बाँधने से विष उतर जाता है।

**अन्य रोगों का उपचार :** अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र में बहुसंख्यक रोगों का उल्लेख एवं उनके निवारणार्थ अभिचार कर्मों एवं उपायों का विधान किया गया है— ज्वर, अतिसार, बहुमूत्र, जलोदरादि रोगों के निवारणार्थ यन्त्र बन्धन।[1] वात, पित्त, कफ, अतिकास, वातज्वर, कीटि बन्धन, वातगुल्म, शरीर के किसी अंग से रक्तस्राव आदि के लिए यन्त्र बन्धन तथा हृदरोग सफेद कुष्ठ, यक्ष, अप्सरा, भूत-प्रेतादि से उत्पन्न रोग, जलोदर, कुल-परम्परा से होने वाले रोगों का यान्त्रिक उपचार।[2] क्षेत्रिय रोगों, अरुषी उदर, गण्डुलक यक्ष्मा तथा सर्वरोग भैषज्य।[3] अस्त्र-आघात से होने वाले रक्तस्राव को रोकने का उपचार, सूतिका रोग से मुक्ति का उपाय।[4] कृमि रोग एवं राक्षस गृहीत का उपाय,[5] पित्त ज्वर, गिरते हुए केशों को रोकने तथा केशों को बढ़ाने के उपाय हृदय की जलन, कामला-गण्डमाला का उपचार।[6] सर्वाङ्गों में शूल होने की दवा, अक्षत व्रण, पक्षि के काटने, कास एवं कफ गिरने की दवा।[7] जम्बुआ पकड़े का उपचार तथा मृतवत्सा के लिए उपचार[8], आदि का विवरण प्राप्त होता है।

**विनायकों से मुक्ति :** मानव गृह्यसूत्र में शाल कटक, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन नामक चार विनायकों का उल्लेख किया गया है, जो दूसरे के कार्यों में बाधा पहुँचाते हैं। इनसे त्रस्त लोग अकारण ही मिट्टी के ढेलों को कुचलते हैं अथवा फोड़ते हैं तथा तिनके तोड़ते हैं। वे स्वप्न में मुण्डित सिर

---

1. कौशिक सूत्र, 4.25
2. तत्रैव, 4.26
3. तत्रैव, 4.27
4. तत्रैव, 4.28
5. तत्रैव, 4.29
6. तत्रैव, 4.30
7. तत्रैव, 4.31.7,9,16,17,18,27,28
8. तत्रैव, 4.32.1-3, 32

वाले, जटाधारी, काषाय वस्त्रधारी लोगों को, उष्ट्र, सूकर, गर्दभ, चाण्डाल को देखते हैं। वे अपने शरीर पर रेखाएं खींचा करते हैं। विनायकों से अधिगत लोग उन्नति नहीं कर पाते हैं, कन्या गुणवान पति नहीं प्राप्त कर पाती है, स्त्री वन्ध्या हो जाती है अथवा जन्म होने पर शिशु की मृत्यु हो जाती है, विद्यार्थी अध्ययन नहीं कर पाता, वणिजों का व्यापार नष्ट हो जाता है, कृषकों की फसल में अल्प उत्पादन होता है। इनसे त्रस्त लोगों को स्वप्न में विचित्र दृश्यों के दर्शन होते हैं, यथा, स्वयं का आकाश में उड़ना अथवा चलने पर किसी के द्वारा पीछा किया जाना, आदि।[1]

अतः इन विनायकों से मुक्ति के लिए वन के मृगों द्वारा खोदकर बनाए गए बिलों की मिट्टी, रोली, गुग्गुल, समस्त सुगन्धित पदार्थ, सब प्रकार के रस एवं औषधियाँ सभी रत्न, प्रतिसर, दधि, मधु और घृत को एकत्रित करके इन्हें चार स्रोतों में से लाए गए जल के चार कुम्भों में मिलाना चाहिए और विनायकों से ग्रसित व्यक्ति को वृषभ-चर्म पर बैठा कर इन कुम्भों के जल से स्नान कराना चाहिए। इसके पश्चात् रात्रि में तुरन्त निकाले गए सरसों के तेल की चार आहुतियाँ उदुम्बर काष्ठ के स्रुव से स्वाहाकार के साथ चारों विनायकों को अर्पित की जाती हैं। तत्पश्चात् ग्राम, नगर अथवा निगम (बाजार) के चतुष्पथ पर चारों ओर अग्रभाग रखते हुए दर्भों का आस्तरण करके उसके ऊपर नवीन सूर्प में फलीभूत (फटके हुए) तण्डुलों, अफलीकृत तण्डुलों, कच्चे और पक्के माँस, पकी और बिना पकी मछली, पके तथा बिना पके अपूपों, पूर्ण एव पिसे हुए सुगन्धित पदार्थों, विभिन्न प्रकार की सुरा, बिना गुंथी माला, रक्त एवं श्वेत माला, लाल, पीले, सफेद, काले, नीले और हरे रंग से चित्रित वस्त्र माष, कल्माष और मूल वाले फलों की बलि अर्पण का विधान है।

इसके बाद विमुख श्येन, बक यक्ष कलह, भीरु, विनायक, कूष्माण्ड राजपुत्र, यक्षाविक्षेपी, कुलंगापमार यूपकेशी, सुपरक्रोडी, हैमवत, जम्भक, विरुपाक्ष, लोहिताक्ष, वैश्रवण, महादेव, महासेन और महाराज का निम्नलिखित शब्दों का उच्चारण करते हुए आह्वान किया जाता है—

"एते मे देवाः प्रीयन्तां प्रीता मां प्रीणयन्तु तृप्ता मां तर्पयन्तु।"

---

1. मानव० गृ० सू०, 2.14.1-21

आह्वान के पश्चात् अर्ध रात्रि के समय निम्न शब्दों का उच्चारण करते हुए गृह-उपासना की जाती है।[1]

भगवती भगं में देहि, वर्णवति वर्णं में देहि, रूपवति रूपं मे देहि, तेजस्विनि तेजं मे देहि, यशस्विनि यशां मे देहि, पुत्रवति पुत्रान्मे देहि, सर्ववति सर्वकामान्मे प्रदेहि।

प्रातः शुभ मुहूर्त में अर्घ्यदानपूर्वक सूर्य की उपासना करके ब्राह्मणों को तृप्त किया जाता है और दक्षिणा स्वरूप वृषभ प्रदान किया जाता है।[2]

उपर्युक्त प्रकार से कर्म-सम्पादन करने पर निश्चय ही विनायकों से मुक्ति मिलती है, यह विश्वास था।

**पुष्टि-कामार्थ कर्म** : सामवेदीय खादिर तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र में एवं आथर्ववेदीय कौशिक सूत्र में पुष्टि-कामार्थ कर्म का भी विधान किया गया है।

खादिर तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र के अनुसार यदि अपनी या किसी अन्य की दीर्घायु की कामना हो तो खैर की सौ कील होम करना चाहिए और इसके विपरीत यदि किसी को मारने की कामना हो तो तो लोहे की सौ कीलकों का होम अपेक्षित है। यह दोनों ही कृत्य पूर्णिमा की रात्रि में करणीय हैं। उपर्युक्त दोनों ही कृत्यों में होम के लिए 'आकूतो देवी' नामक एकाक्षरी मन्त्र ही प्रयोजनीय है।[3] यदि खैर की कील तप्त होने से भूमि तप्त होकर शीघ्र ही उसमें ज्वाला उठे तो अनुष्ठाता को लाभ में बारह गाँव प्राप्त होंगे और यदि ज्वाला न उठे तो तीन गाँव ही लाभ में प्राप्त होंगे।[4]

कौशिक सूत्र के अनुसार जिस क्षेत्र की कामना हो उसमें जाकर जल, दधि और मधु को मिश्रित कर उसे खाने से तथा एक वर्ष तक स्त्री के समीप न जाकर सीज में अपने वीर्य को लेकर उसमें चावल मिलाकर खाने से सात ग्रामों का लाभ होता है।[5] गर्भकाल मुक्त ऋतुमती स्त्री की योनि से निकलने वाले

---

1. मानव गृ० सू०, 2.14.30
2. तत्रैव, 2.14.31-33
3. खादिर तथा द्राह्यायण गृ० सू०, 4.3.1,2
4. तत्रैव, 4.3.4,5
5. कौशिक सूत्र, 3.22.6-7

रुधिर को तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियों में लेकर उसका पान करने से कुल की पुष्टि होती है।[1]

इसी प्रकार यदि इच्छा हो कि मैं बहुत से पुरुषों का स्वामी बनूं अथवा उसके मध्य में श्रेष्ठ एवं माननीय स्थान प्राप्त करूँ तो उस व्यक्ति को आठ रात्रियों तक भोजन नहीं करना चाहिए और इसके मध्य गूलर की लकड़ी के स्रुवा, चमस और इध्म का संग्रह कर अपने साथ लेकर गाँव के ईशान कोण में बाहर जाकर किसी चौराहे पर अग्नि स्थापन करने के पश्चात् 'अन्नं वा' मन्त्र से घी की आहुति देनी चाहिए और उसके पश्चात् निरन्तर 'श्रीर्वा एष०' मन्त्र से द्वितीय आहुति देनी चाहिए।[2]

कौशिक सूत्र[3] में कुछ अन्य काम्य कर्मों का भी वर्णन इस प्रकार हुआ है—

आयुष्कामना वाला व्यक्ति 'विश्वे देवा०' इत्यादि से चरु की आहुति देवे और उपस्थान करे तो उसकी आयु 100 वर्ष की होगी। पुष्टि कामना और सम्पत्ति के इच्छुक व्यक्ति के लिए क्रमशः 'इदं जनास०' एवं 'द्यावापृथिवी' मन्त्रों से यज्ञ का विधान किया गया है। पुरुषादि बल और ग्राम के इच्छुक को क्रमशः 'इन्द्र जुषस्व०' मन्त्र से अग्नि में आहुति करने और 'उदेनमुत्तरं' इत्यादि से आहुतियाँ एवं उपस्थान करने का निर्देश है। इसके अतिरिक्त यशकामी किसी कार्य को सम्पन्न करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए सार्वभौम राजा होने के अभिलाषी तथा सर्वाधिपत्य कामी के लिए भी विविध मन्त्रों से होम एवं उपस्थान का विधान किया गया है।

**बहुपशुत्व की कामना से अभिचार कर्म :** सामवेदीय खादिर तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र[4] में इस अभिचार कर्म का विधान करते हुए कहा गया है कि बहु-पशु कामना वाले व्यक्ति को बछड़े के सूखे गोबर से एक हजार आहुतियां देनी चाहिए। यदि छोटे-छोटे पशुओं की अधिकता की कामना हो तो भेड़ के

---

1. कौशिक सूत्र, 3.22.5
2. खादिर तथा द्राह्यायण गृ० सू०, 4.3.10
3. कौशिक सूत्र, 7.59
4. खादिर तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र, 4.3.16

सूखे गोबर से 'क्षुध स्वाहा, क्षुत्पिपासाभ्यां स्वाहा' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए।

कौशिक गृह्यसूत्र[1] के अनुसार बहुत से बैलों की कामना करने वाले को सरूपवत्सा गौ के गोबर के पिण्डों को गुग्गूल लवण में मिलाकर खाने से उसकी अभिलाषा पूर्ण होती है।

**कृत्या-निवारण :** समस्त गृह्यसूत्रों के अन्तर्गत केवल कौशिक गृह्यसूत्र में ही इस प्रकार के प्रयोग उल्लिखित हैं। 'अग्नि के पूर्व मे पिङ्गल वर्ण गौ एवं पश्चिम भाग में रक्त वर्ण अदा का वध करा कर शान्त्युदक करे। 'दूष्या दूषिरसि०' मन्त्र से महाशान्ति का आधान करके शान्त्युदक से आवाप करके शान्त्युदक पात्र में चिति का आधान करे और मन्त्रोक्त क्रिया मे दर्भ, अपामार्ग, सहदेवी, आटरुषक, काम्पील, शीतीवार, संदपुष्प औषधियों कोशा न्त्युदक में डालकर, कर्ता जूता पहनकर शिर पर पगड़ी रखकर, उस शान्त्युदक से कृत्या स्थान का प्रोक्षण करे, यह कर्म रात्रि में करणीय कहा गया है। फिर 'अमित्र चकुषा०' इस मन्त्र से कृत्या का निरीक्षण करता हुआ 'कृतव्यधनि' ऋचा से कृत्या स्थान देखे और इसी 'कृतव्यधनि' ऋचा से कर्म का कर्ता काण्ड (धनुष) से उसका बेधन करे। तत्पश्चात 'दूष्या दूषिरसि' मन्त्र से सरूप वत्सा गौ के दूध में दर्वी से तोन बार मथकर कृत्या के गुल्फों को तीन बार सिंचित करे तथा यूष और मांस को उपर्युक्त मन्त्र से कृत्या को खिलावे। यष्टिओं से चर्म को पिरोकर प्रैषकृत् परिक्रमा करा कर दोनों अंगुलियों से सन्दंशन से बन्धन मुक्त कर उस चर्म में कृत्या को औधे मुंह से लिटा कर प्रैषकृत् शकल से अवसेचन करके यूष और माँस को खिलाने के पश्चात् नवनीत से कृत्या की दोनों आँखों को आँजना चाहिए। उसके पश्चात् अधोमुखी कृत्या को रस्सी से बाँधकर निर्दिष्ट मन्त्र से उठाकर उसे गौ के पाद-चिह्न से मुक्त स्थान पर ले जाना चाहिए अथवा स्थान परिवर्तन से ऊषर भूमि में भी ले जाया जा सकता है। वहाँ पर कर्ता कृत्या को खड़ी कर महाशान्ति उच्च स्वर से बोलता हुआ कृत्या के मर्मस्थानों का संप्रोक्षण करे और कृत्या स्थान को काले बैलों द्वारा हल से जोतवा दे तथा ब्राह्मण कर्ता को दश गायें दक्षिणा में दे। ऐसा करने से मन्त्रों के द्वारा अभिचार देशों का पता लगाया जा सकता है।[2]

---

1. कौशिक सूत्र, 3.20.25
2. तत्रैव, 5.39.2-29

**पशु-पुष्टि कामार्थ एवं सर्वकाम सिद्धि हेतु विविध अनुष्ठान**

**आश्वयुजी कर्म** : विविध गृह्यसूत्रों में वर्णित आश्वयुजी कर्म वस्तुतः पशुओं के कल्याणार्थ करणीय है। इस कर्म का सम्पादन अश्वयुज नक्षत्र से युक्त आश्विन् मास की पूर्णमासी को अश्व गौ इत्यादि पशुओं के कल्याणार्थ किया जाता है। सायवेदीय गोभिल एवं खादिर गृह्यसूत्रों में विहित आश्वयुजी कर्म में केवल गायों से सम्बद्ध क्रियायें ही करने का विधान है।

यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों में इस कर्म का उल्लेख केवल मानव, काठक, वैखानस और पारस्कर गृह्यसूत्रों में ही किया गया है। पारस्कर गृह्यसूत्र में आश्वयुजी पूर्णमासी के दिन किए जाने वाले कृत्य को 'वृषातका' कहा गया है।[1] मानव तथा काठक गृह्यसूत्रों में[2] आश्वयुजी पूर्णमासी के दिन दो कृत्यों को करने का विधान है। इनमें से प्रथम आश्वयुजी कर्म है तथा द्वितीय कर्म को मानव गृह्य-सूत्र में 'ध्रुवाश्वकल्प' और काठक गृह्यसूत्रों में 'गोमता' विधि कहा गया है। वैखानस गृह्यसूत्र में विहित आश्वयुजी कर्म में भी गोभिल तथा खादिर गृह्यसूत्रों की भांति केवल गायों से सम्बद्ध क्रियाएं ही करने का विधान है। इस कर्म में शिव, पशुपति, शंकर तथा पृषातक प्रभृति[3] के निमित्त स्थाली पाक होम किया जाता है। काठक गृह्यसूत्र के अनुसार तो इसमें अश्व तथा अन्य वाहनों की परिचर्या की जाती है। इसमें सर्वविध रसों को चारों ओर चार दिशाओं में और सर्वविध अन्नों को विदिशाओं में रखकर वरुण, अग्नि, अश्विनों तथा आश्वयुजी (आश्विन् मास के पूर्ण चन्द्रमा) के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं। वाहनों को जोता जाता है। कवच प्रभृति पहन कर कुछ व्यक्ति वाहनों पर चढ़ कर तीन बार वेदि की परिक्रमा करते हैं। अन्त में आज्याहुतियाँ रुद्र के लिए प्रदान करके प्रषातक-भक्षण का विधान है।

इस कर्म का उल्लेख ऋग्वेदीय शांखायन गृह्यसूत्र के चतुर्थ अध्याय में भी किया गया है।

---

1. पार० गृ० सू, 2.16.1 (आश्वयुज्यां वृषातक)
2. मानव गृ० सू०, 2.3.4-8; 2.6.1-9; काठ० गृ० सू०, 57, 58
3. तुलना आश्व० गृ० सू०, 2 2.2-3
'पशुपतये शिवाय शङ्कराय पृषातकाय।
स्वाहेति पृषातकमञ्जलिना जुहुयात् ॥'

गोभिल गृह्यसूत्र में गायों के पुष्टि-कर्म के विषय में विधान किया गया है कि जो व्यक्ति गाय की पुष्टि की कामना करता है उसे प्रथम बार उत्पन्न होने वाले बछड़े के मस्तक को गाय के द्वारा चाटने से पूर्व 'गवां श्लेष्मासि' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।[1]

खादिर तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्टिकामी को गाय के द्वारा बच्चा देने पर ताम्र के बने हुए खड्ग के द्वारा बछड़े के कान में चिह्न बनाकर 'स्त्रियाः भुवनमसि सहस्रम्' को पढ़ना चाहिए। तदनन्तर 'लोहितेन स्वधितिना' को पढ़ना चाहिए।[2]

कौशिक सूत्र में केवल गायों की ही पुष्टि हेतु गो-पुष्टि कर्म का विधान किया गया है।[3] गायों को रोग रहित तथा हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए 'अम्बयो-यन्ति, शम्भुमयो भुभ्यां ब्रह्मजज्ञानमागाव एका चमे०' मन्त्रों से गायों को लवण-पान कराने का विधान है। किन्तु लवण देने पर जलपान का निषेध किया गया है। गायों को अधिक दूध होने तथा गर्भ रहने के लिए भी यह कर्म किया जाता है। जलपान के लिए तड़ाग को रोककर तब गायों को जल पिलाने का विधान किया गया है।

**शूलगव कर्म** : यजुर्वेदीय बौधायन गृह्यसूत्र में शूलगव कर्म की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

'यच्छूलेषुपनीय गव्यानि श्रपयन्ति स शूलगवः।'

अर्थात् जिस कर्म में गाय के अवयवों को शूलों (लौह शलाकों) पर पकाया जाता है उसे 'शूलगव' कहते हैं। इस कर्म के द्वारा रुद्र या ईशान को पशु के अङ्गों की आहुतियाँ और बलि अर्पित की जाती है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के व्याख्याता नारायण के मत में इस कर्म के रुद्र से सम्बद्ध होने के कारण ही इसे शूलगव कहते हैं।[4] वैखानस और वाराह गृह्यसूत्र के अतिरिक्त अन्य सभी

1. गो० गृ० सू०, 3.6.3
2. खादिर तथा द्राह्यायण गृ० सू०, 3.1.48
3. कौशिक सू०, 3.19.1-3
4. आश्व० गृ० सू०, 4.9.2

यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों में 'शूलगव' कर्म का वर्णन किया गया है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में शूलगव कर्म को ईशान बलि के नाम से अभिहित किया गया है।[1]

**शूलगव कर्म का प्रयोजन** : पारस्कर गृह्यसूत्र[2] के अनुसार शूलगव कर्म का सम्पादन स्वर्ग, पशु, पुत्र, धन, यश और दीर्घायु प्राप्त करने की कामना से किया जाता है। कृष्ण यजुर्वेदीय काठक गृह्यसूत्र[3] के अनुसार शूलगव कर्म का सम्पादन करके सभी कामनाओं की पूर्ति की जा सकती है किन्तु बौधायन गृह्यसूत्र[4] में विहित है कि गायों के सन्तप्त होने पर, गुप्त होने पर शूलगव कर्म सम्पाद्य है।

**काल** : बौधायन गृह्यसूत्र तथा आग्निवेश्य गृह्यसूत्र के अनुसार प्रत्येक वर्ष मार्गशीर्ष पूर्णमासी को अथवा आर्द्रा नक्षत्र में शूलगव कर्म करना चाहिए।[5] काठक गृह्यसूत्र में शूलगव कर्म शरद अथवा बसन्त ऋतु में[6] तथा मानव गृह्यसूत्र[7] में केवल शरद ऋतु में करने का विधान है। भारद्वाज गृह्यसूत्र[8] में इस कर्म को शुक्ल पक्ष के किसी भी पुण्य नक्षत्र में करने का विधान है जबकि शांखायन गृह्यसूत्र[9] में ठीक इसके विपरीत अर्थात् कृष्ण पक्ष के किसी शुभ नक्षत्र में इस कर्म को करने का विधान है।

**शूलगव कर्म सम्पन्न करने की विधि** : इसमें ग्राम से दूर एकान्त में अर्धरात्रि को सद्य-छिन्न शाखा के यूप में कुशा की एक रस्सी तथा साण्ड के सींग में दूसरी बाँधकर साण्ड का संज्ञापन करके रुद्र के लिए यजन किया जाता है-तत्पश्चात् चारों दिशाओं में कुशा के कूर्चों पर ही बलि प्रदान की जाती है।

---

1. आप० गृ०सू०, 7.21.14
2. पार० गृ०सू०, 3.8.2
3. काठ० गृ०सू०, 5.2.2
4. बौधा० गृ०सू०, 2.7.3
5. बौधा० गृ०सू०, 2.7.1-3; आग्नि० गृ०सू०, 2.5.8
6. काठ० गृ०सू०, 5.2.3
7. मानव० गृ०सू०, 2.5.1
8. भार० गृ०सू०, 2.8
9. शांखा० गृ०सू०, 4.17.3

धान्य के तुष तथा पशु की पूंछ, खाल, सिर तथा पाद अग्नि में होम किए जाते हैं। अग्नि के उत्तर में दर्भ अथवा कुश कूर्चों पर पशु के रक्त को सर्पों के निमित्त अर्पित किया जाता है। इस यज्ञ की कोई वस्तु न ही भक्ष्य होती है और न ही ग्राम में लाई जाती है। इसके अनन्तर एक और बछड़े को भावी शूलगव के लिए छोड़ दिया जाता है।[1] पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार औपासानाग्नि को अरण्य में ले जाकर उसमें पशु की वपा को रुद्र के निमित्त, वसा को अन्तरिक्ष के निमित्त और इनके खण्डों को स्थालीपाक में मिश्रित करके अग्नि, रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, अशनि भव, महादेव और ईशान को अर्पित किया जाता है। पृषदाज्य वनस्पति को तथा स्थालीपाक मिश्रित पशु के अङ्गों को अग्निस्विष्टकृत् को अर्पण करने का विधान है।[2]

बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार अरण्य में स्थापित अग्नि में गौ की वपा और मांसखण्डों को शूलों पर भूनकर एक छोटे पात्र में पकाया जाता है तथा अग्नि के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं के निमित्त आहुतियाँ दी जाती हैं। यज्ञशेष को अग्नि के आगे अर्कपत्रों पर स्थापित किया जाता है। पात्रों की धोवन, आज्य तथा जल को एक पात्र में रखकर गौ की प्रदक्षिणा की जाती है और बांस की शाखा से चारों ओर जल छिड़का जाता है। अन्त में बौधायन ने गौ के स्थान पर अजा अथवा अवि का वैकल्पिक विधान भी किया है अथवा ईशान के निमित्त केवल स्थालीपाक से ही यज्ञ किया जा सकता है।[3] भारद्वाज गृह्यसूत्र, हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ने गोवध का विधान न करके पायस का स्थालीपाक पकाकर अग्नि के पश्चिम में दो कुटिया बनाकर दक्षिण में स्थित कुटिया में शूलगव का समन्त्रक तथा उत्तरीय कुटिया में उसकी पत्नी मीढुषी का सामान्य भाषा में आह्वान करके उनके पुत्र जयन्त को दोनों कुटीरों के मध्य में आह्वान किया जाता है और उन्हें इसी क्रम से जल प्रदान किया जाता है। तत्पश्चात स्थालीपाक के तीन भागों के नीचे ऊपर आज्य डालकर इन देवताओं से स्पर्श करा के व्याहृति होम-पर्यन्त करके स्थालीपाक में से भव, भवानी तथा जयन्त के निमित्त समन्त्र आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। स्विष्टकृत् आहुतियों तक कर्म करके यजमान की गायों को अग्नि के

---

1. आश्व० गृ० सू०, 4.8.1-40
2. पार० गृ० सू०, 3.8.1-14
3. बौधा० गृ०सू०, 2.7.4-28, तुलना आग्नि०गृ० सू०, 2.5.8

पास चारों ओर खड़ा किया जाता है। अन्त में यजमान इन सभी पदार्थों की तीन बार प्रदक्षिणा करता है।[1]

**श्रवणा कर्म अथवा सर्प बलि :** प्रत्येक वर्ष श्रावण मास की पूर्णिमा को किए जाने के कारण इस कर्म का श्रवणा नाम प्रसिद्ध हो गया। वस्तुतः इस कर्म के मूल में सर्पों से भय की भावना निहित है। आश्वलायन, शांखायन, पारस्कर, गोभिल, भारद्वाज एवं हिरण्यकेशि गृह्यसूत्रों[2] में इसे श्रवणा कर्म के नाम से अभिहित किया गया है जबकि बौधायन, मानव तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्रों[3] में इसे सर्पबलि के नाम से सम्बोधित किया गया है। इस कर्म का उद्देश्य सर्पों को सन्तुष्ट करना है। इसमें मानव गृह्यसूत्र का यह वचन प्रमाण है—"सर्पेभ्यो बिभ्यत् श्रावण्यां तूष्णीं भौममेककपालं श्रपयित्वाऽक्षत सक्तून पिष्टवा······जुहोति।"[4] इसमें सर्पराट् की स्तुति की गई है तथा सर्पों से प्रार्थना की गई है कि वे सर्पदंश से मनुष्यों की रक्षा करें।

पारस्कर, भारद्वाज और हिरण्यकेशि गृह्यसूत्रों में सर्पों को गृह में प्रवेश करने से रोकने के उपाय का विधान इस प्रकार किया गया है—"गृहस्थ जितनी दूरी (पर) तक सर्पों के आगमन को रोकना चाहता है, उतनी दूरी पर उसे घर के चारों ओर तीन बार परिसिंचन करना चाहिए। पारस्कर गृह्यसूत्र में परिसिंचन अविच्छिन्न रूप से करने का निर्देश है। इस क्रिया का अभिप्राय सम्भवतः यही होगा कि उस अविच्छिन्न स्थान से सर्प गृह के अन्दर प्रवेश न कर सकें। इन गृह्यसूत्रों में परिसिंचन के समय 'अपश्वेतदाजहि' तथा 'न वै श्वेतस्याहयाचारे०' इत्यादि दो मन्त्रों के उच्चारण का विधान है।[5] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[6] में इन्हीं दो मन्त्रों का उच्चारण करते हुए जल के कुम्भ से आगार अथवा घर के

---

1. भार० गृ० सू०, 2.8-9; आप० गृ० सू०; 7.19.13-14; हिरण्य० गृ० सू०, 2.8.1-11
2. आश्व० गृ० सू०, 2.1.1-15; शांखा० गृ०सू०, 4.15.1-22
3. बौधा० गृ०सू०, 3.10.1; मानव गृ०सू०, 1.4.1; आप०गृ० सू०, 7.18.5
4. मानव गृ० सू०, 3.16.1
5. पार० गृ० सू०, 2.14.19; हिरण्य० गृ० सू०, 2.16.8; भार० गृ० सू०, 2.1
6. आप० गृ० सू०, 7.18.2

चारों ओर परिषिञ्चन करने का विधान है।

पारस्कर गृह्यसूत्र[1] में श्रवणाकर्म की सम्पूर्ण विधि का उल्लेख इस प्रकार है—"गृहस्वामी स्थालीपाक तैयार करके, अक्षत धान को भूनकर एक कपाल पुरोडाश पकाकर, धानों का अधिकांश पीसकर, आज्य भाग आहुतियाँ देता है। तत्पश्चात् विष्णु, श्रवण नक्षत्र, श्रावणी पौर्णमासी तथा वर्षा ऋतु को स्थाली पाक की आहुतियाँ दी जाती हैं। सर्पों के लिए घृताक्त सक्तुओं की आहुति दी जाती है और एक कपाल पुरोडाश का ध्रुव भौम के लिए होम किया जाता है। यज्ञ शेष खाकर यजमान सर्पों को सत्तुओं की बलि प्रदान करता है। सर्पों को स्नान करा के उनको कंघी, अञ्जन, अनुलेपन तथा मालाएं अर्पित करता है। शांखायन गृह्यसूत्र एवं हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र में क्रमशः सर्पों को दर्पण दर्शाने तथा किंशुक पुष्प अर्पण करने का विधान है।[2] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[3] में इसके अतिरिक्त आरग्वध (अमलतास) स्थगर (तगर) तथा उशीर (खस) भी सर्पों के निमित्त अर्पण करने का विधान किया गया है। शेष सत्तुओं को स्थण्डिल पर बिखेर दिया जाता है फिर जल प्रदान करके सर्पों की अर्चना और आग्रहायणी-पर्यन्त प्रतिदिन सूर्यास्त के पश्चात् अग्नि-परिचर्या करके दर्वी से सर्पबलि देने का विधान है।

**वृषोत्सर्ग** : गो-सन्तति की वृद्धि के लिए साण्ड को खुला छोड़ देने के लिए क्रियमाण कर्म का नाम वृषोत्सर्ग है। यह कार्तिक या रेवती नक्षत्र में पड़ने वाली आश्वयुजोक पूर्णिमा को किया जाता है। इसमें गायों के मध्य में अग्नि प्रज्वलित करके उसमें पायस-स्थालीपाक पकाकर पूषन् को अर्पित किया जाता है। रुद्र सम्बन्धी मन्त्रों का उच्चारण करके अतिबलिष्ठ तथा सुन्दर साण्ड और चार श्रेष्ठ अल्पायु गायों का पूजन करके उनका समन्त्र उत्सर्जन किया जाता है। गायों के मध्य स्थित साण्ड को ऋग्वेद (10.169.1-4) के मन्त्रों से सम्बोधित किया जाता है। इस कर्म का उल्लेख केवल शांखायन, पारस्कर और काठक गृह्यसूत्रों में ही हुआ है।[4]

---

1. पार० गृ० सू०, 2.14
2. शांखा० गृ० सू०, 4.15.12-22; हिरण्य० गृ० सू०, 2.16.5
3. आप० गृ० सू०, 7.18.6, 7.11
4. शांखा० गृ० सू०, 3.11; पार० गृ०सू०, 3.9; काठ० गृ० सू०, 59.1-5

**प्रायश्चित्त कर्म** : गृह्यसूत्रों में वर्णित गृह्यकर्मों का सम्पादन यथासमय न करने पर, विधिपूर्वक न करने पर अथवा अनुष्ठान करते समय अन्य कोई त्रुटि हो जाने पर, तत् फलस्वरूप होने वाले अनिष्टों के निवारणार्थ और कल्याण प्राप्ति के लिए गृह्यसूत्रों में प्रायश्चित कर्मों का विधान किया गया है। तैत्तिरीय संहिता के बौधायन और वैखानस गृह्यसूत्रों में अन्य गृह्यसूत्रों की अपेक्षा अत्यन्त विस्तार से प्रायश्चित् कर्मो की विधियों का उल्लेख किया गया है। बौधायन गृह्यसूत्र के चतुर्थ प्रश्न के समस्त अध्यायों में गर्भाधान, पुंसवन, इत्यादि समस्त गृह्य कर्मों का अनुष्ठान न करने पर, क्रियाओं को करने का क्रम विपरीत हो जाने पर, द्रव्य, हवि, मन्त्र से सम्बद्ध कोई त्रुटि हो जाने पर, अग्नि और ऋत्विक् के मध्य से कोई पशु-पक्षी या कीट के निर्गमन पर, पक्षी के बोलने पर, छींक अथवा खांसी आ जाने पर, अग्नि बुझ जाने पर, कर्मों के अनुष्ठान का अतिक्रमण हो जाने पर तथा अन्य अनुष्ठान सम्बन्धी त्रुटियाँ हो जाने पर प्रायश्चित कर्मों का विधान किया गया है। इसी प्रकार वैखानस गृह्यसूत्र के पूर्ण छठे प्रश्न में गृह्यसूत्र में वर्णित गृह्यकर्मों और संस्कारों का सम्पादन, यथा, समय न करने पर तथा सप्तम प्रश्न में मृतक की अन्त्येष्टि कर्म से सम्बद्ध क्रियाओं के न करने पर अथवा उनमें त्रुटि हो जाने पर प्रायश्चित करने के नियमों का विधान किया गया है। भारद्वाज और आग्निवेश्य[1] गृह्यसूत्रों में यज्ञीय उपकरणों के गिरने, टूटने या जल जाने पर प्रायश्चित विधान है। बौधायन, आग्निवेश्य और वैखानस गृह्यसूत्रों में निषिद्ध कर्मों का आचरण करने पर भी प्रायश्चित विधान है।

शांखायन गृह्यसूत्र के पंचम अध्याय में दर्शपूर्ण मास के न करने पर, कपोत अथवा उल्लू के घर में बैठने पर, दुःस्वप्न दर्शन एवं अर्धरात्रि में कौएं के बोलने पर, सीमन्तोन्नयन के बिना बालकोत्पत्ति पर तथा जात कर्म न करने पर, यज्ञीय पात्रों के टूटने पर, यूप की शाखाएं फूटने पर विविध प्रायश्चित विहित हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र में अवकीर्णि प्रायश्चित (ब्रह्मचर्य भङ्ग प्रायश्चित) का विधान किया गया है।

कौशिक सूत्र के पंचम अध्याय में विविध कर्मों हेतु शान्ति कर्म का विधान है, यथा—दुःस्वप्न दर्शन होने पर, पाप नक्षत्र में उत्पन्न के लिए शान्ति कर्म,

---

1. भार० गृ० सू०, 3.18-21; आग्नि० गृ० सू०, 2.7.4,8,9;

ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित रहते कनिष्ठ का विवाह करने पर, आधान-दीक्षा करने पर शान्ति कर्म, काकोपविष्ट-दोषशान्ति, शकुन शान्ति, प्रभृति ।

**गृह्यसूत्रों में वर्णित अद्भुत घटनायें, अपशकुन एवं शान्तिकर्म** : चारों वेदों के विभिन्न गृह्यसूत्रों में कुछ अद्भुत घटनाएँ अथवा अपशकुन घटने पर उनसे होने वाले अनिष्ट के निवारण एवं शान्ति हेतु विविध प्रायश्चित होमों तथा मन्त्रों के, जप का विधान किया गया है ।

उस समय गृह के स्तम्भ में अंकुर निकलना, मधु का छत्ता बनना, बल्मीक होना, गोंद और कुकरमुत्ते निकलना, दुःस्वप्नदर्शन आदि अशुभ माना जाता था । इसके अतिरिक्त स्तम्भ का अपने-आप टूट जाना, एक स्त्री का दूसरी स्त्री को मारना, गाय द्वारा गाय का या स्वयं का दूध पीना, मूसल गिरना अथवा टूटना, भयार्त अथवा समूह से प्रथक् हुए कपोत का घर में प्रवेश करना और उसके पाद-चिह्न दधि, दुग्ध, मठा के पात्रों, सत्तुओं अथवा घृत में दिखाई देना, श्वान का जन्म होना, स्थाली टूटना, एक स्थाली से दूसरी स्थाली में स्वयं जल आ जाना, यक्षों का उपद्रव करना, शृगाल का बोलना, आकाश में फेन, नीले रंग की मक्खियों का अनाचार, यज्ञ-यूप का टूटना, दिन में उल्कापात होना, नक्षत्रों का गिरना, मुख से मांस गिरना, अग्निरहित धूम का होना, एकाएक किसी पदार्थ का टूटना, गाँव की अग्नि से शाला का जल जाना, भूकम्प आना, दो अलग-अलग रज्जुओं का संसर्ग, वंश में शब्द होना, कुम्भ के रखने से सक्तुधानी अथवा उखा अथवा अनिङ्गिता का विकसित होना, आदि भी अद्भुत कार्य हैं और अनिष्ट के सूचक हैं ।[1]

मानव गृह्यसूत्र के अनुसार यदि रुद्र, विष्णु इत्यादि किसी देवता की प्रतिमा जल जाए, नष्ट हो जाए, गिर जाए, हँसने लगे अथवा चलने लगे तो अशुभ घटित पोता है ।[2]

---

1. बौधा० गृ० सू०, 3.16; काठ० गृ०सू०, 5.6.1; आप० गृ०सू०, 8.23.9; गो० गृ० सू०, 3.7; शांखा० गृ० सू० 5.5; भार० गृ० सू०, 2.32; हिरण्य० गृ० सू०, 1.17.5-6; आग्नि० गृ० सू०, 2.5.2; कौशिक सूत्र 13.93; जैमि० गृ० सू०, 2.7
2. यद्यर्चा दलेद्वा, न श्येद्वा, प्रपतेद्वा, प्रहसेद्वा प्रचलेद्वा······ ···।

मानव० गृ० सू०, 2.15.6

कौशिक सूत्र के अनुसार जहाँ देवमूर्तियाँ या देवगण आकाश में नाच करें, अपनी जगह से हट जाएं, हँसे, गान करें अथवा अन्य-अन्य रूपों को धारण करें तो अशुभ घटित होता है।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त अद्भुत घटनाओं के आधार पर कौशिक सूत्र में समग्र रूप में अद्भुत कर्मों की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—'संसार में स्वभावत: जो कर्म-क्रियायें होती हैं कभी-कभी कुछ आश्चर्यमय, लोक-विरुद्ध क्रियायें हो पड़ती हैं उसको 'अद्भुत' कहते हैं। ऐसे अद्भुत कार्यों की जहाँ यथाविधि शान्ति नहीं होती है वहाँ दोष होता है।[2]

अत: विभिन्न गृहसूत्रों में इन अद्भुत कर्मों एवं अपशकुनों के दृष्टिगोचर होने पर उनकी शान्ति के निमित्त विविध प्रायश्चित्त होमों का विधान किया गया है।

भारद्वाज गृह्यसूत्र[3] में रसोईघर में कपोत के घुसकर बैठने, स्तम्भ में कोपल फूटने, बल्मीक निकलने आदि क्रियाओं के होने पर स्थालीपाक से विधिवत् होम का विधान किया गया है।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[4] में गृह्यस्तम्भ में कोपल फूटने, मधुमक्खियों द्वारा छत्ता बनाने, कपोत-पाद चिह्न दृष्टिगोचर होने, रोग आदि के होने पर अमावस्या की रात्रि में ग्यारह मन्त्रों से आहुति देने का विधान किया गया है।

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र में मधुमक्खी के छत्ता बनाने, एक गाय का दूसरी गाय द्वारा दूध पिये जाने पर, बल्मीक निकलने पर अथवा अन्य अद्भुत कार्य दृष्टिगोचर होने पर प्रायश्चित होम का विधान है।

बौधायन गृह्यसूत्र[5] में स्तम्भ में कोपल प्रस्फुटित होने, कपोत पाद-चिह्न दिखाई देने, कौवे के घर में प्रविष्ट होने, अग्निरहित धूम उत्पन्न होने, अकस्मात्

---

1. दैवतेषु नृत्यस्सु, च्योतस्सु, हसत्सु गायत्सु। कौशिक सूत्र, 13.93.13
2. कौशिक सूत्र, 13.93.1
3. भार० गृ० सू०, 2.32
4. आप० गृ० सू०, 8.23.9
5. बौधा० गृ० सू०, 4.4.12-13

अग्नि के जलने, मधु के निकलने, मेढक के बोलने आदि अद्भुत कर्मों के होने पर विवेच्य स्थल पर 'यत इन्द्र भयामहे, स्वस्तिदाविश्पतिः' इन दो मन्त्रों से पाक आहुतियों के पश्चात् विहित चार-चार मन्त्रों से आज्याहुति का विधान है एवं आज्य शेष तथा उदक् शेष से उत्पात-स्थल पर प्रोक्षण का निर्देश है।

मानव एवं काठक गृह्यसूत्रों[1] के अनुसार समूह में विचरण करने वाला कपोत यदि समूह से पृथक हो जाए और भयार्त होकर गृह में प्रवेश करे अथवा दधि, सक्त, घृत, भस्म आदि पर उसके पाद-चिह्न दिखाई दें तो स्थालीपाक से होम करना चाहिए।

कौशिक गृह्यसूत्र[2] में उपर्युक्त अद्भुत कार्यों के दृष्टिगोचर होने पर अथवा अन्य किसी भी प्रकार के अद्भुत एवं अनिष्ट के सूचक कार्य के दिखाई देने पर अमावस्या, पूर्णमासी अथवा किसी भी शुभ नक्षत्र में नवीन वस्त्र धारण करके होम से पूर्ण उपवास रखकर, अग्नि का आधान करके उसमें भिन्न-भिन्न अद्भुतों के निमित्त, भिन्न-भिन्न मन्त्रों से आहुतियाँ देने का प्राविधान किया गया है।

यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों में भी कुछ ऐसे निमित्तों का उल्लेख किया गया है जिनके प्रस्तुत होने पर अशुभ के निवारणार्थ अथवा शुभ फल प्राप्ति हेतु कुछ विशिष्ट मन्त्रों का जप किया जाता है। शुक्ल-यजुर्वेदीय पारस्कर गृह्यसूत्र[3] के अनुसार यदि हवा से वस्त्र का किनारा उड़कर ऊपर आ जाए, मेघों की गर्जना हो, कृष्ण काक अथवा शृगाली का स्वर सुनाई दे तो इनसे सूचित होने वाले अनिष्टों के निवारणार्थ विनियुक्त मन्त्रों का जप करना चाहिए।

कृष्ण यजुर्वेद के केवल तैत्तिरीय शाखा के बौधायन, आपस्तम्ब और भारद्वाज गृह्यसूत्रों में ही अशुभ निवारण के लिए विशिष्ट मन्त्रों के जप का विधान उपलब्ध होता है। इन गृह्यसूत्रों में हवा से वस्त्र का किनारा व्यक्ति के ऊपर आ जाने पर[4], इसके अतिरिक्त अशुभ पक्षी के बोलने पर अथवा देख

---

1. मानव० गृ० सू०, 2.7; काठ० गृ० सू०; 5
2. कौशिश सूत्र, 13.93 पर्यन्त
3. पार० गृ० सू०, 3.15-16-19
4. बौधा० गृ० सू०, 4.2.5; आप० गृ०सू०, 3,9.3; भार० गृ०सू०, 2.30
   हिरण्य० गृ० सू०, 1.16.3

लेने पर, पक्षी द्वारा बीट कर दिए जाने पर,[1] किसी कार्य के मध्य छींक या खांसी आने पर,[2] किसी व्यक्ति के ऊपर वृक्ष से फल टूटकर गिरने पर,[3] जम्हाई आने पर,[4] वर्षा की सम्भावना न होने पर भी जल की एक बूंद गिरने पर,[5] जलपूर्ण नदी में डुबकी लगाने पर, अकेले शृगाल देख लेने पर,[6] तथा इसी प्रकार के अन्य निमित्त होने पर शुभ परिणाम प्राप्त करने हेतु मन्त्रों के जप, जल का स्पर्श आदि करने का विधान है।

**अन्य अनुष्ठान :** गृह्यसूत्रों में उपर्युक्त विधि-विधानों के अतिरिक्त भी अभिलाषाओं को पूर्ण करने हेतु कुछ अत्यन्त सरल एव संक्षिप्त अनुष्ठानों का प्रतिपादन किया गया है और ये अनुष्ठान अधिकांशत: यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों में ही उल्लिखित हैं, यथा—आग्निवेश्य गृह्यसूत्र में शुभाशुभ के निमित्त वायसों की बलि प्रदान करने की विधि,[7] वृष्टि के लिए पर्जन्य कल्प,[8] गृह की समृद्धि के लिए गृह शान्ति कर्म,[9] मृत्यु को दूर रखने के लिए अपमृत्युञ्जय कल्प,[10] आयु, तेज, यश, भूति, पुत्र और रूप के लिए वर्ष भर तक प्रत्येक रविवार (आदित्य वार) को रवि कल्प[11] करने की विधि का वर्णन है।

आग्निवेश्य गृह्यसूत्र में ही सन्तान प्राप्ति हेतु प्रजाधि होम करने क-

---

1. बौधा० गृ० सू०, 4.2.9-10; भार० गृ० सू०, 2.3.30-31; आप० गृ० सू०, 3.9.3; हिरण्य० गृ० सू०, 1.6.5,18
2. बौधा० गृ० सू०, 4.2.11; आप० गृ० सू०, 3.9.2
3. भार० गृ० सू०, 2.30; आप० गृ० सू०, 8.13.8 हिरण्य० गृ० सू०, 1.16.6
4. हिरण्य० गृ० सू०, 1.16.2
5. भार० गृ० सू०, 2.30; आप० गृ० सू०, 8.13.8; हिरण्य० गृ० सू०, 1.16.6
6. हिरण्य० गृ० सू०, 1.16.2,19
7. आग्नि० गृ० सू०, 2.4.8
8. तत्रैव, 2.5.10
9. तत्रैव, 2.5.9
10. तत्रैव, 2.5.4
11. तत्रैव, 2.4.11

विधान है जबकि मानव एवं काठक[1] गृह्यसूत्रों में इसी उद्देश्य से प्रतिपदा के दिन 'ब्रह्मणाग्निः' (ऋग् 10.162.1-6) इन छः ऋचाओं से स्थालीपाक से षडाहुतियों द्वारा होम करने का विधान किया गया है । मानव गृह्यसूत्र में इस कर्म को एक वर्ष तक करने का निर्देश है और इसे पुत्रेष्टि याग के नाम से अभिहित किया गया है । इसी गृह्यसूत्र[2] में धन-सम्पत्ति को प्राप्त करने एवं अन्य श्रेष्ठ इच्छाओं को पूर्ण करने के उद्देश्य से षष्ठी-कल्प नामक कृत्य को करने का विधान किया गया है जो षष्ठी के दिन सम्पाद्य कहा गया है । इस कर्म को करने के लिए पंचमी के दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके, पूर्व की ओर मुख करके हविष्यान्न खाने तथा पूर्व की ही ओर सिर करके भूमि दर्भों अथवा शालि-धान के पयालों पर शयन किया जाता है । अगले दिन सूर्यास्त होने पर पयस में पकाये गए स्थालीपाक से षष्ठी देवी, श्री, ह्री, लक्ष्मी, उपलक्ष्मी, नन्दा, हरिद्रा, समृद्धि, जया, कामा इत्यादि देवियों को आहुति अर्पित करते हुए होम किया जाता है ।

काठक गृह्यसूत्र[3] में स्त्रियों के सौभाग्य के लिए होलाक कर्म करने का विधान है।

**धर्मसूत्रों में अभिचार और उनके लिए किए गए विधान :** भारतीय धर्म का मूलाधार आचार है और धर्मसूत्रों में आचार को ही प्रधानता दी गई है । हिन्दू समाज के निर्माण की आधारशिला आचार ही है । अतः भारतीय संस्कृति और समाज में जब तक आचार एवं नैतिकता का प्राधान्य रहा तब तक वह उत्तरोत्तर विकासोन्मुख रहा किन्तु जब-जब आचार एवं नैतिकता की उपेक्षा हुई तब-तब हमारा समाज और संस्कृति अशान्ति, हिंसा और अकल्याण से ग्रस्त हो गए ।

यद्यपि सृष्टि के उद्‌गम काल से ही प्रत्येक संस्कृति एवं समाज के लोगों को यह आभास होता आया है कि आचारविहीन तथा अनैतिकतापूर्ण आचरण करने से मनुष्य को उसका क्या परिणाम भुगतना पड़ा है अर्थात् ऐसे आचरण से वह कभी भी सुख और समृद्धि की ओर अग्रसर न हो सका । इसका ज्वलन्त

---

1. मानव० गृ० सू०, 2.18; काठ० गृ० सू०, 48
2. मान० गृ० सू०, 2.3.9
3. काठ० गृ० सू०, 72

उदाहरण रामायण ग्रन्थ का एक पात्र रावण है जो अत्यन्त विद्वान् होते हुए भी मात्र अपने अनैतिक आचरण एवं हिंसक प्रवृत्ति के कारण ही सकुटुम्ब पतन के गर्त में समा गया था। इससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीनकाल से ही प्रत्येक समाज में दो विचारधाराओं के लोग हुआ करते हैं।

प्रथम तो वे जो धार्मिक, अहिंसक और नैतिक आचरण के पक्षधर हैं। द्वितीय कोटि में उन निकृष्ट व्यक्तियों की गणना की जा सकती है जो लौकिक सुख की प्राप्ति हेतु सदैव अनैतिकतापूर्ण आचरण करना ही अपना धर्म समझते हैं।

इसी प्रकार जब हम वेदकालीन समाज पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें वहाँ भी उभयविध विचारधाराओं वाले लोगों के दर्शन होते हैं। अतः तत्कालीन भारतीय समाज को पतन के गर्त में गिराने से बचाने तथा अनैतिक आचरण के द्वारा समाज में निम्न स्थान प्राप्त कर रहे लोगों को भी भूल-सुधार तथा प्रायश्चित कर्मों के दिशा-निर्देश से समाज में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान दिलाने के उद्देश्य से विभिन्न धर्म-ग्रन्थों का उद्भव और विकास हुआ।

इन धर्म-ग्रन्थों में नैतिक भावनाओं का केवल प्रतिपादन ही नहीं किया गया है, अपितु उसे वास्तविक जीवन की कसौटी पर भी कसा गया है। नैतिक विचारों को अभिव्यक्त करते समय तथा उनका विधान करते समय धर्मशास्त्रकारों को यह पूर्ण ध्यान रहा है कि मनुष्य में स्वाभाविक दुर्बलता होती है। उसका अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रह पाता। वह ऐहिक सुख की प्राप्ति के लिए किसी भी तरह के कर्मों को करने में पीछे नहीं रहता। अभीष्ट-सिद्धि के लिए वह साधना के मार्ग में भी सात्विक प्रवृत्तियों के साथ-साथ तामसिक प्रवृत्तियों का आश्रय लेने से भी नहीं चूकता। अतः धर्मग्रन्थों में मानव की इस स्वाभाविक दुर्बलता तथा पतनोन्मुख प्रवृत्तियों को नियन्त्रित कर उन्हें कल्याण एवं श्रेयस् मार्ग पर अग्रसित होने की प्रेरणा धर्मशास्त्रकारों ने दी है।

सामाजिक उत्थान की दृष्टि से धार्मिक सूत्रों, शास्त्रों और स्मृतियों में, विशेषतया उनके व्यवहाराध्यायों में आथर्वण कृत्यों के अभद्र पक्ष पर विशेष रूप से निर्णय दिए जाने अपेक्षित हैं, क्योंकि वेदकालीन समाज में साधकों का एक वर्ग वह था जो अपनी सात्विक साधना में या पूजा-पाठ में इस प्रकार की

पूजन-सामग्री एवं मन्त्रों का प्रयोग करता था जो नैतिकता की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है। उनका सात्विक आचरण भी सन्देहपूर्ण होता था। वे ऐहिक सिद्धि के लिए विभिन्न प्रकार से यज्ञों का सम्पादन करते थे जिनका उद्देश्य मात्र अभीष्ट-फल-प्राप्ति ही होता था। इन यज्ञों में वे विभिन्न पशुओं की बलि दिया करते थे, मदिरा, माँस एवं औषधियों का प्रयोग किया करते थे। यज्ञीय जल तथा रज से विभिन्न अभिमन्त्रण कर्म करते थे, यथा—जल या मन्त्र से अभिमन्त्रित वस्तुओं को अपने शत्रु के विरुद्ध प्रयोग में लाते थे। अथर्ववेद में ऐसे साधकों को 'आथर्वण' की संज्ञा दी गई है। ये आथर्वण सदैव स्वयं के लिए अथवा किसी अन्य व्यक्ति की अभीष्ट-सिद्धि के लिए ऐसे ही अभद्र कृत्यों को करते थे। इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से निन्दित इन कृत्यों के द्वारा वे स्वयं तथा यजमान को पतन की ओर उन्मुख करते थे। वैदिक काल में प्रचलित आथर्वणों के कर्म मारण, मोहन, उच्चाटन आदि विख्यात हैं। वस्तुतः ये सभी निकृष्ट कोटि के एवं हेय हैं, क्योंकि ये माया, यातु प्रेमाभिचार, मोहन, उच्चाटन, मारण आदि से सम्बद्ध टोटके अन्त में हानिकारक रूप में ही प्रतिफलित होते हैं। अतः धर्मग्रन्थ स्पष्ट शब्दों में यह निर्णय देते हैं कि 'अथर्वन' चाहे कितना ही उपयोगी एवं महनीय क्यों न हो, चरमतः वह अपने स्वरूप एवं स्थान में अवरकोटि का ही ठहरता है क्योंकि इसके अनुष्ठान अपावन हैं और इसलिए हमें या तो कठोरता के साथ इन्हें नियमित कर देना चाहिए अथवा उचित दण्डविधान द्वारा इनका निषेध ही कर देना चाहिए।

बौधायन धर्मसूत्र,[1] वसिष्ठ धर्मशास्त्र[2] एवं हारीत धर्मसूत्र[3] में अभिचार कर्मों की खान अथर्ववेद को चतुर्थवेद का स्थान दिया गया है। विभिन्न धर्मसूत्रों—गौतमधर्म-सूत्र[4], बौधायन धर्मसूत्र[5] और वसिष्ठ धर्मशास्त्र[6] आदि में अथर्व-

---

1. ऋग्भ्यो यजुर्भ्यः सामभ्योथर्वभ्यः श्रद्धायै प्रज्ञायै श्रियै ह्रियै············।
   बौधा०ध० सू०, 3.94
   अथातः संप्रवक्ष्यामि सामर्ग्यजुरथर्वणाम्। कर्मभिर्यैश्वाप्नोति क्षिप्रं कामान्मनोगतान्। तत्रैव, 4.5.1
2. वासिष्ठ ध०शा०, 22.9
3. हारीत ध० सू०, 3.45
4. उपनिषदो वेदान्तः सर्वच्छन्दः सु संहिता मूधन्यद्यमर्षणम·········।
   गौतम० ध० सू०, 3.1.12
5. सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्री 'शिरसा सह। त्रिः पठेदायत प्राणः प्राणायाम स उच्यते। बौधा० ध० सू०, 4.1.28
6. वासिष्ठ ध० शा०, 22.9

शिरस नामकी आथर्वण उपनिषद् का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद के पवित्र ग्रन्थों को ब्राह्मण के वास्तविक या मूल अस्त्र बताया गया है जिनकी सहायता से वह अपने शत्रुओं को पछाड़ सकता है। गौतम धर्मसूत्र[1] के अनुसार राजा को पुरोहित के रूप में उसी का वरण करने के लिए कहा गया है जो अथर्वन् एवं अङ्गिरस कर्म में निष्णात हो, जहाँ पर राजा को ज्योतिषियों और शकुन-वेत्ताओं के कथनों पर ध्यान देने के लिए कहा गया है किन्तु इस विधान के अनुरूप ही आगे पुरोहितों द्वारा सम्पादित कर्मों के लिए नियमों का वर्णन भी किया गया है, यथा, पुरोहित को गृह्याग्नि में प्रायश्चित क्रिया (शान्तिकर्म) सम्पत्ति के लिए अनुष्ठान और शत्रुओं के प्रतिकूल अभिचार कर्मों को करने का निर्देश है।[2] निश्चय ही ऐसा पुरोहित अथर्वन् ही हो सकता है।

उपर्युक्त विधान से यह स्पष्ट होता है कि धर्मसूत्रों में निकृष्टतम कर्मों वाले व्यक्तियों का सामाजिक अथवा धार्मिक बहिष्कार न करके उनको भी विभिन्न नियमों द्वारा नियमित कर दिया गया है।

बौधायन धर्मसूत्र में यातुधान कहाने वाले राक्षसों को तिलों द्वारा हटाने का विधान है[3] जिससे यह स्पष्ट होता है कि धर्मसूत्र भी वैदिक आभिचारिक क्रियाओं का स्पर्श किए बिना न रह सके।

यद्यपि वेदों के प्रति धर्मग्रन्थों की पूर्ण आस्था थी और वेद विहित नियमों के पालन का निर्देश भी धर्मसूत्रों में किया गया है। लेकिन धर्मग्रन्थों का उद्देश्य तो मानव को अन्धकारमय पथ से हटाकर उन्नति की ओर अग्रसर करना है। इसीलिए इनमें वेदों में वर्णित घृणित एवं निकृष्ट कृत्यों तथा अनैतिक आचरण और अनुष्ठान करने वाले पापियों का वर्णन तथा उनके लिए विविध

---

1. यानि च दैवोत्पातचिन्तकाः प्रब्रूय ·· स्तान्याद्रियेत।
गौतम ध० सू०, 2.2-5

2. शान्तिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यन्मङ्गल संयुक्तान्याभ्यदपिकानि······शालाग्नौ कुर्यात्।
तत्रैव, 2.2.17

3. यातुधानाः पिशाचाश्च प्रतिलुम्पन्ति तद्हविः।
तिलदाने ह्यदायादास्तथा क्रोधवशेऽसुराः॥
बौधा० ध० सू०, 2.8.15.4

नियमों, यथा—दण्ड विधान, प्रायश्चित्त कर्मों एवं व्रतों का विधान भी किया गया है।

विष्णु धर्मशास्त्र[1] में अथर्ववेद के मारण तन्त्रों के उच्चारण करने वाले लोगों को सात पापियों में से एक कहा गया है। अथर्ववेद में अधिकांशत: अभिचार-कर्मों का संग्रह होने के कारण ही आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अथर्ववेद की हीनता का संकेत है और कहा गया है कि स्त्रियों और शूद्रों का ज्ञान अथर्ववेद का पूरक है।[2] समस्त धर्मसूत्रों में अथर्ववेद-विहित कृत्यों की निन्दा की गई है और उनके लिए दण्ड-विधान किया गया है। इन दण्ड-विधानों में यद्यपि कहीं भी किसी वेद का नामोल्लेख नहीं है, फिर भी परोक्ष-रूप से यह दण्ड विधान वैदिक अपकृत्यों के लिए ही किए गए हैं।

शत्रुओं का निराकरण करने वाले तान्त्रिक अभिचारों और सामान्य अभिशापों से पाप उत्पन्न होता है जिनके शमन के लिए धर्मसूत्रों में कठोर तपस्या का विधान किया गया है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र[3] में उल्लेख है कि अनार्य, आचरण का दोषी, दूसरों पर दोष लगाने वाला, निषिद्ध आचरण का अनुसरण करने वाला, वर्जित वस्तु का भक्षण और पान करने वाला, शूद्रा स्त्री से मैथुन करके योनि के अतिरिक्त अन्यत्र वीर्यस्खलन करके दोषयुक्त, जानबूझ कर शत्रु आदि के नाश के लिए अथवा अनजान ही आभिचारिक कर्म करने पर 'आपोहिष्ठा मयो भुव' आदि तीन मन्त्रों से तथा 'हिरण्य वर्णाश्शुचयः पावकाः' आदि चार मन्त्रों से स्नान तथा जल से अभिषेक करे, अथवा वरुण के मन्त्रों 'इमं मे वरुण', 'तत्त्वायामि', 'त्वन्नो अग्ने' आदि मन्त्रों अथवा 'पवमानस्सुवर्जनः' अनुवाक से अपराध की मात्रा के अनुसार स्नान करे।

बौधायन धर्मसूत्र[4] में अभिचार कर्म को अशुचिकर पापों की श्रेणी में रखा

---

1. उद्यतासिविषाग्नि च शापोद्यतकरं तथा।
   आथर्वणेन हन्तारं पिशुनं चैव राजसु॥ विष्णुस्मृति, 5.191
2. सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च।
   आप० ध० सू०, 2.11.29.11
3. तत्रैव, 1.9.26.7
4. बौधा० ध० सू०, 2.1.2.18

गया है। इस सूत्र में पातक के अतिरिक्त अन्य कोई भी पाप कर्म करने पर प्रायश्चित स्वरूप वेदों के विद्वान् ब्राह्मण को भूरे या पिङ्गल वर्ण की प्रचुर रोम वाली गौ का, उसके ऊपर जल छिड़क कर तथा काला तिल बिखेर कर दान करने का विधान है।

गौतम धर्मसूत्र[1] में द्रव्य आदि देकर अभिचार कर्म करने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेरित करने वाले को पतनीय कहा गया है और अभिचार स्वरूप ही किसी व्यक्ति के विरुद्ध वैदिक मन्त्रों का प्रयोग किए जाने पर उससे लगने वाले पाप से मुक्ति हेतु एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखने का विधान किया गया है।

धर्मसूत्रों में आभिचारिक रूप में प्रयुक्त औषधियों को भी अपवित्र माना गया है। गौतम धर्मसूत्र[2] में औषधियों का प्रयोग करने वाले चिकित्सक एवं शत्रु का अन्न अभोज्य बताया गया है। यही विधान आपस्तम्ब धर्मसूत्र और वासिष्ठ धर्मशास्त्र[3] में भी किया गया है।

धर्मग्रन्थों के अनुसार ज्योतिष एवं भविष्यकथन भी अमाङ्गलिक व्यवसाय हैं[4] क्योंकि यह सर्वथा आथर्वणिक ही हैं।[5]

वैदिककाल में प्रचलित मूलकर्म (श्येन आदि अभिचार कर्म) का भी निषेध धर्मग्रन्थों में किया गया है। गौतम धर्मसूत्र में तो सामान्य जनता के लिए यज्ञ कराने वाले (ग्रामयाजक) को भी अपवित्र माना गया है।[6]

इस प्रकार विविध धर्मसूत्रों एवं ग्रन्थों में वर्णित विविध पापों के लिए पाप की श्रेणि के अनुसार ही प्रायश्चित कर्मों तथा दण्ड का विधान किया

---

1. गौतम ध० सू०, 3.4.33
2. उत्सृष्ट पूश्चल्य ........ विद्विषाणानाम्। तत्रैव, 2.8.17
3. आप० ध० सू०, 1.6.18.21 तथा वासिष्ठ ध० शा०, 14.2.19
4. बौधा० ध० सू०, 2.1.2.16; वासिष्ठ ध० शा०, 10.21; मनु० 3.162; विष्णुस्मृति, 82.7
5. तुलना अथर्व०, 6.128; कौशिकसूत्र, 50.15
6. न भोजयेत्स्तेनक्लीवपतितनास्तिक ........ प्रातिहारिकान्। गौतम ध० सू०, 2.6.15

गया है। प्रायश्चित कर्मों के अन्तर्गत विविध प्रायश्चित व्रतों का उल्लेख भी धर्मग्रन्थों में हुआ है जिनमें कृच्छ्र आदि व्रतों का विस्तृत विवरण सामविधान ब्राह्मण (1.2.8) में प्रस्तुत किया जा चुका है तथा अन्य प्रायश्चित कर्मों का उल्लेख भी ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं गृह्यसूत्रों में किया जा चुका है।

धर्मसूत्रों में प्रायश्चित स्वरूप किए गए व्रतों में चान्द्रायण व्रत आभिचारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि गौतम धर्मसूत्र एवं वासिष्ठ धर्मसूत्र[1] के अनुसार कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत सभी पापों के लिए समान प्रायश्चित हैं।

चान्द्रायण व्रत की विधि का विस्तृत वर्णन गौतम धर्मसूत्र एवं बौधायन धर्मसूत्र[2] आदि में हुआ है। बौधायन धर्मसूत्र[3] में चान्द्रायण व्रत के दो प्रकार— **यवमध्य** तथा पिपीलिका मध्य बताए गए हैं। ये व्रत अमावस्या से आरम्भ होकर अमावस्या को ही समाप्त होते हैं। बौधायन के अनुसार दोनों में से कोई भी व्रत करके सभी पापों का निराकरण किया जा सकता है।[4] इसे सर्वकामना पूर्ति हेतुक माना गया है।[5] यह व्रत धन देने वाला, पुण्य देने वाला, पुत्र, पौत्र, पशु, दीर्घ जीवन, स्वर्ग प्रदान करने वाला तथा सभी प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है।[6]

गौतम धर्मसूत्र[7] के अनुसार कृच्छ्र प्रायश्चित के लिए जो सामान्य नियम बताए गए हैं वही चान्द्रायण व्रत के लिए प्रयुक्त होते हैं।

**शुल्ब सूत्रों में आभिचारिक अग्निचयन (वेदि-चयन)**

श्रौतसूत्रों के वर्णन के अन्तर्गत पहले यह बताया जा चुका है कि वैदिक

---

1. गौतम ध० सू०, 3.1.20 तथा वासिष्ठ ध० शा०, 22.20
2. गौतम ध०सू०, 3.9.2-11 तथा बौधा०ध० सू०, 3.8
3. बौधा० ध० सू०, 3.8.33
4. तत्रैव, 3.8.36
5. कामाय कामायैतदाहार्यमित्याचक्षते। तत्रैव, 3.8.37
6. तदेतद् धन्यं पुण्यं पुत्र्यं पौत्र्यं पशव्यमायुष्यं स्वर्ग्यं यशस्यं सर्वकामिकम्। तत्रैव, 3.8.40
7. गौतम ध० सू०, 3.8.6-11

श्रौतयागों में तीन प्रकार की अग्नियों का प्रयोग होता है—

1. गार्हपत्याग्नि
2. आहवनीय अग्नि, तथा
3. दक्षिणाग्नि

उपर्युक्त तीनों ही अग्नियों में दक्षिणाग्नि आभिचारिक कृत्यों की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी गई है क्योंकि यज्ञीय-वेदि में इसका स्थान दक्षिण की ओर होता है जिससे यह संकेत मिलता है कि इसका मौलिक प्रयोजन अपनी ज्वालाओं से दु:सत्वों तथा प्रेतात्माओं का अपसारण ही रहा होगा। इस विचार की पुष्टि शतपथ ब्राह्मण और शांखायन श्रौतसूत्र के इन वचनों से होती है कि "दक्षिणाग्नि पितरों की ओर से उत्पन्न भय का निवारण करती है।"

वैदिक श्रौतयागों में इन अग्नियों को स्थापित करने के लिए विविध प्रकार की वेदियों के निर्माण का विधान अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। इस बात का प्रमाण हमें ऋग्वेद में उल्लिखित 'सामान्य-वेदि-निर्माण' से मिलता है।[1] जो इस बात का संकेत करती है कि सामान्य वेदि के अतिरिक्त भी विभिन्न प्रकार की वेदियों का प्रयोग वैदिक यागों में होता है जिनमें विविध कर्मों का सम्पादन किया जाता है।

कल्प-साहित्य में विविध कर्मों हेतु विविध वेदियों के निर्माणार्थ विस्तृत नियम शुल्ब साहित्य के अन्तर्गत विहित हैं। 'शुल्ब' का अर्थ होता है—'मापने का डोरा'।अतः ऐसे सूत्र जिनमें वेदि आदि के मापने तथा निर्माण की विधि समझायी गई हो 'शुल्ब सूत्र' कहलाते हैं। यज्ञों में अग्नि का आधार होने के कारण वेदि को अग्नि भी कहते हैं और वेदि-चयन को 'अग्नि-चयन'।

यागों में प्रयुक्त गार्हपत्याग्नि (वेदि) वृत्ताकार या समचतुरस्र होती है आहवनीय सदैव समचतुरस्र तथा दक्षिणाग्नि अर्धवृत्ताकार होती है। वेदि का अग्रभाग (पूर्व) अपेक्षाकृत तंग होता है और पृष्ठ भाग चौड़ा एवं मध्य भाग क्षीण, जिससे वेदि का शरीर (आत्मा) 'युवती' के शरीर के समान प्रतीत हो।

वैदिक यज्ञ-यागों का अनुष्ठान किसी न किसी कामना के पूर्त्यर्थ किया जाता

1. ऋग्वेद, 1.164.35; 170.4; 5.31.12

है। अतः प्रत्येक कामना के अनुरूप ही यज्ञ के अनुष्ठान की विधि, प्रयोज्य उपकरणों, विनियोज्य मन्त्रों तथा अग्नियों के आकार-प्रकार में भेद किया गया है। शुल्ब सूत्रों में मानव की प्रमुख कामनाओं की पूर्ति के उद्देश्य से निर्मित की जाने वाली अग्नियों को 'काम्यअग्नियां' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र के अनुसार काम्य अग्नियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

| कामना | अग्नि (वेदि) का स्वरूप तथा संज्ञा |
|---|---|
| 1. शत्रु का नाश | प्रउगचित् |
| 2. भूत तथा वर्तमान शत्रु का नाश | उभयतः प्रउगचित् |
| 3. शत्रु का नाश | रथचक्रचित् |
| 4. अन्न प्राप्ति | द्रोणचित् |
| 5. पशुधन की प्राप्ति | समूह्यचित् |
| 6. किसी लोक का प्रभुत्व | परिचाय्याचित् |
| 7. पितृलोक की प्राप्ति | श्मशानचित् |
| 8. पशुधन की प्राप्ति | छन्दचित् |
| 9. स्वर्ग की प्राप्ति | श्येनचित् |
| 10. स्वर्ग की प्राप्ति | कङ्कचित् |
| 11. स्वर्ग की प्राप्ति | अलजचित |
| 12. सदेह (सिर सहित) स्वर्ग की प्राप्ति | कङ्कचित् |

इसके अतिरिक्त न्यूनाधिक परिवर्तित कामनाओं की पूर्ति के लिए अन्य वेदियों का विधान भी किया गया है, यथा—चतुरश्र श्मशान, परिमण्डल श्मशान, चतुरश्र द्रोणचित् परिमण्डल, द्रोणचित, उपचाय्यचित्, पूर्वश्येन चित्, परश्येनचित्।

बौधायन शुल्बसूत्र में ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए कूर्मचित अग्नि का विधान किया गया है।[1] तथा इसकी आत्मा या शरीर चतुरस्र बनाने का निर्देश है।

इन अग्नियों के आकार विविध वस्तुओं अथवा पक्षियों एवं प्राणियों अथवा

1. कूर्मचितं चिनीत यः कामयेत ब्रह्मलोकमभिजयेमिति विज्ञायते।
बौधा० शु० सू०, 3.129

स्थानों के अनुरूप होने के कारण इनकी संज्ञाएं भी अन्वर्थ ही हैं। श्येन कङ्क तथा अलज पक्षियों के नाम हैं। वेदियाँ प्रायः पक्ष फैला कर आकाश में उड़ते हुए पक्षी की छाया के अनुरूप निर्मित की जाती हैं तो भी कामना भेद से ही वेदि के आकार में भेद कर लिया जाता है। कुछ वेदियों (आहवनीयों) में पक्षियों के अनुरूप ही पक्षों तथा पुच्छों की रचना की जाती है।

उपर्युक्त 12 काम्य अग्नियों की रचना-विधि ही समस्त शुल्ब सूत्रों का प्रतिपादन विषय है। इन काम्य अग्नियों में प्रउगचित्, उभयतः प्रउगचित् तथा रथचक्रचित् ये तीनों अभिचारात्मक अग्नियां (वेदियाँ) हैं।

भ्रातृव्य के नाशार्थ प्रउगचित् अग्निचयन का विधान किया गया है। प्रउग का अर्थ होता है 'त्रिकोण' अर्थात् यह वेदि त्रिकोणात्मक बनाई जाती है। जो जात तथा जनिष्यमाण दोनों प्रकार के भ्रातृव्यों का नाश करना चाहता है उसके लिए 'उभयतः प्रउगचित्' नामक वेदि चयन का विधान है। इसमें 'त्सरु' भी लगाया जाता है। अभयतः प्रउगचित् का आकार तिर्यक् समचतुरस्र और क्षेत्रफल $7\frac{1}{2}$ पुरुष होता है। शुल्ब सूत्रों के अनुसार भ्रातृव्यों के नाश का इच्छुक यजमान अपनी इष्ट-सिद्धि रथचक्रचित् से भी कर सकता है। इसका निर्माण $7\frac{1}{2}$ पुरुष क्षेत्रफल वाले मण्डल के अन्तर्गत निर्मित समचतुरस्र आकार का किया जाता है, तथा मण्डल की चारों प्रधियों को विविध प्रकार की इष्टिकाओं से पाट दिया जाता है। समचतुरस्र के अन्तर्गत 12 अंगुल करणी की इष्टिकाएं लगाने का विधान है। बौधायन शुल्ब सूत्र में रथचक्रचित् के लिए 16 प्रकार की इष्टिकाओं के चयन का विधान किया गया है।[1] मानव शुल्ब सूत्र में रथ-चक्रचित् के मण्डल का क्षेत्रफल $10\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष बताया गया है।[2] इस शुल्बसूत्र में एक अन्य रथचक्रचिति का भी निरूपण है, जो $31\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष की होती है।[3] इसकी सभी दिशाओं का निर्माण त्रिकरणी के द्वारा करने का विधान है। बौधायन शुल्बसूत्र के अष्टम अध्याय में श्मशानचित् अग्निचयन के पश्चात् प्रउग तथा उभयतः प्रउगचित् के दस भागों में विभाजन का विधान है। आपस्तम्ब शुल्बसूत्र में रथचक्रचित् अग्निचयन का विधान निरूढपशुबन्ध याग के लिए भी किया गया है जिसका पश्चात् अथवा पश्चिमी भाग रथाक्ष (104 अंगुल) के तुल्य होता है। प्राची भुजा ईशा (88 अंगुल) के परिमाण की तथा अग्रभुजा विपथ युग के परिमाण की होती है।

---

1. बौधा० शु० सू०, 5.38
2. मानव शु० सू० 1.3.6.15-18
3. तत्रैव, 10.3.7.1

षष्ठ अध्याय

# वैदिक अभिचार कर्मों का परवर्ती विकास

भारतीय संस्कृति के चरम उत्कर्ष की झलक प्राचीन काल में प्रचलित विद्याओं के उपलब्ध विवरण में देखी जा सकती है। जिस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता का यन्त्रों पर अवलम्बित उत्कर्ष आज हमारे दैनिक जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा है, वैसे ही भारत में वैदिक काल में प्रचलित सामाजिक व्यवहारों एवं कर्मों का स्पष्ट प्रभाव भी मध्ययुगीन समाज से लेकर आधुनिक काल के समाज पर पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है।

भारतीय विद्याएँ दो विभिन्न रूपों में विकसित हुई। यद्यपि दोनों का मूलस्रोत एक ही था, और वह था—सभ्यता के विकास की तीव्र भावना तथा मानवीय चरम लक्ष्य की पूर्ति। निगम और आगम—ये उन दो विकसित रूपों की प्राचीन संज्ञाएं हैं। जिन चौदह या अट्ठारह विद्याओं की गणना प्रसिद्ध है, वे केवल निगम विद्याओं के ही भेद हैं। इनमें चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग तथा उत्तराङ्ग आते हैं जिनमें उत्तराङ्गों की व्यवस्था कुछ अस्पष्ट है। दर्शन, पुराण, इतिहास और यज्ञ ये चार उत्तराङ्ग, माने गए हैं। ऐसा अनुमान होता है कि इन उत्तराङ्गों का सम्भवतः परवर्ती काल में वाङ्मय के रूप में संगठन हुआ। इस आधार पर हमारे लिए प्राचीन वैदिक साहित्य और उसमें वर्णितः विषयों का उत्तरोत्तर विकास क्रमशः पुराण-इतिहास एवं दर्शन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

अभिचार कर्मों का वर्णन प्राचीन वैदिक साहित्य का मुख्य विषय रहा है जिनका वर्णन सभी वेदों और वेदाङ्गों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता रहा है। समाज तथा व्यक्ति से सम्बद्ध होने के कारण इन अभिचार कर्मों का अभाव हमें किसी भी काल में दृष्टिगोचर नहीं होता है अपितु स्वरूप परिवर्तन से हमें ये प्रत्येक काल में उत्तरोत्तर विकास की ही ओर अग्रसर होते हुए दिखाई देते हैं। अतः प्रकृत स्थल पर भी इन अभिचार कर्मों का परवर्ती साहित्य में विकास की दृष्टि से पुराणों, इतिहास ग्रन्थों तथा परवर्ती तन्त्र-साहित्य एवं आधुनिक जगत् में इसके स्वरूप तथा विकास का क्रमशः अवलोकन किया जाएगा—

**पुराणों द्वारा वैदिक अभिचार कर्मों का समाजीकरण :** पुराण भारतीय संस्कृति के आगार हैं। वे ग्रन्थ रूप में निबद्ध भले ही बहुत बाद में हुए हों, किन्तु जहाँ तक उनकी विषय-सामग्री और विचारधारा का सम्बन्ध है, इस दृष्टि से वे वेदों के निकटवर्ती ही हैं। पुराणों ने युग-युगों की परम्परागत सांस्कृतिक थाती को सर्वाङ्गीण, सार्वदैशिक और सर्वजनोपयोगी स्थिरता एवं सुदृढ़ता प्रदान की। इस प्रकार भारतीय संस्कृति एव धर्म के प्रचार-प्रसार में पुराणों तथा स्मृतियों का महत्व सर्वमान्य है।

पुराणों का महत्व इसलिए भी है कि वैदिक तत्वों के उन्मीलन का एक निमित्त भी अवान्तर युग में पुराणों तथा स्मृतिग्रन्थों के आविर्भाव में रहा है। वेद ने जिस परम तत्व और उसकी अद्भुत शक्ति को ऋषियों के भी इन्द्रिय, मन और बुद्धि से अगम्य देश में रख दिया था, पुराणों ने उसे सामान्य रूप से सर्वसाधारण की इन्द्रिय, मन और बुद्धि के अनुकूल बनाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। धार्मिक साधना के क्षेत्र में भी सर्वप्रथम पुराणों द्वारा ही वैदिकी पूजा, अनुष्ठानों, देवताओं और उनकी शक्ति को नवीन विश्वासों, मान्यताओं और आख्यानों का आवरण चढ़ाया गया। वैदिक काल में प्रचलित ऐहिक सिद्धि के साधनों का रूप भी सर्वप्रथम पुराणों द्वारा ही परिवर्तित और परिवर्धित हुआ। पुराणों में धार्मिक और सामाजिक चिन्तन-मनन का सम्पूर्ण आधार वैदिक ही है। वस्तुतः समाज और सामाजिक विचारों को सुदृढ़ करने हेतु विरचित पुराण ग्रन्थों में समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार की लोकमान्यताओं, देवताओं की साधना-पद्धति और ऐहिक-सिद्धि के लिए किए जाने वाले क्रिया-कलापों और लोक व्यवहारों पर भी पर्याप्त चर्चा हुई है जिसमें वैदिक अभिचार कर्मों का स्वभावतः परिवर्तित रूप भी परिलक्षित होता है। पुराणों में वर्णित बहुदेववाद, विविध विद्याओं, शक्ति-पूजा और उपासना का आधार मूलतः वैदिक साधना-पद्धति और अभिचार कर्म ही प्रतीत होते हैं, किन्तु पुराणों में इन तान्त्रिक विषयों के अनुप्रवेश के समय के विषय में विद्वानों में एकमत्य उपलब्ध नहीं होता। डॉ० हाजरा ने इस विषय का अपने ग्रन्थ में बहुत विचार कर कुछ निष्कर्षों को निकाला है।[1]

"अष्टम शती से प्राचीनतर पुराणांशों में तान्त्रिक या आभिचारिक पूजा

---

1. Puranic Records on Hindu Rites and Customs नामक ग्रन्थ का पञ्चम परिच्छेद।

का लेश भी विद्यमान नहीं है। प्रथमतः पुराणों में किसी देव विशेष के मुद्रा न्यास आदि का ही वर्णन किया गया और तदनन्तर समग्र तान्त्रिक विधियों का उपन्यास स्मार्त कर्मों के संग में ही बिना किसी वैमत्य के पुराणों ने प्रस्तुत किया। दशम तथा एकदश शती में पुराणों में तन्त्रों ने अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा तथा प्रामाण्य प्राप्त कर लिया। गरुड़ और अग्निपुराण में उपलब्ध तान्त्रिक विधान इसके प्रमाण हैं।"

डॉ० हाजरा के उपर्युक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है तन्त्र का सन्निवेश सम्भवतः प्राचीन पुराणों, जैसे, वायु पुराण, भागवत पुराण, विष्णु पुराण और मार्कंडेय पुराण आदि में लेशमात्र भी नहीं था किन्तु इन पुराणों का अध्ययन करने से डॉ० हाजरा का यह कथन भी कुछ सीमा तक ही संगत प्रतीत होता है क्योंकि 'मार्कण्डेय पुराण' में उद्धृत अनुलेपन विद्या और स्वेच्छारूपधारिणी विद्या उपर्युक्त कथन का खण्डन करती प्रतीत होती हैं। इन विद्याओं में तन्त्र का प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। अनुलेपन विद्या में एक ऐसे अद्भुत लेप का विधान है जिसको लगाने से व्यक्ति में बड़ी-बड़ी तथा कठोर से कठोर यात्रा करने की शक्ति जाग्रत हो जाती है। इसी प्रकार स्वेच्छारूपधारिणी विद्या का प्रयोग करके मनुष्य अपनी कार्य-योजना के अनुरूप ही रूप परिवर्तन करने में समर्थ हो सकता है। भागवत में भी वैदिकी पूजा के साथ तान्त्रिक तथा मिश्र पूजा का संकेत मिलता है।

वस्तुतः वैदिक अभिचार कर्मों तथा तन्त्रों का व्यापक प्रभाव एवं उनका परिवर्तित रूप हमें उपपुराणों में ही दृष्टिगोचर होता है। जहाँ तान्त्रिक पूजा का विधान स्वतन्त्र रूप से किया गया है। वैदिक अभिचार कर्मों में प्रयुक्त अव्यय, अक्षर और क्षरपुरुष पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव हो गए हैं। वेदों में वर्णित विभिन्न आभिचारिक विद्याएँ एवं क्रियायें पुराणों में सर्वथा अन्य नाम रूपों में परिवर्तित हो गई हैं, यथा---वेदि की अग्नि चयन विद्या (यजु० 11-18), मत्स्य पुराण (145-159) का कुमार जन्म वृतान्त बन गई है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित अग्नि रूप विद्या मार्कण्डेय पुराण के रौद्र सर्ग (52.1-9) की अष्टमूर्ति-विद्या के साथ जुड़ गई है। इसी प्रकार वेदों की सोम विद्या, विराजधेनु विद्या, देवासुर विद्या, भृग्वंगिरोमय अग्नि सोम विद्या, पितृविद्या, सावित्री विद्या और पशु विद्या क्रमशः पुराणों की समुद्र मन्थन पृथ पृथिवी दोहन, इन्द्रवृत्रोपाख्यान, सुकन्याच्यवन विवाह, श्राद्धकल्प, सावित्री-सत्यवान कथा और पाशुपतास्त्र के पौराणिक आख्यानों में उपबृंहित हो गई हैं।

पुराणों में वर्णित रक्षोहन विद्या[1] विद्या गोपाल मन्त्र,[2] पुरुष प्रमोहिनी विद्या,[3] उल्लापन विधान विद्या,[4] युवकरण विद्या[5], व्रज वाहनिका विद्या,[6] त्रैलोक्य विजय विद्या,[7] अस्त्र ग्राम हृदय विद्या[8] आदि का अध्ययन करने से हमें इन विद्याओं के मूल में विभिन्न वैदिक अभिचार कर्मों, यथा—रक्षा कवच, वशीकरण प्रयोग, वाक्सिद्धि प्रयोग, यज्ञ में बाधक राक्षसी प्रवृत्तियों को दूर करने के कर्म, रोग नाशक एवं समृद्धि के कर्म तथा शत्रु पराजय आदि निमित्तों का ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

इसके अतिरिक्त वैदिक अभिचार कर्मों में प्रयुक्त विविध मन्त्रों का परिवर्तित रूप हमें पौराणिक शक्ति पूजा के प्रसंग में उल्लिखित मन्त्रों एवं स्रोतों में देखने को मिलता है। पुराण ग्रन्थों में विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा विधि का गम्भीर तान्त्रिक प्रतिपाद है। विशिष्ट रूप से शक्ति पूजा के प्रसंग में हमें तन्त्र-मन्त्र तथा अभिचार कर्मों का नवीन रूप दृष्टिगोचर होता है जिसकी अधिष्ठात्री देवी भगवती दुर्गा हैं। पुराण ग्रन्थों में भगवती दुर्गा के लिए ही प्रयुक्त अन्य नाम इस प्रकार हैं—काली, कराली, महाकाली, भैरवी, चामुण्डा, खड्गधारिणी, सिंहवाहिनी, भयङ्करा, महिषासुरमर्दिनी, विनाशिनी, अष्टभुजा, तेजस्विनि आदि। पुराणों में वर्णित तथा नाम रूप में वैदिक देवताओं से सर्वथा भिन्न किन्तु शक्ति रूप में सर्वथा अभिन्न भगवती दुर्गा देवी का जन-सामान्य में इतना अधिक प्रचलन हुआ तथा इनकी शक्ति पर इतना अधिक विश्वास एवं आस्था उत्पन्न हो गई कि यह देवी आज भी उसी पौराणिक रूप

---

1. मार्क० पु०, 70-21
2. पद्म पु०, पाताल खण्ड 41-132—इस मन्त्र में इक्कीस अक्षर होते हैं जिनके प्रभाव से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है।
3. पद्म पु०, भूमिखण्ड, 34-38 तथा अग्नि पु०, 123-26; अग्नि पु० में इस विद्या की सिद्धि की कई विधियाँ बताई गई हैं जिनमें भिन्न-भिन्न उद्भिद् द्रव्यों को एक साथ पीसकर तिलक करने का विधान है।
4. विष्णु पु०, 5.20.9
5. भागवत पु० , 9.22.11
6. लिंग पु०, 51
7. ब्र० वै० पु०, गणेश खण्ड 30.1.32
8. मार्क० पु०, अध्याय 63

में सर्वसाधारण के बीच में पूजी जाती हैं। पुराणों में विविध अभिचार कर्मो, यथा—शत्रु-उच्चाटन, मारण-मोहन, संग्राम-विजयार्थ, त्रैलोक्य विजयार्थ, स्तम्भन आदि में इन भगवती देवी के लिए बलि अर्पण, खड्ग पूजन तथा देवी का नैवेद्य पूर्वक पूजन आदि ऐहिक सिद्धि के साधन बन गए। इस पूजा में प्रयुक्त मन्त्रों में सर्वथा खट्, फट्, ओं, ह्रीं, क्लीं, स्फट्, वौषट्, ह्रींकार, क्रूं आदि अभिचारपरक शब्दों का समावेश हो गया।[1] जिसके फलस्वरूप वैदिक मूलमन्त्रों का धीरे-धीरे लोप होता गया। ऐहिक सिद्धियों हेतु सम्पाद्य यज्ञों में विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं के स्थान पर केवल स्वरूप से भयंकर एवं अभिचार कर्मो के सर्वथा योग्य रुद्र तथा महाकाली आदि देवी देवताओं का ही आह्वान किया जाने लगा। उनके लिए विविध प्रकार की बलियाँ तथा रक्तार्पण का प्रचलन हो गया। मानव या पशु-बलि के स्थान पर नारियल बलि की प्रथा प्रचलित हुई और वैदिक यज्ञों में सर्वथा प्रचलित पशु-बलि लुप्त प्राय हो गई।

शक्ति-पूजा के प्रसग में देवीभागवत का तो समस्त वातावरण ही तन्त्रमय है जहाँ नाना रूपों में शक्ति का प्राधान्य बतलाना पुराणकर्ता को अभीष्ट है। देवीभागवत के एक अध्याय[2] में तो विभिन्न स्थानों पर शक्ति की देवी का विशिष्ट नामोल्लेख मिलता है। जिसमें कोलापुर की महालक्ष्मी, तुलजापुर की देवी हिंगुला, ज्वालामुखी, शाकम्भरी, भ्रमरी के स्थानों का उल्लेख कर विन्ध्याचल निवासिनी विन्ध्यादेवी सर्वोत्तम बताई गई हैं। इससे पूर्व षट्चक्र के निरूपण में पूर्ण तान्त्रिकता की अभिव्यक्ति है। शारद तथा चैत्र उभय नवरात्रों के व्रत भगवती की प्रसन्नता के कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अध्यायों[3] में बाह्यपूजा तथा कुमारी पूजन जैसे विशुद्ध तान्त्रिक अनुष्ठानों की विधि बतलाई गई है। एक अन्य अध्याय[4] में सरस्वती के स्तोत्र, पूजा, कवच आदि तान्त्रिक अनुष्ठान के अनिवार्य अङ्गों का विवरण देकर ग्रन्थकार लोक प्रचलित षष्ठी, मंगल, चण्डी तथा मनसा (नाग) देवी के पूजन तथा उससे जायमान फल

---

1. ओं ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हूं फट्, ओं हः ओं ग्रस ग्रस कृन्त कृन्त छक छक ह्रूं फट् नमः। अग्नि पु०, 125
ओं हूँ क्षूं ह्रूं ओं······हूँ फट् स्वाहा। अग्नि पु० 134
2. देवी भाग० पु०, 7.38
3. तत्रैव, 7.40, 3.26 तथा अन्य
4. तत्रैव, 9.4

को आख्यानमुखेन वर्णन करता है।[1] इन सभी देवियों का पूजा क्षेत्र बंगाल है।

समस्त पौराणिक साहित्य में तन्त्रों एवं अभिचारों की प्रतिष्ठा, पुराणों के देवतावाद और विशेष रूप से शक्ति उपासना के विभिन्न रूपो में हुई है। तान्त्रिक उपासना का केन्द्र यही शक्ति पूजा रही है। अदिति, पृथ्वी, सरस्वती (इड़ा, भारती) आदि वैदिक मातृदेवियाँ शक्ति पूजा का स्रोत रही हैं। ऋग्वेद का 'देवी-सूक्त' वैदिक संस्कृति का केन्द्र रहा है। उसमें वर्णित ब्रह्म और वाक् की अभिधेया शक्ति-रूपा मातृकाएँ पौराणिक शक्ति उपासना का प्रेरणा स्रोत रही हैं। पुराणों की अम्बिका, भवानी, देवी भद्रकाली, दुर्गा, उमा, माहेश्वरी आदि देवियाँ वैदिक 'देवी-सूक्त' के ही रूपान्तर हैं। 'मार्कण्डेय पुराण' के 'दुर्गा सप्त-शती' आख्यान में देवी के जिन विभिन्न नाम रूपों, गुणों तथा वैभव का व्याख्यान किया गया है, उसके द्वारा पौराणिक तान्त्रिक युग की पूर्ण प्रतिष्ठा का सहज ही पता चलता है। पुराणों के अगन्यास, अष्टक, स्तोत्र, पटल, कवच, स्तुति, कीलक, मन्त्र-तन्त्र आदि में तन्त्र-विद्या का वृहत् साहित्य प्रकाश में आया है।

मध्ययुगीन भारत में पुराणों के प्रभाव से जहाँ भक्ति तथा साधना के अनेक मार्ग प्रशस्त हुए, वहाँ प्राचीन वैदिक देवताओं के स्थान पर नवीन देवताओं की स्थापना हुई। इन नये देवताओं और उनकी विविध आराधना ने नये धर्म पन्थों को जन्म दिया, जिनमें देवताओं के साथ उसकी रूपा या पत्नीरूपा शक्तियों की भी कल्पना की गई है। तान्त्रिक दृष्टि से 'कूर्म पुराण' और 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' में तान्त्रिक विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। 'कूर्म पुराण' में कपाल, लकुल, वाम, भैरव और पांचरात्र आदि जादू-टोना, मारण-मोहन उच्चाटन से सम्बन्धित तान्त्रिक सम्प्रदायों का उल्लेख हुआ है, जिन्हें अवैदिक कहा गया है किन्तु वास्तव में तन्त्र प्रधान अवैदिक कर्मों का उदय वैदिक युग में ही हो चुका था, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण अथर्ववेद और उसमें प्रति-पादित विषय ही हैं।

## इतिहास ग्रन्थों में वैदिक अभिचार का विकसित रूप

### रामायण में अभिचार

जिन दिनों उपनिषदों का विकास चल रहा था उसी काल में आख्यानों, पुराणों, कथानकों, लोकगीतों के माध्यम से लोगों के विश्वास और मान्यताओं

---

1. देवी भाग० पु०, 9.46, 47 तथा 48

में विकास हो रहा था। काल-क्रम से लोक-मानस की ये व्यञ्जनाएँ प्राचीन काव्यों में गुम्फित हो गईं, जिनमें रामायण और महाभारत प्रमुख हैं।

वैदिक काल में जनमानस में व्याप्त एवं प्रचलित विविध शकुन-अपशकुन, ज्योतिष, जादू-टोना एवं लोक मान्यताओं पर विश्वास का स्पष्ट प्रभाव रामायण पर परिलक्षित होता है। इस ग्रन्थ के युद्ध काण्ड के 73वें सर्ग में वैदिक काल में शत्रुओं के मारणार्थ तथा विजयार्थ सम्पाद्य यज्ञों में प्रयुक्त सामग्री एवं विधि का स्पष्ट रूप से अवलोकन किया जा सकता है, जहाँ रावण और मेघनाद को महान तान्त्रिक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मेघनाद की सब विजय तन्त्र अथवा अभिचारमूलक ही है।

रणक्षेत्र में लक्ष्मण द्वारा अपने पुत्र अतिकाय के वध का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण अत्यन्त चिन्तित और व्याकुल हो उठते हैं। रावण को शोक-समुद्र में निमग्न एवं दीन हुआ देखकर राक्षस राजकुमार इन्द्रजित रावण को ढाँढ़स बँधाता है कि अब वह स्वयं युद्ध के लिए जाएगा और उसके बाणों से घायल होकर कोई भी समराङ्गण में अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर पायेगा। फिर वह युद्ध के लिए विशाल सेना एवं युद्ध सामग्री से सुसज्जित होकर रणभूमि में पहुँचता है तथा श्री रामचन्द्र जी की सेना पर विजय-प्राप्ति के लिए वही रणभूमि में ही 'ब्रह्मास्त्र-सिद्धि' हेतु एक आभिचारिक यज्ञ का सम्पादन इस प्रकार करता है--रणभूमि में अपने रथ के चारों ओर राक्षसों को खड़ा करके स्वयं उनके मध्य में रथ से उतरकर, पृथ्वी पर अग्नि की स्थापना करके इन्द्रजीत ने चन्दन, पुष्प तथा लावा आदि के द्वारा अग्निदेव का पूजन किया, तत्पचात् विधिपूर्वक श्रेष्ठ मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उस अग्नि में हविष्य की आहुति दी।[1] इस यज्ञ में उसने अग्निवेदि के चारों ओर बिछाने के लिए कुश तथा कास के पत्र के स्थान पर शस्त्र का प्रयोग किया। बहेड़े की काष्ठ से समिधादान का काम लिया। लाल रंग के वस्त्र प्रयोग में लाये गए और

---

1. ततस्तु हुत भोक्तारं हुत भुक्सदृशप्रभः।
जुहुवे राक्षस श्रेष्ठों विधिवन्मन्त्र सत्तमै॥ रामायण, युद्धकाण्ड, 73.21
स हविर्लाजसत्कारैर्माल्यगन्ध पुरस्कृतः। तत्रैव, 73.22
जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्॥

आभिचारिक यज्ञ में लौह निर्मित स्रुवा पात्र का प्रयोग किया गया।[1] इन्द्रजित ने वहाँ तोमर बीज के रस सहित शस्त्र रूपी कास के पत्तों को अग्नि के चारों ओर फैलाकर होम के लिए काले रंग के जीवित बकरे का गला पकड़ा।[2] एक ही बार दी हुई उस आहुति से अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसमें धूम रहित आग की बड़ी-बड़ी लपटें उठने लगी जिसमें वे सभी चिह्न प्रकट हुए जो पूर्वकाल में उसे अपनी विजय दिखा चुके थे।[3] अग्नि देव की शिखा दक्षिणावर्त दिखाई देने लगी। उनका वर्ण तपाये हुए स्वर्ण के समान सुन्दर था। इस रूप में वे स्वयं प्रकट होकर उसके दिए हुए हविष्य को ग्रहण कर रहे थे।[4] तदनन्तर अस्त्र विद्या-विशारद इन्द्रजित् ने ब्रह्मास्त्र का आह्वान किया और अपने धनुष तथा रथादि सब वस्तुओं को वहाँ सिद्ध ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित किया।[5] इस प्रकार इन्द्रजित् द्वारा सम्पादित इस आभिचारिक यज्ञ में हमें पूर्णतः वैदिक कर्मकाण्ड की ही झलक मिलती है, क्योंकि वैदिक कर्मकाण्ड में भी किसी शत्रु-वध अथवा शत्रु-विजय के निमित्त किए जाने वाले आभिचारिक कृत्यों एवं यज्ञों के लिए विशेष वेदि-निर्माण का विधान किया गया है और उसमें प्रयुक्त पदार्थों तथा पात्रों के लिए भी विशेष नियम एवं विधि बताये गए हैं। अथर्ववेद मेंतो आभिचारिक कृत्यों के लिए बहेड़े के प्रयोग सर्वोत्तम बताया गया है। इन्द्रजित् ने भी इस यज्ञ में समिधा रूप में बहेड़े की लड़की का ही चयन किया था। साथ ही यज्ञ-सम्पादन के समय इन्द्रजित द्वारा रक्तवर्ण वस्त्रों को धारण करना तथा बलि के लिए कृष्ण वर्ण बकरे का ही चुनाव करना भी वस्तुतः वैदिक काल में प्रचलित आभिचारिक क्रियाओं और उनके परिणामों में विश्वास का ही द्योतक

1. शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा॥ रामायण, युद्धकाण्ड, 73.23
2. स तत्राग्नि समास्तीय शरपत्रैः सतोमरैः।
छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः॥ तत्रैव, 73.24
3. सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजय यान्यदर्शयन्॥ तत्रैव, 73-25
4. प्रदक्षिणावर्त शिखस्तप्त काञ्चन सं निभः।
हविस्तत् प्रति जग्राह पावकः स्वयमुत्थितः॥ तत्रैव, 73.26
5. सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममस्त्र विशारदः।
धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत्॥ तत्रैव, 73.27

है क्योंकि वैदिक कर्मकाण्ड में भी आभिचारिक यज्ञों एवं कृत्यों के सम्पादन में सर्वत्र ऋत्विजों द्वारा सदैव लाल पगड़ी तथा लाल वस्त्र धारण करने का ही निर्देश है।[1] अथर्ववेद में पाशुपातास्त्रसिद्धि का विधान है और सम्भवतः रामायण में भी इन्द्रजित ने उसी के दिशा निर्देश स्वरूप ब्रह्मास्त्र सिद्धि की है, जिसमें वैदिक कर्मकाण्डोक्त आभिचारिक पदार्थों एवं सामग्री का प्रयोग किया गया है। अथर्ववेद में पाशुपतास्त्र-सिद्धि का प्रयोग शत्रु का वध, संग्राम में शत्रु की पराजय, उसकी सेना का सम्मोहन, वशीकरण तथा उसे पथभ्रष्ट करने के लिए किया गया है। रामायण में भी इन्द्रजित की ब्रह्मास्त्र-सिद्धि का प्रयोजन श्री राम और उनकी सेना को संग्राम में पराजित करना ही है और ये सभी बातें वस्तुतः रामायण काल में वैदिक कर्मकाण्ड के प्रभाव एवं उसके विकास और मान्यता की ओर संकेत करती हैं।

युद्धकाण्ड में ही रावण के द्वारा युद्ध के समय ग्रहण की गई ध्वजा पर अंकित नरशिर कपाल अर्थात् मनुष्य की खोपड़ी का चिह्न[2] (तान्त्रिक चिह्न) उसके तान्त्रिक होने का संकेत कर रहा था।

इसी काण्ड के 31वें सर्ग में इन्द्रजित द्वारा निकुम्भिला मन्दिर जाकर अग्नि देवता को दी गई आहुति तथा क्रियमाण होम भी आभिचारिक ही है[3] जिसे यज्ञ-विधान के ज्ञाता इन्द्रजित ने अपनी माया से युद्ध में सीता का वध करके और बानर सेना द्वारा युद्ध के उद्देश्य की ही समाप्ति समझकर सीता-वध का समाचार श्री राम को सुनाए जाने पर, राक्षसों के अभ्युदय के लिए आरम्भ किया था और इस यज्ञ में उसने होम शोणित भोजी आभिचारिक अग्नि देवता को ही आहुति दी थी।

वैदिक कर्मकाण्ड में शोभन प्रकार के आभिचारिक कर्मों में विभिन्न प्रकार

---

1. "लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीताः प्रचरन्ति।" आर्षेयकल्प, 3.15
2. तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः।
   ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा।। रामायण, युद्धकाण्ड, 100.14
3. निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जहवेन्द्रजित्।
   यज्ञ भूम्यां ततो गत्वा पावकस्तेन रक्षसा।।

   × × ×

   अथेन्द्रजिद् राक्षसभूतये नु, जुहाव हव्यं विधिना विधानवत्।
   दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते महासमूहेषु नयान यज्ञाः।।

   तत्रैव, 31.25 से 28 तक

की औषधियों तथा जड़ी-बूटियों का प्रयोग होता था जिसका स्पष्ट प्रभाव रामायण पर दिखाई देता है। युद्ध में इन्द्रजित के ब्रह्मास्त्र से मूर्छित राम और लक्ष्मण की मूर्छा दूर करके उन्हें पुनः चेतना में लाने के लिए जाम्बवान द्वारा औषधियों का ही प्रयोग किया गया है। इन औषधियों के नाम हैं—मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी नामक महौषधि। यहाँ जाम्बवान द्वारा प्रयुक्त इन औषधियों के पृष्ठ में भी वैदिक युग में औषधियों के गुणकारी एवं रोग-चिकित्सा में उनकी प्रायोगिक सफलता की मान्यता ही परिलक्षित होती है।

वेदकालीन समाज में विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति हेतु विविध काम्येष्टियों के सम्पादन का प्रचलन था जिनमें विविध मन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। वेदकालीन यह यज्ञ और अनुष्ठान परवर्तीकाल में भी अपने मूलरूप में ही विद्यमान रहे इसका प्रमाण भी हमें रामायण में मिलता है, जहाँ राजा दशरथ को पुत्र-प्राप्ति के लिए ऋष्यश्रृङ्ग ने पुत्रेष्टि नामक यज्ञ कराया था और इसमें उन्होंने अथर्ववेदीय मन्त्रों का प्रयोग करते हुए वेदोक्त श्रौतविधि से यज्ञ का अनुष्ठान किया जिससे राजा दशरथ को पुत्रों की प्राप्ति हुई।[1]

इस प्रकार राजा दशरथ द्वारा पुत्र-प्राप्ति हेतु पुत्रेष्टि याग का सम्पादन यह प्रमाणित करता है कि परवर्ती काल में भी लोगों का वैदिक कर्मकाण्ड पर पूर्ण विश्वास तथा कृत्य-सम्पादन में पूर्ण आस्था थी।

इसके अतिरिक्त अभिचार कर्मों के ही क्षेत्र में ज्योतिष-शास्त्र का सर्वाधिक प्रभाव रावण के कथनों में परिलक्षित होता है।[2] जिसने ज्योतिष शास्त्र को ही प्रमाण माना है। त्रिजटा के स्वप्न श्री राम का यात्राकालिक मुहूर्त विचार, विभीषण द्वारा लंका के अपशकुनों का प्रतिपादन[3] आदि ज्योतिर्विज्ञान के ज्ञापक तथा समर्थक हैं।

---

1. इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकरणात।
   अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः।। रामायण, बालकाण्ड, 15.2
   ततः प्राक्रमदिष्टिं तां पुत्रीयां पुत्रकरणात्।
   जुहावाग्नौ च तेजस्वी मन्त्र दृष्टेन कर्मण्य।। तत्रैव, 15 3
2. रामायण, लंकाकाण्ड, 16वाँ सर्ग
3. तत्रैव, 10वाँ सर्ग

रावण द्वारा सीता जी का अपहरण कर लिए जाने पर वेद वेत्ता विभीषण को सीतापहरण के फलस्वरूप ही लंका में अनिष्ट के सूचक विविध अपशकुनों के दर्शन होते हैं, यथा--'मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक धधकाने पर भी आग अच्छी तरह प्रज्वलित नहीं होती है उसमें चिनगारियाँ तथा धुँआ उठने लगता है। पाठशाला, अग्निशाला आदि में सर्पों के दर्शन तथा हवन सामग्रियों में चीटियाँ पड़ी दिखाई देती हैं। लंका में गायों का दूध सूख जाना, विशालकाय गजराजों का मदरहित हो जाना, भोजन मिलने के बाद भी अश्वों का हिनहिनाना, ऊँटों, गधों और खच्चरों के रोंगटे खड़े होना तथा उनके नेत्रों से आंसू निकलना, कौए आदि अशुभ पक्षियों का कर्कश स्वर में निनाद करना, गीध तथा सियारिन आदि का बोलना एवं बिजली की गड़गड़ाहट आदि भी विभीषण को लंका के लिए शुभ प्रतीत नहीं होते हैं और इन सब का कारण वह सीतापहरण को ही मानते हैं।

रामायण में विभीषण द्वारा वर्णित उपर्युक्त अपशकुन, निश्चय ही हमारा ध्यान वैदिक काल में प्रचलित तथा संहिताओं, ब्राह्मणों और कल्पसूत्रों में प्रतिपादित अपशकुन, अमङ्गलसूचक कर्मों एवं प्रायश्चितों की ओर आकृष्ट करते हैं, क्योंकि ये अनिष्टसूचक कर्म, यथा—सियारिन का शब्द करना, कौओं के समूह का घर की छत पर बैठना, प्रयत्नपूर्वक जलाये जाने पर भी अग्नि का प्रज्वलित न होना, गृह में सर्पदर्शन होना, गृह के ऊपर गिद्धों का मण्डराना आदि गृह्यसूत्रकालीन वैदिक समाज में भविष्य के लिए अशुभ माने गए हैं तथा उनके निवारणार्थ विविध मन्त्रों का जप एवं होम विधान किया गया है। अतः यहाँ रामायण में उल्लिखित अपशकुन वस्तुतः वैदिक अपशकुनों के ही विकसित या पारम्परिक रूप कहे जा सकते हैं। वैदिक काल में इनके लिए प्रायश्चित्त स्वरूप अग्नि में होम तथा मन्त्रों के जप का विधान है जो याज्ञिक प्रतीत होता है किन्तु रामायण में इन अपशकुनों से होने वाली हानि या अमङ्गल से बचने के लिए विभीषण रावण से प्रायश्चित्त स्वरूप सीता को वापस श्री राम के पास छोड़ने का आग्रह करता है।[1] जो वस्तुतः नैतिकता पर आधृत प्रायश्चित्त ही माना जा सकता क्योंकि धर्मग्रन्थों में परस्त्री है अपहरण सदृश अनैतिक आचरण सर्वथा निषिद्ध और दण्डनीय माना गया है।

---

1. तदेवं प्रस्तुते कार्ये प्रायश्चित्तमिदं क्षमम्।
   रोचये वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम्॥ रामायण, युद्धकाण्ड, 10.22

चतुर्थ सर्ग में भी लंका-विजय हेतु श्री राम द्वारा सेना सहित प्रस्थान करने के अवसर पर वेदवेत्ता श्री राम द्वारा स्वयं ही विविध शकुनों का वर्णन किया गया है, यथा—मध्य दिवस अर्थात् दोपहर के समय तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में विजय यात्रा का प्रारम्भ शुभ माना गया है और चन्द्रमा का हस्त नक्षत्र में योग यात्रा की असफलता का सूचक माना गया है।[1] दाहिनी आँख के ऊपरी भाग में स्पन्दन (आँख फड़कना) विजय-प्राप्ति और मनोरथ सिद्धि के सूचक शुभ शकुन हैं।[2]

इसी सर्ग में लक्ष्मण द्वारा भी श्री राम की मनोरथसिद्धि के सूचक तथा यात्रा के अनुकूल वातावरण का वर्णन किया गया है।[3] जिसमें वैदिक काल की भाँति वातावरण में उत्पन्न विविध शकुनों-अपशकुनों जैसी लोकमान्यताओं के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त की गई है। शुभ-अशुभ नक्षत्रों के ही सन्दर्भ में विशाखा नामक युगल नक्षत्र का निर्मल एवं उपद्रव शून्य होकर प्रकाशित होना इक्ष्वाकु-वंशियों के लिए उत्तम तथा राक्षसों का नक्षत्र मूल बताया गया है जिसके देवता निर्ऋति हैं।[4]

उपर्युक्त प्रसंग में भी वैदिक श्रौत एवं गृह्ययागों में कर्म-सम्पादन हेतु विभिन्न वर्णों के लिए निश्चित समय प्रतिपादन का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

शुभ नक्षत्रों का प्रकाशित होना तथा अनिष्टसूचक नक्षत्रों का मलिन या

---

1. अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभि रोचय।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥ रामायण, युद्धकाण्ड, 4.3
उत्तरा फाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।
अभि प्रयाम सुग्रीव सर्वानीक समावृताः॥ तत्रैव, 4.5
2. उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिमं मम।
विजयं समनु प्राप्तं शंसतीव मनोरथम्॥ तत्रैव, 4.7
3. तत्रैव, 4.46-48
4. विमले च प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे।
नक्षत्रं परमस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम्॥ तत्रैव, 4.50
नैर्ऋतं नैर्ऋतानां च नक्षत्रमतिपीड्यते।
मूलोमूलवता स्पृष्टो धूप्यते धूमकेतुना॥ तत्रैव, .51

आक्रान्त होकर सन्तप्त होना वस्तुतः यजमान (कार्य साधक) के लिए कार्य की सफलता एवं असफलता के सूचक होते हैं। ये विचार तथा विश्वास लक्ष्मण द्वारा कथित वचन में द्रष्टव्य हैं।[1]

युद्धकाण्ड में ही श्री राम द्वारा भी उत्पातसूचक विविध लक्षणों का वर्णन किया गया है[2] जिसके परिणामस्वरूप राम-रावण युद्ध होता है।

इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड में भी त्रिजटा नामक वृद्धा राक्षसी द्वारा देखे गए स्वप्नों में भी वैदिक लोकविश्वासों का ही पुट दृष्टिगोचर होता है जिसमें स्वप्न-दर्शन के प्रति विश्वास की भावना निहित दृष्टिगोचर होती है। त्रिजटा द्वारा स्वप्न में श्री राम द्वारा श्वेत पुष्पों की माला तथा श्वेत वस्त्र धारण करके एक हजार घोड़ों से जुते हुए रथ पर बैठे हुए देखना, सीता को भी श्वेत माला एवं वस्त्र धारण किए हुए उच्चशिखर पर बैठी देखना तथा उनके द्वारा अपने दोनों हाथों से चन्द्र और सूर्यमण्डल को स्पर्श करती हुई देखना, राम और लक्ष्मण को पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हुए देखना तथा इसके विपरीत स्वप्न में ही मुण्डित मस्तक रावण द्वारा मदिरा पीकर मतवाला होना, स्त्री द्वारा रावण को खींचा जाना, रावण का पुत्रों सहित ऊँट, सुअर तथा गधे पर सवारी करना, कृष्ण तथा रक्त वर्ण वस्त्र धारण की हुई स्त्री का दिखाई देना, रावण का कीचड़ युक्त तालाब में डूबते हुए दिखाई देना, वानर द्वारा लंकापुरी का विनाश करना आदि सभी को श्री राम की लंका विजय तथा राक्षसराज रावण के पतन एवं विनाश की सूचक मानती है तथा स्वप्न में देखे गए दृश्यों का वर्णन करके अन्य सभी पिशाचिनियों को चुप रहने का संकेत करती है।[3]

वैदिककाल की स्वप्नदर्शन सम्बन्धी मान्यता परवर्तीकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी और लोगों को यह विश्वास होने लगा था कि किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध में देखे जाने वाले स्वप्न उसके लिए अवश्य ही

1. सर्वचैतद् विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम्।
   काले काल गृहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीडितम्।। रामायण, युद्धकाण्ड, 4.52
2. युद्धकाण्ड, 23वां सर्ग
3. सुन्दरकाण्ड, 27.1-40

फलीभूत होते हैं इसका प्रमाण त्रिजटा द्वारा कथित इन वचनों में द्रष्टव्य है— "जिस दु:खिनी नारी के विषय में ऐसा स्वप्न देखा जाता है वह बहुसंख्यक दु:खों से छुटकारा पाकर परम, उत्तम, प्रिय वस्तु प्राप्त कर लेती है।"[1]

"मुझे तो अब जानकी जी के अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि उपस्थित दिखाई देती है। राक्षसराज रावण के विनाश और रघुनाथ जी की विजय में अब अधिक बिलम्ब नहीं है।"[2]

ज्योतिष विद्या का प्रभाव अयोध्याकाण्ड के चौथे तथा अटठारहवें सर्गों में भी देखने को मिलता है जहाँ दशरथ जी श्री राम से ज्योतिषियों द्वारा अपने अनिष्ट फलादेश की बात बताते हैं। ज्योतिषियों के अनुसार उनके जन्म नक्षत्र को मङ्गल और राहु नामक भयंकर ग्रहों ने आक्रान्त कर रखा है।[3] इसके अतिरिक्त उन्हें अशुभसूचक लक्षण घटित होते हुए दिखाई देते हैं[4] जो उन्हें आपत्ति से घिर कर स्वयं की मृत्यु की सूचना दे रहे प्रतीत होते हैं।[5]

इस प्रकार रामायण जैसे धार्मिक ग्रन्थ में प्राप्त घटनाओं एवं विवरणों से यह ज्ञात होता है कि सभ्यता के विकास के साथ प्राचीन काल में समाज में व्याप्त विभिन्न धारणाओं तथा मनुष्य के उत्थान एवं पतन के लिए करणीय विविध कर्मों में भी समय के साथ परिवर्तन होता रहा है।

**महाभारत में अभिचार**

महाभारत काल में ऋषियों के आश्रमों और ब्राह्मणों के घरों में वैदिक यज्ञ-याग होते थे जिनमें सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि का आह्वान होता था किन्तु सामान्य गृहस्थियों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पूजा का प्रचार हो चला था और विष्णु के अवतार सन्ध्योपासन के पात्र माने जाने लगे थे।

---

1. यस्या ह्येवं विधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ।
   सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ रामायण, सुन्दरकाण्ड, 27.44
2. अर्थं सिद्धि तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम् ।
   राक्षसेन्द्र विनाशं च विजयं राघवस्य च ॥ तत्रैव, 27.49
3. रामायण, अयोध्या काण्ड, 4.17
4. तत्रैव, 4.18
5. प्रायेण च निमित्तानामीदृशानां समुद्भवे ।
   राजा हि मृत्युमाप्नोति घोरां चापदमृच्छति ॥ तत्रैव, 4 19

इस समय देवताओं के अतिरिक्त नागों और यक्षों की पूजा का काफी प्रचलन था। वैदिक यागानुष्ठानों में जिस प्रकार सर्पों के भय से बचने के लिए सर्पबलि कर्म या श्रवणाकर्म करणीय था उसी प्रकार महाभारत में सर्पसत्र का उल्लेख आया है। यह यज्ञ राजा जनमेजय के द्वारा तक्षक नाग एवं उसके परिवार को समाप्त करने के लिए किया गया था।[1] नागपूजा अभिलाषाओं को पूर्ण करने एवं शापजनित उपद्रवों को दूर करने में समर्थ होती थी।

महाभारत में वेदों की ही भाँति विभिन्न राक्षसियों का भी उल्लेख मिलता है जिनका बच्चों से गहरा सम्बन्ध होता था। जनसामान्य में ये राक्षसियाँ देवियों के समान पूजनीय थीं क्योंकि इनके सम्बन्ध में उस समय के लोगों का विश्वास था कि ये नाराज होने पर बच्चों को खा जाती हैं और खुश होने पर उनकी रक्षा करती हैं।[2] अतः उन्हें प्रसन्न रखने के लिए माँस और रक्त की बलि उनके लिए अर्पित की जाती थी और दीवार पर उनकी आकृति बनाकर उस पर चावलों की मूठ मारी जाती थी।[3] मगध में जरा और गन्धार में भीमा तथा हारीती नामक राक्षसी देवियों की पूजा का प्रचलन था। आज भी उस क्षेत्र में घर-घर सांझी का मुँह दीवार पर लगाकर बच्चों की रक्षा के लिए उस पर धौंक मारी जाती है। महाभारत काल में इस प्रकार के कृत्यों की पृष्ठभूमि में निश्चय ही वैदिक काल में जनसामान्य में बच्चों की सुरक्षा हेतु किए जाने वाले विविध होमों तथा उसमें दी जाने वाली पशुओं की बलि का विचार कार्य करता रहा होगा।

महाभारत में बच्चे के जन्म के छठे दिन षष्ठी देवी की पूजा का उल्लेख है[4] जिसे आज भी छठी कहते हैं। एक अन्य देवी वृद्धि का भी उल्लेख मिलता

---

1. अस्ति राजन महत् सत्रं त्वदर्थं देवनिर्मितम्।
   सर्पसत्रमिति ख्यातं पुराणे परिपठ्यते॥ महाभारत, आदिपर्व, 51.6
2. मेरुं वा खादितुं शक्ता किं पुनस्तव बालकम्।
   गृह सम्पूजनात् तुष्ट्या मया प्रत्यर्पितस्तव॥ तत्रैव, सभापर्व, 18.3
3. लिखिता चैव कुड्येषु पुत्रैर्बहुभिरावृता :
   गन्ध पुष्पैस्तथा धूपैर्भक्ष्य भोज्यैं सुपूजिता॥ तत्रैव, सभापर्व, 18.4
4. तत्रैव, वनपर्व, 218.47-49

है।[1] लोक में इसका नाम बिहाई हैं। बच्चे की छठी के दिन रात्रि में महिलायें इसके गीत गाती हैं। ऐसा माना जाता है कि यह उस रात बच्चे को देखने आती हैं अतः उनकी प्रसन्नता के लिए गीतों के रूप में उनका गुणगान किया जाता है। महाभारत में इस प्रकार के संस्कारों तथा कृत्यों का उद्भव भी वैदिक गृह्यसूत्रों में उल्लिखित संस्कारों और उसमें किए जाने वाले कृत्यों का ही परिणाम प्रतीत होता है।

महाभारत काल में विविध अभिलाषाओं के पूर्त्यर्थ यज्ञ-यागों के अनुष्ठान और कठोर तपस्या का प्रचलन था जिनमें वैदिक कर्मकाण्ड का प्रभाव सम्मिलित था। महाभारत में पाशुपतास्त्र तथा अन्य दिव्य अस्त्रों को प्राप्त करने के लिए अर्जुन द्वारा भगवान शंकर को प्रसन्न करने हेतु की जाने वाली कठोर तपस्या में प्रयुक्त कुशा और मृगचर्म दण्ड और सूखे पत्तों का भोजन[2] यह सकेत करता है कि तत्कालीन लोगों की वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति पूर्ण आस्था थी क्योंकि वैदिक काल में अभिलाषाओं के पूर्त्यर्थं सम्पादित किए जाने वाले यज्ञ-यागों में कृष्ण मृगचर्म तथा दण्ड का प्रयोग सर्वत्र आवश्यक बताया गया है जिससे कि यज्ञ के मध्य में दुष्ट प्रवृत्तियों द्वारा किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न की जा सके।

महाभारत में विविध यज्ञ-यागों के सम्पादन में विभिन्न तीर्थस्थलों के सानिध्य का भी वर्णन है। नैमिषारण्य, प्रयाग आदि तीर्थस्थलों की महिमा का प्रतिपादन करते हुए यह बताया गया है कि इन तीर्थस्थलों में स्थित पवित्र नदियों के जल में स्नान करने के पश्चात् वहीं इच्छापूर्ति के लिए किसी यज्ञ का वेदोक्त विधि से सम्पादन करने पर मानव की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं।[3]

इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में अभीष्ट-पूर्ति के लिए करणीय कठोर श्रौतयागों का स्थान परवर्ती काल में तीर्थस्थलों पर सम्पाद्य सरल यज्ञ-यागों ने ले लिया था।

---

1. महाभारत, वनपर्व, 220.16
2. तत्रैव, 38-23
3. तत्रैव, 94.14

तत्कालीन समाज के लोगों में भी पुराणों में वर्णित शक्ति रूपा देवी दुर्गा (वेदों की अदिति, पृथ्वी, सरस्वती) के प्रति पूर्ण विश्वास तथा उनमें आस्था जाग्रत हो चुकी थी। खड्गधारिणी देवी दुर्गा को लोगों द्वारा किसी भी शत्रु, राक्षस या भूत-प्रेत से पीड़ित होने पर स्मरण किया जाता था और कष्ट निवारण हेतु उनका विधि-विधानपूर्वक स्तवन किया जाता था। महाभारत में पाण्डवों द्वारा देवी दुर्गा की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"दुर्गे ! तुम दुःसह दुःख से उद्धार करती हो इसीलिए लोगों के द्वारा दुर्गा कही जाती हो। जो दुर्गम वन में कष्ट पा रहे हों, महासागर में डूब रहे हों अथवा लुटेरों के वश में पड़ गए हों, उन सब मनुष्यों के लिए तुम्हीं परम गति हो। महादेवि ! पानी में तैरते समय, दुर्गम मार्ग में चलते समय और जंगलों में भटक जाने पर जो तुम्हारा स्मरण करते हैं वे मनुष्य क्लेश नहीं पाते। तुम्हीं कीर्ति, श्री, घृति, सिद्धि, निज्जा, विद्या, संतति, मति, सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा, ज्योत्सना, कान्ति, क्षमा और दया हो। तुम पूजित होने पर मनुष्यों के बन्धन, मोह, पुत्रनाश और धननाश का संकट, व्याधि, मृत्यु और सम्पूर्ण भय नष्ट कर देती हो। मैं भी राज्य से भ्रष्ट हूँ, इसीलिए तुम्हारी शरण में आया हूँ।"[1]

उस समय समाज में वैदिक कृत्या प्रयोगों का भी प्रचलन हो गया था। लोग कृत्या आदि अभिचार कर्मों द्वारा अपने शत्रु या मित्रों को इच्छित स्थान पर बुला लेते थे। यह कृत्या आँख, नाक, कान और शिर से युक्त जीवित (राक्षसी) रूप में मन्त्र बल से उत्पन्न की जाती थी जिसके लिए अथर्ववेद विहित मन्त्रों द्वारा अग्नि विस्तार साध्य यज्ञ कर्म का अनुष्ठान किया जाता था जिसमें मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि में घृत और खीर की आहुति दी जाती थी किन्तु ऐसे कर्मों का सम्पादन वस्तुतः राक्षसी प्रवृत्ति के लोगों द्वारा ही किया जाता था।[2]

तत्कालीन लोगों के मध्य विनायक राक्षसों के प्रति भी भय की भावना व्याप्त थी[3] और विनायकों के प्रभाव से बचने के लिए पूजा या यज्ञ के समय

1. महाभारत, विराट पर्व, 6 20-23
2. तत्रैव, 151.21-26
3. तुलनीय मानव गृ० सू०, 2.14

उनको यथेष्ट (उनके लिए देय भाग) अर्पित किया जाता था। बिनायकों के प्रति लोगों में यह विश्वास था कि यज्ञ या पूजा में उनके लिए अपेक्षित भाग न देने पर वे यज्ञ कार्य की पूर्ति में बाधक बनते हैं।[1]

महाभारत के वनपर्व में ही[2] मनुष्यों को पीड़ित कर उन्हें कष्ट पहुँचाने वाले विविध ग्रहों (राक्षसियों) का भी वर्णन हुआ है जिनमें स्कन्दापस्मार, पूतना ग्रह, शीत पूतना, रैवत, मुख मण्डिका (दैत्यों की माता दिति) आदि प्रमुख हैं। यह सभी ग्रह मनुष्य को बाल्यावस्था में पीड़ित करने वाले ग्रह कहलाते हैं जो वास्तव में भयानक आकार वाली राक्षसियाँ ही होती हैं तथा अप्रसन्न होने पर गर्भस्थ शिशु अथवा छोटे बच्चों को खा जाती थीं। गर्भकाल में ये राक्षसियाँ दस रात तक निरन्तर सूतिका गृह में ही निवास करती थीं और उचित अवसर देखकर गर्भिणी के शरीर में प्रवेश कर जाती थीं जिसमें गर्भिणी स्त्री मानव शिशु उत्पन्न न करके सर्प पैदा करती थी। अतः तत्कालीन समाज के लोगों में स्कन्द ग्रह के नाम से प्रचलित इन तामसिक प्रवृत्ति के ग्रहों से रक्षार्थ देहधारी मनुष्य स्नान, धूप, अञ्जन, बलिकर्म, उपहार-अर्पण तथा स्कन्ददेव की पूजा करके इन ग्रहों की शान्ति के लिए प्रार्थना करते थे।[3] अभीष्ट-सिद्धि के लिए लोगों में भगवान रुद्र तथा देवियों में माता आर्या की पूजा का प्रचलन था।[4] युवावस्था में पीड़ित करने वाले ग्रहों में देवग्रह, पिशाच ग्रह, सिद्ध ग्रह, राक्षस ग्रह, पितृग्रह आदि दानवों का उल्लेख मिलता है। इन ग्रहों से मुक्ति हेतु भगवान माहेश्वर की पूजा का प्रचलन था।[5]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में उल्लिखित विविध ग्रहों और उनके उत्पातों का प्रभाव परवर्तीकाल में भी उसी प्रकार विद्यमान

---

1. तेषामिष्टं हरन्त्येते निघ्नन्ति च महद्धविः।
   स्पर्धया हव्यवाहाना निघ्नन्त्येते हरन्ति च॥ महाभारत, वनपर्व, 220.15
2. तत्रैव, 229
3. तेषां प्रशमनं कार्यं स्नानं धूपमथाञ्जनम्।
   बलिकर्मोपहाराश्च स्कन्दस्येज्या विशेषतः॥
4. पुरुषेषु यथा रुद्रस्तथा ऽऽर्या प्रमदास्वपि।
   आर्या माता कुमारस्य पृथक् कामार्थमिज्यते॥
5. न स्पृशन्ति ग्रहा भक्तान् नरान देवं महेश्वरम्॥

रहा। अन्तर केवल यह था कि वैदिक युग में इन ग्रहों और उनके उत्पातों की शान्ति के लिए जो होम-विधान प्रचलित थे वे समय परिवर्तन के साथ शनैः शनैः देवी-देवताओं की पूजा तक सीमित होकर रह गए।

इसके अतिरिक्त महाभारत में अन्य विभिन्न अवसरों पर भी वैदिक तान्त्रिक मान्यताओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जब अर्जुन कुरुक्षेत्र में युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं तो उस समय वह अपने उस सुवर्णमय ध्वज का चिन्तन करते हैं जो उन्हें अग्निदेव के प्रसाद से प्राप्त हुआ था और जिस पर सिंह के लम्बी पूंछ वाले वानर की प्रतिछाया परिलक्षित होती थी। ये सम्भवतः विश्वकर्मा की बनाई हुई दैवी माया ही थी जो उनके रथ में सयुक्त हो जाती थी।[1] अग्निदेव ने अर्जुन के मनोरथ को जानकर ही उस ध्वज पर स्थित रहने जैसी समान लिए भूतों को आदेश दिया।[2]

रामायण काल की भाँति महाभारत काल में भी सामाजिक लोकमान्यताओं के अन्तर्गत शकुन-अपशकुन के विचारों ने लोगों को अत्यधिक प्रभावित कर रखा था। क्षत्रिय लोगों में युद्ध के समान शास्त्रों का कान्तिहीन होना, प्रयत्नपूर्वक जलायी गई अग्नियों का भी प्रज्वलित न होना, पृथ्वी का काँपना आदि, राज्य एवं उसके स्वामी के लिए अशुभसूचक माने जाते थे। इसके अतिरिक्त उल्कापात होना, घोड़ों का हिनहिनाना, पशु-पक्षियों का क्रन्दन करना आदि भी राज्य एवं प्रजा के विनाश के सूचक माने जाते थे जिसकी शान्ति के लिए व्यावहारिक जगत् के लोगों में विविध प्रकार के पूजा-पाठ तथा देवियों का अर्चन किया जाता था।[3]

## परवर्ती तन्त्र-साहित्य

भारत में उपासना का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। न केवल साहित्यिक स्रोतों से अपितु प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक युगों की उपलब्ध पुरातत्व एवं कला सामग्री से भी उसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। सिन्धु संस्कृति के उपलब्ध अवशेषों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में मातृपूजा तथा

---

1. दैवीं मायां रथे युक्तां विहितां विश्वकर्मणा।
   काञ्चनं सिंह लाङ्गूल ध्वजं वानर लक्षणम्॥ महाभारत, विराटपर्व, 46.3
2. मनसा चिन्तयामास प्रसादं पावकस्य च।
   स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ध्वजे भूतान्यदेशयत॥ तत्रैव, 46.4
3. तत्रैव, 46.24-33

लिंगपूजा का प्रचलन था। उन्हीं के द्वारा बाद में तान्त्रिक पन्थों का उदय हुआ।

वैदिक ऋषियों के प्रकृति-पुरुष के रहस्यमय उद्‌गार ही तान्त्रिक धर्म के मूल उद्‌गम हैं। उसकी व्यापक तथा गम्भीर भूमिका का निर्माण उपनिषदों और दर्शनों में हुआ। उपनिषदों का ब्रह्म-माया सिद्धान्त और कपिल के सांख्य दर्शन का प्रकृति-पुरुष विवेचन तान्त्रिक धर्म के विकास के परिचायक हैं। परवर्ती वैदिक साहित्य में उसकी प्रतिष्ठा पुराणों के देवतावाद और विशेष रूप से शक्ति उपासना के विभिन्न रूपों में हुई। तान्त्रिक उपासना का केन्द्र बिन्दु यही शक्तिपूजा रही है।

तन्त्र-साहित्य का क्षेत्र और प्रभाव अत्यन्त व्यापक है। सभी प्रकार के आगम ग्रन्थों को तन्त्र कहा गया है। 'सम्मोहन तन्त्र' में विभिन्न प्रकार के बाईस आगमों का उल्लेख हुआ है, जिनमें चीनागम, पाशुपत, पाञ्चरात्र, कापालिक, भैरव, अघोर, जैन और बौद्धों की परिगणना की गई है। किन्तु ये आगम अधिक प्राचीन नहीं हैं। प्राचीन आगम मुख्य रूप से तीन हैं— वैष्णव, शाक्त और शैव। वैष्णव आगमों का नाम है पाञ्चरात्र और वैखानस। शैवों के आगमों का नाम माहेश्वर तथा कापाल है। लकुल, भैरव, काश्मीर, शैव आदि उसके अवान्तर भेद हैं। इसी प्रकार शाक्तों के भी केरल, काश्मीर और गौड़ आदि अनेक सम्प्रदाय हैं। इन सभी सम्प्रदायों में अपने-अपने मत के अनुसार अलग-अलग उपासनाओं का विधान है। स्त्री-पुरुष दोनों को उसका उपासक अधिकारी माना गया है। पाशुपत और शैवमत एक ही हैं। पुराणों में पाशुपत मत के प्रवर्तक कालामुखों, कापालिकों और लकुलीशों आदि अनेक पन्थों का उदय हुआ। इन सभी तान्त्रिक सम्प्रदायों का दसवीं शती तक पूर्ण विकास हो चुका था। इस मत के अनुयायी शिव के उपासक हैं। कापालिक वाममार्गी हैं और उनमें नर-बलि का प्रचलन था।

वैष्णव, शाक्त और शैव आगमों के अतिरिक्त बौद्धागम की भी स्वतन्त्र परम्परा है। बौद्धागम में तीन प्रकार के साधक बताए गए हैं—श्रावक, प्रत्येक बुद्ध और सम्यक् बुद्ध। महायान ही तीनों का योगपथ है जिसकी दो शाखाएँ हैं पारमितानय और मन्त्रनय। दोनों शाखाओं के प्रवर्तक बुद्ध हैं। मन्त्रनय के तीन अवान्तर भेद हैं— वज्रयान, कालचक्र यान और सजय यान। इनमें वज्रयान तथा कालचक्रयान की साधना में मन्त्र का प्राधान्य होता है।

महायानी तान्त्रिक बौद्धों ने एक ही बुद्ध को पाँच ध्यानी बुद्धों में प्रतिष्ठित किया, जिनकी स्वतन्त्र शक्ति, प्रज्ञा और विद्या थी तथा जिसके लिए स्वतन्त्र रूप से विशिष्ट मन्त्र, मुद्रा और मण्डल निर्धारित थे। इन ध्यानी बुद्धों में अक्षोभ्य, लोचना, वैरोच, तारा, अभिताभ और अमोघ वज्र आदि नवीन आराध्य देवी-देवों की प्रतिष्ठा हुई। इस बिचारधारा के अनुसार 'वज्र' में 'शून्य' का आधान करके उसे अद्वय, अभेद्य, अविभाज्य और अपर मानकर उसकी उपासना की गई। उससे ज्ञानवाद और रहस्यवाद की नई विचार-पद्धतियों का निर्माण हुआ जिनमें कि तान्त्रिक योग-विधियों की प्रमुखता थी।

बगाल के पाल राजाओं के शासनकाल में बंगाल में तान्त्रिक धर्म का विशेष विकास हुआ। उनके समय अपराजिता, वज्र, शारदा, वर्त्तालि, बरीली, मारीची और पर्णेश्वरी आदि देवियों तथा वज्रपाणि, मंजुश्री, त्रैलोक्य विजय आदि अनेक नवीन तान्त्रिक उपास्य देवों की सृष्टि हुई।

**वाममार्गी तन्त्रवाद का उदय**

परम्परागत धार्मिक अभ्युदय की दृष्टि से मध्य युग के आरम्भ में तो सामाजिक स्थिति सन्तोषजनक बनी रही। गुजरात से लेकर उत्तर भारत तक और पंजाब से लेकर बिहार, बंगाल तक जातीय स्वाभिमान तथा राष्ट्रीय एकता की भावना ने धार्मिक अभ्युदय की गौरवशाली परम्परा को उन्नत बनाए रखने में देशव्यापी अन्तःप्रेरणा का कार्य किया। किन्तु उत्तर मध्य युग (11वीं शताब्दी के पश्चात) में असंगठित स्वाभिमान और सामन्ती भावना ने जहां एक ओर समाज में जातीय पृथकता तथा वर्गवाद का बीजारोपण किया, वहीं परम्परागत विद्या-व्यसन और चिन्तन-मनन के बौद्धिक विकास को भी विस्मृत कर दिया गया।

मध्य युग में पुराणों द्वारा प्रवर्तित तन्त्रविद्या की जिन जटिल प्रक्रियाओं का प्रचलन हुआ, गुप्त युग के उत्तरार्ध में ही उनमें विकार की मात्रा बलवत्तर हो गई थी जिसके फलस्वरूप प्रबुद्ध समाज उनसे अलग होने लग गया था। तान्त्रिक उपासना में इस विकृतावस्था को वाममार्गी तन्त्रवाद के नाम से अभिहित किया गया है, जिसके फलस्वरूप समाज में जादू-टोना, मन्त्र, वशीकरण, मोहन, उच्चाटन और नरबलि (मारण) के अन्धविश्वासों का प्रचलन हुआ। उसी के परिणामस्वरूप डाकिनी-शाकिनी, भैरव-भैरवी की विकराल उपासनाएँ प्रचलित हुईं और मांस-मदिरा तथा यौनाचार की स्वतन्त्रता बलवती होती गई। देवी पुराण में तो यहाँ तक उल्लेख हुआ है कि तान्त्रिक लोग देवी-पूजा

में विवाहिता स्त्री का पूजन और उनके साथ मांस-मदिरा का भक्षण तथा विहार कर सकते हैं। बौद्ध मठों में भी इसी वामपन्थ का बोलबाला था।

इसी प्रकार उत्तर-मध्ययुगीन भारत में तान्त्रिक कौल धर्म ने समाज की चारित्रिक श्रेष्ठता को गिरा दिया। उस समय धर्म के नाम पर प्रेम के सामूहिक क्रीड़ास्थल नियोजित किए जाने लगे थे और वहाँ देवी की मूर्ति के समक्ष प्रेमिकाओं के साथ अनेक प्रकार की प्रेम-लीलाएँ रची जाने लगी थीं। इस प्रकार के अमर्यादित क्रिया-कलापों की व्यापक प्रतिक्रिया तत्कालीन साहित्य में परिलक्षित हुई। दामोदर गुप्त ने 'कुट्टिनीमत', राजशेखर ने 'कर्पूरमंजरी', सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' तथा क्षेमेन्द्र ने 'कलाविलास' एवं 'समयमातृका' आदि कृतियों की रचना कर 'कामसूत्र' में वर्णित वेश्याओं के यौनाचारों को आधार बनाकर ऐसी कथाओं को लिपिबद्ध किया जिसमें रोमांचकता के साथ-साथ छल, प्रपंच, धोखाधड़ी, मारण, मोहन, उच्चाटन, जटिल रहस्यात्मकता मदिरा-सेवन, माँस भक्षण और यौनाचार की विकृत एवं निकृष्ट मनोदशाओं का खुलकर व्यापक रूप से वर्णन किया गया। इन सबका आधार वस्तुतः वेद कालीन आचार-विचार तथा लोक प्रचलित व्यवहार ही थे, केवल परिस्थिति तथा समय परिवर्तनानुकूल ही उसमें कुछ प्राचीन विषयों का त्याग एवं नवीन विषयों को ग्रहण किया गया था।

**कापालिक सम्प्रदाय** : परवर्तीकाल में वैदिक अभिचार कर्मों के विकास में तान्त्रिकों के एक सम्प्रदाय कापालिकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस क्षेत्र में इस सम्प्रदाय का प्रभाव बहुव्यापी है। कापालिक मतानुयायी साधक शिव-सयुक्त शक्ति के उपासक थे। उनके मत से परम शिव ही नाम तथा रूप से अतीत जगत् के एक मात्र कारण हैं। वे निर्गुण निरंजन, निष्क्रिय होते हुए भी ज्ञेय हैं, किन्तु उपासना के विषय नहीं हैं। इस सम्प्रदाय के मतानुसार उपासना का विषय तो शक्ति ही है। इस दृष्टि से ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के रूप में नाना नाम-रूप देवियों की आराधना-उपासना का प्रचलन हुआ। देवताओं की भाँति इन देवियों की संख्या भी अनन्त है। उनमें प्रमुख सात मातृकाएँ हैं, जिनके नाम हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री। इसके अतिरिक्त भयंकर और रुद्र रूपा शक्तियों की भी कल्पना की गई। इस प्रकार की शक्तियों में काली, कराली, चामुण्डा तथा चण्डी आदि देवियों की उपासना होने लगी। इनके साथ ही कुछ ऐसी देवियों का भी आधान

किया गया, जो विलासिता एवं कामकला की सूचक थीं। इस प्रकार की देवियों में आनन्द भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी और ललिता आदि का नाम प्रमुख है। उनकी उपासना का आधार तान्त्रिक था। भैरवी चक्र के ये उपासक तान्त्रिक कौलिक एवं कापालिक कहलाए।

वाममार्गियों के दो सम्प्रदाय हैं। प्राचीन मत के अनुयायी कापालिक स्त्री का योनि-प्रतीक बनाकर उसकी पूजा करते थे और दूसरे नवीन सम्प्रदाय के अनुयायी स्त्री की वास्तविक योनि के पूजक हैं। इस पूजन के समय वे मद्य-मांस का भक्षण करते हैं और किसी प्रकार का भेद भाव नहीं मानते।

कौल सम्प्रदाय में पंचमकार की उपासना का विशिष्ट विधान है। ये मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन हैं जो मकार से आरम्भ होने के कारण 'पंच' मकार के नाम से प्रख्यात हैं। ये साँकेतिक शब्द हैं जिनका अर्थ नितान्त गूढ़ तथा रहस्यमय है। ये भौतिक पदार्थों के द्योतक न होकर आन्तर भावों के सूचक हैं।[1] 'मधु' का अर्थ है सहस्रदल कमल से क्षरित होने वाली सुधा। 'मांस' का संकेत ज्ञान से पाप तथा पुण्य से नाश तथा हनन से है। शरीरस्थ इडा तथा पिंगला (साँकेतिक नाम गंगा और यमुना) में प्रवाहित होने वाले श्वास तथा प्रश्वास का ही नाम है मत्स्य। असत् संग के त्याग का नाम है मुद्रा (या मुद्रण)। मैथुन का अर्थ है सहस्रार में स्थित शिव का तथा कुण्डलिनी शक्ति का योग अथवा सुषुम्णा नाड़ी में प्राण वायु का मिलन, जो असीम आनन्द का जनक होता है। तामस साधक इन वस्तुओं के भौतिक रूपों को उपयोग में लाकर क्षणिक सिद्धि अवश्य प्राप्त करता है, परन्तु तान्त्रिक पूजा का यह तात्पर्य नहीं है। तन्त्र का अधिकारी उच्चकोटि का जितेन्द्रिय साधक होता है जिसके लिए मद्य-मांस का सेवन नितान्त हेय, गर्हणीय तथा वर्ज्य होता है।

**लौकिक संस्कृत साहित्य में अभिचार अथवा तन्त्र का प्रभाव**

मध्ययुगीन साहित्य में इन कापालिकों की बहुविध चर्चा हुई है। वैचारिक दृष्टि से वे लौकायतिकों की परम्परा के अनुयायी और सहजयान की विकृतावस्था के सूचक हैं। मध्ययुगीन संस्कृत साहित्य की विभिन्न कृतियों में भी उनके आचार-विचारों का सम्यक् चित्रण हुआ है। कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक में सोम सिद्धान्त नामक कापालिक के वर्णन में कहा

1. द्रष्टव्य भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ० 520

गया है कि वह मद्यपान करता है और स्त्रियों के साथ स्वतन्त्र होकर यौनाचार करता हुआ सहज ही मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार जैनाचार्य पुष्पदन्त के 'महापुराण' में भी कापालिकों का उल्लेख हुआ है और सर्वत्र ही उन्हें मद्यपायी तथा स्त्रियों के साथ विहार करने वाला बताया गया है। भवभूति के 'मालतीमाधव' पर भी कापालिकों का प्रभाव परिलक्षित होता है। उसमें सौदामिनी नामक एक बौद्ध भिक्षुणी को श्री पर्वत पर कापालिक साधना करते हुए दिखाया गया है। यह श्री पर्वत मध्ययुग का प्रसिद्ध तन्त्र-पीठ था। बाण के 'हर्षचरित' में उसे शाक्त तन्त्र का साधना पीठ कहा गया है। इसी श्रीपर्वत को वज्रपान का उत्पत्ति स्थान बताया गया है।

कापालिकों का वर्णन करने वाले मध्ययुगीन ग्रन्थों में राजशेखर के 'कर्पूर-मंजरी' सट्टक का नाम उल्लेखनीय है। उसमें भैरवानन्द नामक एक तान्त्रिक अपनी तन्त्र-शक्ति के बल पर अनेक प्रकार के अद्भुत कार्य करके दिखाता है। वह अश्लीलता तथा अनैतिकता का प्रतिनिधि है। उसका कहना है कि हम तन्त्र-मन्त्रादि कुछ भी नहीं जानते हैं, न गुरु-कृपा से हमें कोई ज्ञान प्राप्त हुआ है। हम तो मद्यपान और स्त्रीगमन करते हैं। कुलटाओं को दीक्षित कर हम उन्हें अपनी पत्नी बना लेते हैं। हम लोग मद्य पीते हैं और मांसभक्षण करते हैं। भिक्षा से प्राप्त अन्न ही हमारा भोजन है और चर्मखण्ड ही हमारी शैय्या है। बताओ तो ऐसा सुन्दर कौल धर्म किसको प्रिय न होगा ? भैखानन्द के इस कथन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन साहित्य में सर्वत्र तान्त्रिक मान्यताओं का प्रभाव विद्यमान था।

**आधुनिक जगत मे लोक परम्पराएँ, झाड़-फूंक एवं टोना-टोटका**

समय में भी वैदिक परम्पराओं का प्रभाव विभिन्न शकुन-अपशकुन, झाड़-फूंक एवं टोने-टोटके जैसे लोकविश्वासों एवं परम्पराओं के रूप में समाज में व्याप्त दिखलाई देता है क्योंकि आज भी उत्तर भारत के विभिन्न गाँवों तथा शहरों में स्थान-स्थान पर अभिचार कर्म करने वाले तान्त्रिकों के रूप में ओझा, मुल्ला, पीर, भगत तथा इसी कोटि के कुछ व्यक्तियों के दर्शन होते हैं। जो अपनी तन्त्र शक्ति के बल से अथवा झाड़-फूंक के माध्यम से लोगों को विभिन्न त्राणों से मुक्ति दिलाते हैं और उनको मानसिक सन्तोष की प्राप्ति कराते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में भी प्राचीन वैदिक लोक-परम्पराओं के अनुरूप ही हमारे समाज में उच्च, मध्यम तथा निम्न सभी वर्गों के लोगों में विभिन्न

प्रकार के अन्ध-विश्वास तथा टोने-टोटके प्रचलित हैं। चिकित्सा सुविधा उपलब्ध होते हुए भी लोग विभिन्न रोगों एवं परेशानियों का कारण किसी दैवीय शक्ति को अथवा शत्रुकृत टोने-टोटके को मानते हैं और उनके निराकरण के लिए विविध अनैतिक उपायों का आश्रय लेते हैं, यथा—इन उपायों में कुछ लोग किसी तान्त्रिक या ओझा द्वारा सिद्ध की हुई होम-भभूत का प्रयोग करते हैं, तो स्त्रियाँ बहुधा अपनी स्त्री-शत्रुओं के विनाश या उनसे मुक्ति के लिए सिन्दूर का प्रयोग करती हैं। कुछ लोगों में अपने शत्रुओं के मारणार्थ तान्त्रिकों से डबलरोटी अथवा अण्डा कटवाने का भी प्रचलन है। इसके अतिरिक्त अपने प्रिय व्यक्ति के वशीकरण हेतु, जय-पराजय के मामले में अभीष्ट-सिद्धि हेतु तथा सम्मोहन हेतु प्रचलित टोने-टोटकों में काली या पीली सरसों तथा लौंग को सिद्ध करवाकर उनका प्रक्षेपण करना, काले या लाल वस्त्रों को धारण कर विशेष विधि से देवी-देवताओं का पूजन करना, न्यायालय के लिए प्रस्थान करते समय भी काले वस्त्रों को धारण करना आदि सर्वविदित है, जो वैदिक कर्मकाण्ड का ही विकसित रूप होता है। आजकल आभिचारिक रूप में कामना-पूर्ति हेतु की जाने वाली पूजा-अर्चना में भगवती दुर्गा का आह्वान और दुर्गा-पाठ के वाचन में भी पुराणों में वर्णित दुर्गादेवी की महिमा एवं उनकी शक्ति का ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है केवल उनके लिए बलि-अर्पण विधान में सूक्ष्म परिवर्तन परिलक्षित होता है, यथा, पुराण काल में आभिचारिक कृत्यों में देवी के लिए माँस एवं रक्त अर्पण अनिवार्य माना गया है, जिसके लिए पशु-बलि का विधान था किन्तु वर्तमान समय में बलि प्रथा लुप्तप्राय ही है। यत्र तत्र यदि किसी परिवार में पूर्वजों से देवी को रक्त अर्पित करने की प्रथा है भी, तो अब केवल बकरे का कर्णछेदन या विच्छेदन करके ही उसे छोड़ दिया जाता है किन्तु अधिकांश परिवारों में पशुबलि के स्थान पर देवी को नारियल या पान सुपाड़ी की ही बलि अर्पित करने की प्रथा है।

छोटे-मोटे टोने-टोटको के रूप में आजकल नींबू काटकर चौराहे पर रखना, रोगी को रोगमुक्ति हेतु झाड़-फूँक करने वालों से झड़वाना, बच्चे के जन्म के समय गर्भवती स्त्री की शैय्या पर धारदार वस्तु, यथा, चाकू आदि रखना, शत्रु को पीड़ा पहुँचाने हेतु किसी नुकीली वस्तु-सुई या लौह कील को तान्त्रिकों से अभिमन्त्रित कराकर शत्रु के घर में डालना, शत्रुओं के वस्त्रों को चुराकर उन पर तान्त्रिक प्रयोग करवाना, चुपके से शत्रुओं के केशों को काट-कर कृत्या के लिए उनका प्रयोग करना आदि सर्वत्र प्रचलित है।

भूत, प्रेत, पिशाचों के प्रभाव से बचने के लिए अथवा उनसे प्रभावित होने पर शनिवार के दिन पीपल के वृक्ष पर सन्ध्या समय सरसों के तेल का दीपक जलाने तथा काले वस्त्रों एवं अन्य खाद्य वस्तुओं को दान करने की प्रथा भी प्रचलित है क्योंकि आधुनिक युग में भी लोगों की यह धारणा एवं मान्यता है कि भूत, प्रेतों-पिशाचों के अभीष्ट देवता शनि हैं और वे सर्वथा पीपल के वृक्ष पर ही निवास करते हैं। अतः पीपल वृक्ष की उपासना करने से शनिदेव प्रसन्न होते हैं और साधक तथा उसके परिवार के सदस्यों को अपने कोप से सर्वथा मुक्त रखते हैं।

इसके अतिरिक्त निरन्तर परिवर्तनशील इस वैज्ञानिक युग के लोगों में विभिन्न शकुन-अपशकुन के विचारों के प्रति भी आस्था दिखाई देती है। लोग यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय तेल, नमक तथा दूध का नाम लेना या बिल्ली द्वारा रास्ता काट जाना अशुभ मानते हैं। रात्रि में घर के अन्दर बिल्ली का रोना भविष्य के लिए अनिष्ट सूचक माना जाता है। इसी प्रकार रात्रि में स्वप्न में पुष्पों को देखना, फलों से युक्त बाग-बगीचों को देखना आदि परिवार में सन्तानोत्पत्ति के सूचक माने जाते हैं जबकि इसके विपरीत कृष्णवर्ण सर्प, बैल अथवा भैंसा, काले वस्त्र धारण किए हुए कोई पुरुष अथवा राक्षस आदि का दिखाई देना, परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने के सूचक माने जाते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में लोग विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप भी सामाजिक लोकमान्यताओं के क्षेत्र में प्राचीन संस्कृति एवं मान्यताओं का विस्मरण आज तक नहीं कर पाये हैं। वे सर्वत्र किसी न किसी रूप में अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति को आत्मसात् करते रहते हैं क्योंकि प्राचीन वैदिक तथा लौकिक मान्यताओं के अनुरूप ही आज भी इन ओझा, पीर, भगत एव तान्त्रिकों की पहुँच एवं पकड़ आध्यात्मिक, भौतिक, मानसिक तथा शारीरिक सभी क्षेत्रों में अबाध है, ऐसा लोगों का विश्वास है। जहाँ एक ओर ये लोग मानसिक आधियों को दूर करते हैं वहाँ दूसरी ओर शारीरिक व्याधियों को झाड़ते देखे जाते हैं। भारत के गामों में इनका अपना विशिष्ट स्थान है। गाँव के नर-नारियों के लिए ये पूजनीय हैं और लोग इनसे भयभीत भी रहते हैं कि कहीं ये अपने कोप से उन्हें भस्म न कर दें अथवा उन्हें हानि पहुँचाये।

### सप्तम अध्याय

# उपसंहार

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने से यह निश्चित प्रतीति होती है कि भारतवर्ष में अनादिकाल से ही किसी रहस्यमय शक्ति का अस्तित्व विद्यमान रहा है। किसी अभीष्ट की प्राप्ति के लिए इस रहस्यमयी शक्ति की स्तुति की परम्परा वेदों में भी पाई जाती है, जिसके लिए यज्ञ सम्पादित किए जाते हैं, जिसमें विविध प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है। देवता भी उस आदिशक्ति के आश्रय और कृपा के आकांक्षी होते हैं।

प्राचीन साहित्य पर आद्यन्त दृष्टिपात करने से यह यम्यक् ज्ञान होता है कि हमारे पुरातन महर्षि और पूर्वज अपने-अपने इष्ट देवता में अगाध श्रद्धा रखते थे, निष्ठापूर्वक उनकी आराधना किया करते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि देवाराधना और स्तुति से उनकी समस्त आध्यात्मिक और भौतिक कामनाएँ पूर्ण होंगी। वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल में लौकिक और पारलौकिक सिद्धि प्राप्त करने के लिए मन्त्रसिद्धि प्राप्त की जाती रही है और वह परम्परा अब तक प्रचलित रही है। मन्त्र साधना द्वारा न केवल ऐहिक सिद्धि प्राप्त होती है अपितु उससे आध्यात्मिक विमुक्ति भी मिलती है।

वस्तुतः पार्थिव पदार्थों की प्राप्ति के लिए और समस्त अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति हेतु सम्पादित किए जाने वाले कर्मों को अभिचार कर्म के नाम से अभिहित किया गया है। अथर्ववेद में धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति हेतु किए जाने वाले कर्म को यातु कर्म के नाम से सम्बोधित किया गया है।

वेद सर्व विद्याओं के भण्डार हैं, उनमें केवल अध्यात्म ज्ञान, धर्म, सदाचार, स्वर्ग, मुक्ति आदि के सम्बन्ध में ही महत्वपूर्ण ज्ञान नहीं दिया गया है, वरन् सभी प्रकार के लौकिक विषयों पर भी विस्तार से चर्चा हुई है। जीवन में मनुष्य को जिन संघर्षों का सामना करना पड़ता है, उनके प्रतिकार के उपाय भी वैदिक साहित्य में वर्णित हैं, लौकिक सिद्धियों की प्राप्ति का ज्ञान दिया गया है, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सब दृष्टियों से स्वस्थ रहने के साधन वर्णित हैं, समाज को दुष्टों और पापियों से बचाने के उपाय लिखे हैं।

संक्षेप में वेद मानव जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने तथा सांसारिक विघ्न बाधाओं को दूर करने का प्रवेशद्वार है और स्थाई सुख-शान्ति प्राप्त करने के उत्तम साधन हैं।

लौकिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति हेतु वेदों में वर्णित अभिचार कर्मों के विविध लक्ष्य थे, यथा—ग्राम, नगर, राज्य, किले आदि की प्राप्ति और उनका संवर्धन, शत्रु को कष्ट देने और नष्ट करने के उपाय, युद्ध में विजय-सम्पादन, शत्रुओं के शस्त्रों और आक्रमणों का निवारण करना, शत्रु-सेना में मोह, भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेग भाव उत्पन्न करना, उनकी तीक्ष्ण प्रक्रियाओं को रोकना, उनको समूल नष्ट करना आदि के साधन, अपनी सेना का उत्साह बढ़ाना और उसको निर्भय करना, युद्ध के पूर्व ही जय-पराजय रूप परिणाम को ज्ञात करना, सेनापति, मन्त्री, अमात्य आदि प्रधान राज्याधिकारियों को नियन्त्रण में रखना, शत्रु की सेना में गुप्तरीति से संचार करके उसका सब भेद जान लेना और वहाँ से अपने ऊपर आने वाले अनिष्टों के प्रतिकार की व्यवस्था करना, शत्रु द्वारा उखाड़े गए अपने राजा को पुनः स्वराष्ट्र में स्थापना की योजना, शत्रु पर चढ़ाई करना, शत्रु के नाश का उपाय करना, शत्रु-सेना में ज्वर, शरीर में जकड़न तथा अन्य अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न करना, अग्नि एवं जल की वर्षा मन्त्रों के बल पर कराना, ब्रह्मास्त्र आदि अनेकों आधुनिक एटम बमों की तरह विध्वंसक अस्त्रों की सिद्धि करना। शत्रु से स्वयं की रक्षा करना, अपनी सेना की कुशल व्यवस्था करना तथा शत्रु सेना में मोह, भ्रम उत्पन्न करके भ्रमित करना आदि।

इसके अतिरिक्त भौतिक जीवन को सुखी बनाने वाले अन्य अभिचार कर्मों का उद्देश्य पुत्र, पशु, धन-धान्य, प्रजा, स्त्री, हाथी, घोड़े तथा राज्य-समृद्धि आदि ऐश्वर्य साधनों की सिद्धि के उपाय ही रहे हैं।

वैदिक अभिचार कर्मों में प्रयुक्त मन्त्रों को अद्भुत शक्ति एवं सामर्थ्य युक्त स्वीकार किया गया है। आभिचारिक मन्त्र कभी तो गद्य में रहते हैं किन्तु अधिकतर पद्य में ही इनका प्रयोग होता है। कभी-कभी प्रयोजनवशात् नवीन मन्त्रों की भी रचना की गई दिखाई पड़ती है। इस तरह के नवीन मन्त्रों का प्रयोग अधिकांशतया गृह्यकर्मों में हुआ है। इन मन्त्रों की शक्ति पर हिन्दुओं की अटूट श्रद्धा और विश्वास है क्योंकि वैदिक ऋषि-महर्षियों द्वारा इन्हें मंगल

करने वाला कहा गया है और हिन्दू धर्म के प्रत्येक कर्मकाण्ड में इनका उपयोग मात्र वाह्य आडम्बर रूप में ही दृष्टिगोचर होता है परन्तु प्राचीन काल में इनके विशेषज्ञ होते थे जो इनका अभ्यास करके बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त करते थे। तत्कालीन समाज में ये सिद्धियाँ अद्भुत चमत्कार समझी जाती थीं और सम्भवतः इन्हीं चमत्कारी सिद्धियों तथा प्रयोगों के परिणामस्वरूप ही समाज में अभिचार कर्मों का प्रादुर्भाव हुआ, क्योंकि अभिचार कर्मों में भी वैदिक लोग विलक्षण कृत्यों का सम्पादन करके अपनी अभीष्ट कामना की पूर्ति करते थे।

वैदिक धर्म में ही नहीं, भारत के अन्य धर्मों में भी अभिचारात्मक कार्यों में मन्त्र प्रयोग की महत्ता स्वीकृत है। जैन धर्म में मन्त्रों के द्वारा अभिषेक किया जाता है। बौद्ध धर्म में मन्त्रों के द्वारा तारा की पूजा होती है। इसी प्रकार मुसलमानों के अनुसार नमाज में भी मन्त्रों का पुट रहता है और वह कुरान की भाषा के स्वरों को महत्वपूर्ण मानते है। गिरजाघरों में भी मन्त्रों की ध्वनि सुनाई पड़ती हैं। ईसाई धर्म के मन्त्र विशेषज्ञ रोगी के पास बैठकर रोगोपचार करते हैं। उनके उपचार का माध्यम कुछ मन्त्र-पाठ सा होता है। योग-दर्शन में मन्त्र, तप और समाधि से सिद्धि बताई गई है।

वेद मन्त्रों का आविर्भाव यज्ञीय साधनाओं को सम्पन्न करने के लिए ही हुआ था। अतः वैदिक अभिचार कर्मों में मन्त्रों के साथ-साथ यज्ञ का भी प्रमुख स्थान है। अभिचार कर्मों के लिए सम्पादित किए जाने वाले यज्ञों की वेदि सामान्य यज्ञवेदि से विशेष रूप से भिन्न आकार-प्रकार वाली ही बनाई जाती थी और उसके लिए चयनित सामग्री भी प्रायः अद्भुत परिणाम देने वाली ही होती थी। बहुत-सी परिस्थितियों में स्वयं यज्ञ को अभिचार में बदल दिया गया है; यह स्वयं मन्त्रों की ही अभिचार रूप में परिणति के सदृश है। इस बात के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण रहस्यात्मक होतृमन्त्र हैं जो अपने मूल रूप मे उदात्त विचारों में संवलित थे किन्तु बाद में वही निम्न कोटि के आभिचारिक उपकरणों में बदल गए थे। अभिचार के उद्देश्य से किए जाने वाले यज्ञों से अनुष्ठान की प्रणाली प्रायः सामान्य यज्ञों के विपरीत होती थी, यथा—यज्ञ की गतियां दक्षिण से उत्तर की ओर और बायें से दाहिनी ओर न होकर उत्तर से दक्षिण की ओर एवं दायें से बाँयीं ओर को होती थीं। इन्द्र के लिए अभिप्रेत बलि मन्त्रों को मरुत देवता के निमित्त पढ़ा जाता था। आभिचारिक कृत्यों के सम्पादन के लिए रात्रि काल ही सर्वोत्तम माना गया है। इस प्रकार अभीष्ट सिद्धि हेतु सम्पादित

अभिचार कर्मों में यज्ञ का विशिष्ट स्थान बन गया। अथर्ववेद में कहा गया है—

"यज्ञ करने वाले को स्वर्ग-सुख प्राप्त होता है। जिन्हें स्वर्गीय सुख प्राप्त करना अभीष्ट हो वे यज्ञ किया करें।" (18.4.2)

इस प्रकार वैदिक काल में यज्ञ का एक ऐसी वैज्ञानिक विद्या के रूप में विकास हुआ था कि इसको किसी भी दिशा में प्रयुक्त करके अनुकूल लाभ उठाए जा सकते थे। कीथ के अनुसार "'यज्ञ' ब्राह्मणों में एक विशुद्ध और अभिचार है।"[1] अभीष्ट की पूर्ति, देवानुग्रह का नहीं बल्कि यज्ञ के विधिपूर्वक सम्पादन का स्वाभाविक फल थी। यज्ञ-सम्पादन ऐसे रहस्यात्मक फल की सृष्टि करता था, जिससे यथासमय स्वभावतः अभीष्ट की सिद्धि होती थी। वास्तव में यज्ञ शक्ति का विकास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकास की दृष्टि से एक सरल एवं सशक्त माध्यम था। भक्ति विकास और आत्मज्ञान के लिए रुद्र यज्ञ, वृष्टि के विष्णु यज्ञ, पति-प्राप्ति के लिए त्र्यम्बक यज्ञ, शाशन व्यवस्था और क्षेत्र-विस्तार के लिए अश्वमेध यज्ञ, धन प्राप्ति के लिए सरस्वती यज्ञ, युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए चण्डी यज्ञ आदि किए जाते थे। जीवन की हर समस्या के समाधान के लिए यज्ञों का सम्पादन किया जाता था जिनके लिए विस्तृत और सुनियोजित विधि-विधान बने हुए थे।

आसुरी शक्तियों का नाश, चरित्र-विकास, मनोबल की वृद्धि, बुद्धि प्रखरता और आत्मिक उत्थान तो यज्ञीय शक्ति के सहज परिणाम थे ही। अनेक प्रकार के भौतिक लाभ भी इनसे प्राप्त किए जा सकते थे। धन-लाभ, आरोग्य प्राप्ति, विपत्ति-निवारण, आयु-वृद्धि, शस्त्रों से रक्षा और उत्तम वर्षा के लाभ भी यज्ञों से उठाए जाते थे। युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों में भी एक प्रमुख शक्ति मानी जाती थी। मन्त्रों से अभिमन्त्रित दिव्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, आग्नेयास्त्र होते थे। मन्त्र-शक्ति से शत्रुसेना में अग्नि की ज्वालाएँ भड़क उठती थीं और मन्त्र से ही इस अग्नि को बुझाने के लिए वर्षा भी कर ली जाती थी। मन्त्र-शक्ति से शत्रु-सेना को ज्वर आदि से पीड़ित किया जाता था तथा सर्प या अन्य विषैले जीवों को

1. कीथ, रिलीजन एण्ड फिलॉसफी ऑफ दि वेद एण्ड उपनिषद्ज, पृ० 454

शत्रु की ओर अभिमुख किया जाता था। मन्त्रों से ऐसे भयंकर अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था कि जिनसे प्रलय तक आने की सम्भावना होती थी। ये समस्त अभिचार कर्म यज्ञों के माध्यम से ही किए जाते थे।

आभिचारिक यज्ञों की सफलता के अनेक स्तम्भ होते हैं—प्रयोक्ता का दृढ़ निश्चय एवं संकल्प मानसिक सबलता और निष्कपट भावना। विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अलग-अलग हव्य सामग्री का विधान है। समिधाएँ भी उद्देश्य के अनुकूल प्रयुक्त की जाती हैं। आसनों का भी अलग विधान है। कुण्डों का निर्माण और मन्त्रों का प्रयोग भी लक्ष्य के अनुसार ही किया जाता है। आभिचारिक यज्ञों में उपर्युक्त सभी तत्वों का प्रयोग अभीष्ट पूर्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में अभिचार कर्मों का अध्ययन करने से एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी समक्ष आया कि आभिचारिक क्रियाओं के सम्पादन में प्रयुक्त सामग्री का भी कृत्य की सफलता और असफलता पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। संहिताओं के युग में जहाँ आभिचारिक कृत्यों में मन्त्रों और उनके उच्चारण का विशिष्ट स्थान था वहीं ब्राह्मण-युग में मन्त्रों के साथ-साथ इन कृत्यों में प्रयुक्त सामग्री और द्रव्यों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा। इसका सशक्त प्रमाण सामविधान ब्राह्मण है जिसमें आभिचारिक कृत्यों, यथा—वशीकरण, उच्चाटन, शत्रु-पराजय तथा अन्य अभीष्ट-सिद्धियों हेतु किए वाले होमों में काले तिल, सरसों आदि का प्रयोग किया गया है और अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में अभिचार कर्ता के लिए लाल वस्त्र धारण करना आवश्यक बताया गया है। अथर्ववेद में भी विविध प्रकार की अभिचार-सामग्रियों का उल्लेख किया गया है और उनकी प्रयोग-विधि कौशिक सूत्र में बताई गई है। वैदिक अभिचार-कृत्यों में प्रयुक्त कुछ प्रमुख सामग्री और द्रव्यों के नाम इस प्रकार हैं—काले तिल, काली तथा पीली सरसों, यव, धान की भूसी, दधि, रक्तवर्ण अजा का दूध, घृत,, मधु तण्डुल, रक्त सिन्दूर, विभीतक, केश, नख, खदिर काष्ठ, कृष्ण मृगचर्म, मृगश्रृंग, आटे या मिट्टी से निर्मित कृत्या मूर्ति, नमक, द्यूत क्रीड़ा की गोटियाँ (पाँसा) तगर, आञ्जन, भस्म, अस्थि, माँस, कुश, माष, कुष्ठ, शर्करायें आदि। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का भी प्रयोग आभिचारिक कृत्यों के लिए किया गया है, यथा—अपामार्ग (लटजीरा), शतावर, पृश्निपर्णी, गूलर, भंगरा, हरिद्रा, नीलिका, वनिता,

वाणपर्णी, शमी वृक्ष की छाल, लोहबान, गुग्गल, पिप्पली, प्रियङ्गुक, संदपुष्पा, सहदेवी, बज (काकजंघा), आञ्कन, अर्जुन (जङ्गिण) आदि। इन समस्त औषधियों का प्रयोग, औषधि निर्मित मणि के रूप में अथवा औषधि को अभिमन्त्रित कर शत्रु या रोगी के ऊपर उसका प्रक्षेपण करके किया जाता है।

भारतीय धर्म-साधना में बहुत प्राचीनकाल से ही तान्त्रिक तत्वों का समावेश मिलता है। अतः काल क्रम से विविध सम्प्रदायों और धर्मों का भी इनसे सम्पर्क होता गया और तदनुसार उनके तान्त्रिक या आभिचारिक स्वरूप का भी अभ्युदय होता रहा। परवर्ती तन्त्र-साहित्य का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि सभी धर्म मतों ने अपने-अपने सिद्धान्तों और लक्ष्यों के अनुसार ही तान्त्रिक तत्वों को ग्रहण किया। सामान्य लोक धर्म और विश्वासों की भी कुछ विशेषताएँ प्रायः सभी धर्मों में मिलती हैं अतः लोक-धर्म से सम्बन्धित अभिचारों का वर्णन भी स्वरूप-परिवर्तन से बहुधा सभी धर्मों की साधना पद्धति में हुआ है।

जादू-टोने के काम आने वाले मन्त्रों का बहुमूल्य प्राचीन संग्रह अथर्ववेद बौद्धधर्म के उत्कर्ष के बहुत पूर्व संकलित हो चुका था अतः बौद्धों पर इसकी संस्कृति और विचारधारा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इसका प्रमाण बौद्धधर्म ग्रन्थ में अंकित वे उल्लेख हैं जिनमें बौद्धों के अपने विश्वासों की नहीं अपितु जनता के विश्वासों की चर्चा है। महायानी साहित्य के अन्तर्गत महावस्तु, ललितविस्तर, कल्पनामंडीतिका, चतुःशतकस्तोत्र मैत्रेय व्याकरण, अवदानशतक, कर्मशतक, दिव्यावदान, अवदान कल्पलता, अष्ट साहस्रिका, प्रज्ञा पारमिता, लकावतार, दशभूमीश्वर आदि रचनाओं में चमत्कार, लोकोत्तरवाद, बुद्धलीला, बुद्धभक्ति, स्तूप-पूजा, सिद्धियाँ, कथा कल्पना, देवी-देवताओं की कल्पना, धारणी, मन्त्र, ध्यान, समाधि, मूर्तिपूजा तथा तान्त्रिक क्रियाओं का समावेश मिलता है। इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ (बुद्ध) के द्वारा अपने तत्व ज्ञान और सिद्धान्त प्रचार के लिए चुने गए बिहार प्रदेश के निवासियों में भी विभिन्न प्रकार के लोक-विश्वास प्रचलित थे अर्थात् ये लोग भी भूत, डायन, जादू-टोना और ब्रह्म राक्षस में विश्वास करने लगे थे और इनके निवारण के विविध प्रयत्न करते थे इनके ये प्रयत्न वस्तुतः वैदिक अभिचार कर्मों का आवरण पहने हुए ही होते थे अर्थात् वैदिक अभिचारों में जहाँ कृत्या-जादू तथा राक्षसों के निवारण के लिए विविध प्रकार की आहुतियाँ तथा होम प्रचलित थे। बौद्ध

काल में उन्ही आहुतियों का स्थान योग-साधना ने ले लिया था। बौद्ध तान्त्रिक महान हठयोगी होते थे। बहुत बार ये तपस्या में रत होकर वर्षों तक खड़े ही रहते थे और अपनी अभीष्ट सिद्धि के उद्देश्य में सफल होते थे। इससे स्पष्ट होता है कि तन्त्र-मन्त्र की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है जिससे बौद्ध भी नहीं बच सके। बुद्धकालीन 'आटानाटीयसुत्त' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक बार महा मौद गल्यायन के पेट में दर्द उठा था तो उन्होंने उसे मार (भूत) ही समझकर मन्त्रों से भगाया था जो वैदिक अभिचार प्रक्रिया से प्रभावित माना जा सकता है।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि वैदिक धर्म में जिन विचित्र और मनोरंजक विश्वासों एवं कृत्यों की चर्चा हुई है उनका प्रभाव बौद्धकालीन समाज में भी रहा।

बौद्ध मत में अभिचार सदृश कर्मों के क्षेत्र में रहस्य-साधना को जनसामान्य में प्रतिष्ठित स्थान मिला। इसमें साधक और साध्य दोनों की 'शक्ति' कल्पना की गई है जो वैदिक अभिचारकर्ता और आभिचारिक देवता के सदृश प्रतीत होती है। बौद्धों की योग-साधना में पञ्चमकार अर्थात् मन्त्र, मुद्रा, मद्य, मैथुन, मांस, जैसे तान्त्रिक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्हीं तत्वों के बल पर बौद्ध योगी अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त करते थे। बौद्धों के गुह्यसमाजतन्त्र में षट्कर्म, पञ्चमकार तथा सिद्धियों के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। बौद्धधर्म में शक्ति तत्व को प्रतिष्ठित करना इसकी विशेषता है। बौद्धों की साधना-पद्धति में पंचध्यानी बुद्धों और उनकी शक्तियों तथा कापालिक साधना भी अभिचार की दृष्टि से उल्लेखनीय है। बौद्ध के पंचध्यानी बुद्ध हैं—अक्षोभ्य, अमिताभ, वैरोचन, अमोघ सिद्धि और रत्न सम्भव। इनकी शक्तियाँ हैं—लोचना मामकी, तारा, पाण्डरा और समय तारा। तान्त्रिक बौद्धों की साधना में वस्तुतः व्रतों, मुद्राओं और मन्त्रों, मन्त्र सहित प्रार्थनाओं, यथा—'हुं हुं फट् फट् स्वाहा' का प्रयोग केवल बुद्धों और बोधि सत्वों के लिए ही नहीं, शैव देवताओं के लिए भी स्वीकार किया गया है।

वस्तुतः तान्त्रिक महायान धर्म में साधना-उपासना के तीन स्तर थे जिन्हें आम्नाय के नाम से जाना जाता है। साधकों का प्रथम वर्ग मन्त्र-मण्डल अंगुलियों की मुद्राओं, देवी-देवताओं की तान्त्रिक विविध विधान युक्त पूजा-उपासना-

में विश्वास करता था और इनका अनुसरण करता हुआ अनेक सिद्धियों, भौतिक-सांसारिक उपलब्धियों, रोग-नाश, षटकर्मों के फल आदि को प्राप्त करता था। इस वर्ग में संयम, सदाचार, शील आदि के पालन का विधान था। दूसरा वर्ग इससे सर्वथा भिन्न था जो उपर्युक्त क्रम से निष्पन्न, शुद्ध और शक्ति सम्पन्न होकर तान्त्रिक विधि-विधान से भी प्रज्ञा-साधना में प्रवृत्त होता था और पञ्चमकारों, पंचपवित्रों के सेवनादि में पूर्ण स्वच्छन्दता का आचरण करता हुआ प्रज्ञोपायाद्वय की स्थिति तक पहुँचता था। यह वर्ग वैदिक अभिचारकर्ताओं के सदृश सामाजिक विधि-विधान मान-मर्यादा सम्बन्ध का तिरस्कार और उल्लंघन करता हुआ अग्रसर होता था। इन सब के विपरीत साधकों का तीसरा वर्ग उपर्युक्त सभी बाह्याचारों का खण्डन कर सबसे सर्वथा परे रहकर परम महासुख का अनुभव अन्तस्साधना द्वारा करता था। बौद्ध तान्त्रिकों के ये तीनों स्तर हिन्दू तान्त्रिक साधना में पशवाचार, वीराचार और दिव्याचार में दिखाई पड़ते हैं।

बौद्धधर्म में मन्त्रयान और महायान या वज्रयान के अतिरिक्त कालचक्रयान तथा सहजयान नाम के भी दो यानों की चर्चा हुई है। इसमें कालचक्रयान की वस्तुतः साधना का एक आभिचारिक मार्ग ही प्रतीत होता है जिसमें आदि बुद्ध की कल्पना करुणा और शून्यता की मूर्ति के रूप में की गई है। कालचक्र का अर्थ ही है 'नाशचक्र' और तदनुसार यान से संयुक्त होने पर इसका अर्थ होता है – काल या नाश के चक्र से रक्षा करने वाला मार्ग। इस यान में हठ योग का अधिक महत्व है। अतः अन्य यानों की अपेक्षा इस यान पर हिन्दू तान्त्रिक प्रभाव अधिक स्पष्ट है।

बौद्ध धर्म में वैदिक अभिचार कर्मों की सर्वाधिक उपस्थिति एव समानता कापालिक साधना में प्राप्य है, जहाँ वैदिक आभिचारिकों की भाँति कापालिक मनुष्य-बलि दिया करते थे। बौद्ध कापालिक साधना में प्राणी वज्रधर है और जगत् की स्त्रियाँ कपाल वनिता अर्थात् कपालिनी हैं तथा साधक 'हेरुक' भगवान की मूर्ति होती है जो नटराज शिव से मिलती है। इनकी विशेषताएं हैं—नरचर्म्म धारण, कपालमाला धारण, प्रकाशित उर्ध्व पिंगल केश, आँतों से संग्रथित मुण्डमाला धारण, रक्त परिपूर्णकपाल धारण, भस्मोद्धूलित विग्रह, शव के ऊपर अर्धपर्यंकासन आदि। कापालिक शिवोपासक होते थे और नरास्थि की माला धारण करते हुए श्मशान वास करते थे तथा नरकपाल में ही भोजन करते थे।

चिताभस्म, कपाल; अस्थिमालिका, जटा आदि को धारण करते थे, मुद्रा के साथ नित्य विहार करते थे। शक्ति से नित्य परिणद्ध रूप में उपास्य की कल्पना करते थे। पञ्चमकारों से उपास्य की पूजा करते हुए चक्र-नाड़ी आदि की साधना करते थे।

बौद्ध तन्त्रों के अनुसार बौद्ध देवमण्डल के सभी देवता शून्य के ही प्रकाश हैं और तत्वतः शून्य हैं। बौद्ध तन्त्र में सभी देवताओं के वर्ण निश्चित हैं किन्तु धार्मिक क्रियाओं के वैभिन्य से कभी-कभी निश्चित वर्ण से भिन्नता दिखाई देती है। तदनुकूल उनकी मुद्रा आदि में भी परिवर्तन हो जाता है। सभी आभिचारिक या तान्त्रिक देवता आकृति से अत्यन्त भयंकर होते हैं। कुछ प्रमुख तान्त्रिक बौद्ध देवी-देवताओं के नाम इस प्रकार हैं—यमारि, उच्छुष्मजम्भल, महाकाल, वैरोचन, ध्यानी बुद्ध (देवता), एकजटा, नैरात्मा, वज्र वाराही, कुरुकुल्ला, वसुधारा (देवियाँ)।

बौद्ध धर्म के अतिरिक्त जैन धर्म में भी विभिन्न देव उपासनाओं और कर्मकाण्ड के दर्शन होते हैं। कतिपय विद्वानों की यह धारणा है कि कर्म प्रधान वैदिक संस्कृति के समानान्तर रूप से निवृत्ति मार्गी श्रमण-संस्कृति की धारा प्रवाहित हुई थी। श्रमण शक्ति की आधारशिला अहिंसा, योगचर्या आदि धार्मिक आचारों पर अत्यधिक आग्रह माना जाता है। इस संस्कृति के प्राचीनतम संदेशवाहक के रूप में जैन धर्म को मानना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

वैदिक काल के धार्मिक चिन्तन, उपासना एवं कर्म-काण्ड के उत्तरोत्तर विकास और परिवर्तन में जैन धर्म का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

वैदिक धर्म और जैन धर्म की तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि वैदिककाल की साधना-पद्धति में जहाँ प्रार्थना और यज्ञ की प्रमुखता थी वहाँ जैन धर्म में प्रार्थना और यज्ञ का स्थान पूजा-पाठ ने ले लिया था। वैदिकी पूजा-पद्धति का आधार वेदों के विविध सूक्त और मन्त्र थे, इनकी सहायता से मनुष्य ईश्वर की विविध प्रकार से स्तुति, स्तवन एवं आशंसा करते हुए देवताओं को प्रसन्न करता था और अपनी ऐहिक तथा पारलौकिक सिद्धि के लिए देवताओं को विवश करता था, जबकि जैन धर्म में जैनियों के तीर्थस्थलों—आदिनाथ (ऋषभ नाथ) से लेकर महावीर स्वामी तक की उपासना पद्धति का प्राधान्य रहा है। इस धर्म के उपासकों में धर्म ध्यान के अन्तर्गत 'पदस्थ'

नामक ध्यान में हिन्दुओं के षट्चक्रभेधन की पद्धति के अनुसार वर्णमयी देवता का चिन्तन किया जाता है। वैदिक काल में हमें मन्दिर एवं मूर्ति पूजा का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है अर्थात वैदिक काल में मनुष्य प्राकृतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का ही साक्षात् दर्शन और अनुभव करता था। उसे इसके लिए किसी मन्दिर की आवश्यकता न थी। यज्ञीय अवसरों पर वह सुरा निर्मित प्रतिकृतियों का निर्माण करके उन्हीं की उपासना करता था। किन्तु जैन धर्म में उपासना के क्षेत्र में मन्दिर तथा पूजा का बड़ा महत्व है। जैन मन्त्रों में प्रणव (ऊँकार), माया (ह्रीं) आदि बीज अक्षर शाक्त तन्त्रों के अनुरूप होते हैं, केवल मुख्य देवता रूप में 'अरिहन्ताणम्' यह जैन पंचाक्षरी ली गई है। श्वेताम्बर मत में प्रत्येक तीर्थंकर की शासक देवता चक्रेश्वरी, अजितकला, दुरितारी, कालिका, महाकाली आदि मानी जाती हैं। जैन कविगण शाक्त सम्प्रदाय के 'सारस्वत कल्प' को मानते हैं और रोहिणी प्रज्ञप्ति, श्रृंखला आदि सरस्वती के षोडश विद्या व्यूह की मान्यता जैन धर्म में है। फलतः शक्ति की उपासना जैन धर्म में अभीष्ट है। जैन धार्मिकों के तान्त्रिक दिगम्बरों की गणना बौद्ध कापालिकों के साथ की जा सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अभिचार समस्त विश्व एवं सभी धर्मों में समान रूप से पाया जाता है क्योंकि यह मनुष्य के आदिम धर्म और विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंश रहा है। भारतीय आभिचारिक साधना की जो विशेषताएँ हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं किन्तु उनके टोने-टोटके के प्रकार भेद से वे अत्यन्त व्यापक रूप में सामान्य जन-जीवन के मध्य फैली हुई हैं।

# सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

## मूल ग्रन्थ


अथर्ववेद संहिता : सनातन भाष्य सहित, माधव पुस्तकालय, दिल्ली

अग्निपुराण : व्यासकृत, चौखम्बा, वाराणसी, 1966

अमरकोष : चौखम्बा, वाराणसी, सं० 1978

अथर्व परिशिष्ट : बोल्लिग के अंग्रेजी संस्करण की हिन्दी प्रस्तुति डॉ० रामकुमार राय द्वारा, चौखम्बा ओरिन्टालिया

आश्वलायन श्रौतसूत्र : सं० हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूना, 1917

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र : सं० नरसिंहाचार्य, ओरियण्टल संस्थान, बड़ौदा, 1955

आर्षेय कल्प : सं० बी० आर० शर्मा, विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, 1976

आश्वलायन गृह्यसूत्र : सं० बी० एस० एस० रानाडे, पूना सं० टीका गणपति शास्त्री, 1936

आग्निवेश्य गृह्यसूत्र : सं० एल० ए० रविवर्मन, त्रिवेन्द्रम् 1940

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : सं० एम० विन्टरनित्स, वियना, 1887

आपस्तम्ब धर्मसूत्र : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, आफिस वाराणसी, 1932

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र : सं० सत्यप्रकाश, रामस्वरूप, नई दिल्ली 1968

ऋग्वेद संहिता : (स्कन्दस्वामी एवं सायण भाष्य सहित) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, प्र० संस्करण

ऋग्विधान : जे० खोन्दा, 1951

ऐतरेय ब्राह्मण : तारा पब्लिकेशन्स, प्रथम भाग प्र० सं० 1980, द्वितीय भाग, प्र० सं० 1983

ऐतरेय आरण्यक : (सायणाचार्य कृत भाष्य सहित) सम्पा० राजेन्द्र लाल मिश्र, आनन्दाश्रम, पूना 1898

कात्यायन श्रौतसूत्र : सं० विद्याधर शर्मा, अच्युत ग्रन्थमाला काशी

कात्यायन शुल्बसूत्र : अच्युत ग्रन्थमाला, काशी

काठक गृह्यसूत्र : सं० कैलेण्ड, लाहौर, 1925

कौषीतकि ब्राह्मण : सं० एच० एन० आप्टे, आनन्दाश्रम, पूना 1911

कौषीतकि उपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर तथा मोतीलाल बनारसीदास

कौशिक गृह्यसूत्र : हिन्दी अनु० ठाकुर उदयनारायण सिंह, शास्त्र प्रकाश भवन, मधुरा पुर, जिला मुजफ्फरपुर, (बिहार) सं० 1999

गोपथ ब्राह्मण : सं० डॉ० राजेन्द्रलाल मिश्र, इन्द्रा लॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1972

गोभिल गृह्यसूत्र : (भट्टनारायण कृत भाष्य) मेट्रोपोलिटन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिग हाउस, कलकत्ता 1936

गौतम धर्मसूत्र : आनन्दाश्रम संस्कृत गन्थावली, 1910

जैमिनीय गृह्यसूत्र : सं० कैलेण्ड लाहौर, 1922

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण : सं० डॉ० रघुवीर और डॉ० लोकेश चन्द्र, नागपुर 1954

ताण्ड्य महाब्राह्मण : (सायण भाष्य सहित) एशियाटिक सोसायटी बंगाल, 1870

तैत्तिरीय ब्राह्मण : सं० हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम, पूना,

तैत्तिरीय आरण्यक : सं० राजेन्द्रलाल मित्र, आनन्दाश्रम, पूना, 1926

द्राह्यायण गृह्यसूत्र : सं० डॉ० उदयनारायण सिंह, मुजफ्फरनगर, 1934

पद्म महापुराण : व्यासकृत, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1984

पारस्कर गृह्यसूत्र : सं० महादेव गंगाधर बक्रे, म्बई 1917 हिन्दी व्या० डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय, चौखम्बा, वाराणसी, 1980

ब्रह्म वैवर्तपुराण : मोर प्राच्य शोध संस्थान, कलकत्ता, प्रथम संस्करण 1954

बौधायन श्रौतसूत्र : सं० कैलेण्ड, कलकत्ता 1913

बौधायन गृह्यसूत्र : सं० आर० शामाशास्त्री, पाणिनि वैदिक ग्रन्थ-माला नई दिल्ली 1982

बौधायन धर्मसूत्र : सं० श्री निवासाचार्य, गवर्नमेन्ट ओरियन्टल लाईब्रेरी, मैसूर 1907

बौधायन शुल्बसूत्र : सं० डॉ० सत्यप्रकाश और पं० रामस्वरूप शास्त्री, नई दिल्ली 1968

भारद्वाज श्रौतसूत्र : सं० सी० जी० काशीकर, वैदिक संशोधन मण्डल पूना, 1964

भारद्वाज गृह्यसूत्र : सं० जे० डब्ल्यू० सालोमन्स, लीडेन 1913

मनुस्मृति : सं० पं० गोपाल शास्त्री नेन, चौखम्बा संस्थान, वाराणसी

महाभारत : गीता प्रेस, गोरखपुर

मार्कण्डेय पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई 1867

मानव गृह्यसूत्र : सं० रामकृष्ण हर्षजी शास्त्री, पाणिनि नई दिल्ली 1982

मानव शुल्बसूत्र : सं० एन० के० मजूमदार

यजुर्वेद संहिता : सं० स्वामि गोविन्दानन्द वेदान्ताचार्य सद्गुरु गंगेश्वर इण्टरनेशलन वेद मिशन, बम्बई, व्या० श्रीकण्ठ शास्त्री

रामायण : वाल्मीकि कृत, गीता प्रेस गोरखपुर

लाट्यायन श्रौतसूत्र : सं० आनन्दचन्द वेदान्तवागीश, कलकत्ता 1872

| | |
|---|---|
| लिंगपुराण | : पं० श्रीरामशर्मा आचार्य, संस्कृत संस्थान, ख्वाजा कुतुम्ब वेदनगर, बरेली 1969 |
| वशिष्ठ धर्मसूत्र | : सं० ए० ए० फ्यूहरेर, पूना 1930 |
| वाराह गृह्यसूत्र | : सं० रघुवीर, पाणिनि नई दिल्ली 1982 सं० आर० शामाशास्त्री, बड़ौदा 1920 |
| विष्णुधर्मसूत्र | : सं० जे० जौली, कलकत्ता 1881 |
| विष्णुपुराण | : व्यासकृत अनु० मुनिलाल गुप्त, गीता प्रेस गोरखपुर द्वि० सं० |
| वाचस्पत्यम् (बृहत संस्कृताभिधानम्) | : श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति-भट्टाचार्येण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी |
| बृहदारण्यकोपनिषद् | : सं० कृष्णनाथ चट्टोपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० 1981 |
| वैतान श्रौतसूत्र | : सं० विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वेद संस्थान, होशियारपुर 1967 |
| वैदिक कोश | : सूर्यकान्त, वैदिक रिसर्च समिति, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय 1963 |
| वैदिक पदानुक्रम कोश | : सं० विश्वबन्धु, होशियारपुर |
| शतपथ ब्राह्मण | : सं० रामनाथ दीक्षित, चौखम्बा वाराणसी प्र०सं० 1981 सं० वंशीधर शास्त्री, काशी सं० 1967 |
| शब्दकल्पद्रुम | : राधाकान्त देव कृत, चौखम्बा संस्थान, वाराणसी 1967 |
| शांखायन श्रौतसूत्र | : सं० ए० हिलेब्राट, मेहरचन्द लछमनदास दिल्ली 1981 सं० लोकेश चन्द्र, नागपुर, 1953 |
| शांखायन गृह्यसूत्र | : सं० गुलाबराय शर्मा, राजकोट, 1932, सं० सीताराम सहगल, दिल्ली 1960 |
| भागवतपुराण | : सं० श्रीरामशर्मा आचार्य, 1968 |

श्रीमद्भगवद्गीता : गीताप्रेस, गोरखपुर

षड्विंश ब्राह्मण : सं० डॉ० वे० रा० शर्मा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरुपति

सामवेद संहिता : प० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी नगर, गुजरात च० सं०

सामविधान ब्राह्मण : सं० डॉ० वे० रा० शर्मा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति 1964

हारीत धर्मसूत्र : मनसुख राय मोर, क्लाइव रो, कलकत्ता, स्मृति सन्दर्भ के अन्तर्गत प्रकाशित

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र : सं० जे० किर्स्टे, वियना 1889

क्षुद्रकल्प सूत्र : सं० वी० आर० शर्मणा, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर 1974

## आधुनिक ग्रन्थ

अथर्ववेदीय तन्त्र विज्ञान : पं० देवदत्तशास्त्री, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र० सं० 1985

अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण : एम०ब्लूमफील्ड अनु० सूर्यकान्त, चौखम्बा आफिस प्र० सं० 1964

अथर्ववेदे शान्तिपुष्टि-कर्माणि : माया मालवीया, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी 1967

आपस्तम्ब कल्प में यज्ञविद्या : कुँवर लाल, इतिहास विद्याप्रकाशन, दिल्ली प्र० सं० 1984

इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज : राम गोपाल, दिल्ली 1959

इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स : ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर [खण्ड I] : विण्टरनित्स, कलकत्ता 1927

उपनिषद कालीन समाज एवं संस्कृति : डॉ० राजेन्द्र कुमार त्रिवेदी, परिमल, पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1983

**ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि** : पं० विश्वेश्वर नाथ रेउ, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी 1961

**ऋग्वेद में दार्शनिक तत्व** : गणेशदत्त शर्मा, विमल प्रकाशन, गाजियाबाद 1977

**ऋक्सूक्त वैजयन्ती** : हरि दामोदर वेलणकर, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1965

**ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन** : नाथूलाल पाठक, रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर

**कल्पसूत्र (वैदिक साहित्य का विवेचनात्मक वृहत् इतिहास)** : कुन्दन लाल शर्मा, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर

**गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग** : डा० कृष्णलाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

**तान्त्रिक वाङ्‌मय में शाक्त दृष्टि** : कविराज गोपीनाथ, राष्ट्रभाषा परिषद् बिहार पटना, प्र० सं० 1978

**दि हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर** : वेवर, वाराणसी, 1961

**धर्मशास्त्र का इतिहास** : वामन पाण्डुरंग काणे, अनु० अर्जुन चौबे कश्यप हिन्दी समिति, लखनऊ

**धर्मदर्शन की रूपरेखा** : डा० हरेन्द्र सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास, चौक वाराणसी

**धर्मसूत्राज : ए स्टडी इन देयर ओरिजन एण्ड डेवलपमेन्ट** : ए० सी० बनर्जी

**पुराण परिशीलन** : गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, राष्ट्र भाषा परिषद् पटना बिहार

**पुराण विमर्श** : प० बलदेव उपाध्याय, चौखाम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1978

पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन : रामशंकर भट्टाचार्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग प्र० सं० 1965

ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति : धीरेन्द्रकुमार सिंह, पेनमैन, दिल्ली, 1990

बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास : गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ 1967

बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य : नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद, प्र० सं० 1983

बौद्ध धर्म और बिहार : श्री हवलदार त्रिपाठी, राष्ट्रभाषा परिषद, बिहार

बौद्ध भारत : ध्रुवनाथ चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद

भारतीय कर्मकाण्ड स्वरूपाध्यानम् : विन्ध्येश्वरीप्रसाद त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय संस्कृति और कला : वाचस्पति गैरोला, उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ

भारतीय धर्म एवं संस्कृति : बुद्ध प्रकाश, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

भारतीय दर्शन : वाचस्पति गैरोला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

भारतीय दर्शन : प० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1976

भारतीय धर्म और दर्शन का अनुशीलन : पं० बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी

भारतीय सनातन संस्कृति विविध आयाम : हर्षनारायण, पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली 1993

मानवशास्त्र की रूपरेखा : माथुर, विद्यार्थी और सिंह, केदारनाथ रामनाथ कालिज रोड, मेरठ, प्रथम संस्करण

वैदिक साहित्य का इतिहास : ओमप्रकाश पाण्डेय, रामबाग कानपुर, 1984

| | |
|---|---|
| वैदिक साहित्य और संस्कृति | : वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970 |
| वैदिक साहित्य और संस्कृति | : बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी |
| वैदिक साहित्य (संस्कृति और दर्शन) | : विश्वम्भरदयाल अवस्थी, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद 1983 |
| वैदिक धर्म एवं दर्शन | : कीथ अनु० सूर्यकान्त, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली |
| वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति | : पं० गंगाधर मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1981 |
| वैदिक साहित्य की रूपरेखा | : जोशी, खण्डेलवाल, साहित्य निकेतन कानपुर' 1975 |
| वैदिक खिल सूक्त : एक अध्ययन | : ओमप्रकाश पाण्डेय, रामबाग, कानपुर |
| वैदिक मन्त्रविद्या | : सं० चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान बरेली द्वि० सं० 1975 |
| शतपथ ब्राह्मण : एक सांस्कृतिक अध्ययन | : उर्मिलादेवी शर्मा, मेहरचन्द लक्ष्मनदास, दिल्ली |
| सम आथर्वनिक पोर्शन्स इन दि गृह्यसूत्राज | : बी० सी० लेले बान 1927 |
| सस्कृत साहित्य का इतिहास (भाग-1) | : मैक्डानल अनु० चारुचन्द्र शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं० |
| सोशल एण्ड रिलीजस लाइफ इन दि गृह्यसूत्राज | : वी० एम० आप्टे, बम्बई 1954 |

पेनमैन पब्लिशर्स
दिल्ली-११०००७